राष्ट्रीय शिक्षावली—५

पांचवीं पोथी

सम्पादक

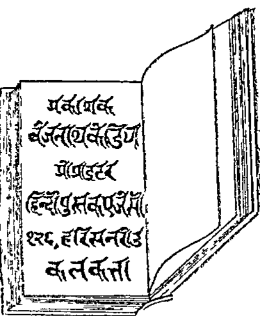
रामदास गौड़

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड

कलकत्ता

१९७६



दूसरीबार, सम्वत १९७९

जगदीश नारायण तिवारी द्वारा
मुद्रक
वणिक् प्रेस
६, मिर्जापुर स्ट्रीट कलकत्ता

वक्तव्य

कई महीने हुए पुरीसे महात्माजीका आदेश मित्रवर बाबू राजेन्द्र प्रसादद्वारा मिला। विहारविद्यापीठकी पाठ्यावलीके अनुसार भरसक शीघ्र ही राष्ट्रीय शिक्षावलीका समग्रह हुआ और भावी परिवर्त्तन और परिवर्द्धनकी आशासे यह संस्करण थोड़ी संख्यामें निकाला गया।

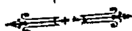
शिक्षामें मातृभाषाकी प्रधानतासे विषय और पाठ प्रचलित पद्धतिसे कुछ भिन्न आकार और प्रकारके रक्खे गये हैं। विषय-बाहुल्यसे शब्द और ज्ञानकी सम्पत्ति बढ़ती है, इसी दृष्टिसे पाठोंका अनुक्रम रक्खा गया है, परन्तु मातृभाषाके शब्दार्थ और पाठके विषय रटाना समीचीन पद्धति नहीं है, पढ़तेपढ़ाते इनका स्वाभाविक बन जाना ही उचित रीति है। वर्त्तनी और अनुलेखन मस्तिष्कके कम और हाथके विषय अधिक हैं। भरसक मस्तिष्कपर कम बोझा रक्खें, यही शिक्षकोंका लक्ष्य होना चाहिये। पाठको रोचक और सुबोध बनानेके लिये शिक्षकको उचित विस्तारका अधिकार है। सच्ची शिक्षा चरित्रवान् बनानेकी चेष्टा है, जो व्यावहारिक होनी ही चाहिये और शिक्षकका स्वयं उदाहरण होना अनिवार्य्य है।

हिन्दी भाषाका राष्ट्रियत्व अन्य भाषाओंके उचित सम्मिश्रणका पक्षपाती है। "भाषा"की परिभाषा भी ऐसी ही है। सम्पादकने इसका बराबर ध्यान रक्खा है। इसमें हिन्दीके विद्वानोंकी रचना, बिना उनकी आज्ञा, संग्रह की गयी है। इस धृष्टताके लिये क्षमाप्रार्थी हूं। पूछनेको समय न था। जिन सज्जनोंको आपत्ति हो कृपया सूचना दें। उनकी विवक्षित आज्ञाके लिये कृतज्ञ हूं।

बड़ी पियरी, काशी
गुरुपूर्णिमा १९७८

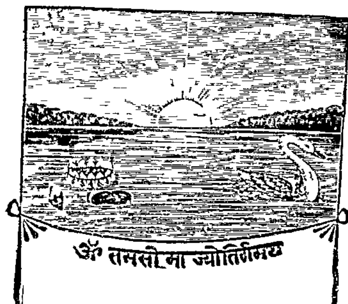
रामदास गौड़

पांचवीं पोथी



विषय-सूची

* वन्देमातरम् *



पांचवीं पोथी



१ ईश्वर-प्रार्थना

प्रभो, हमे ऐसी शक्ति दो जिसमें हमारा दुर्बल हृदय नि स्वार्थ और निरपेक्ष हो जावे।

हमें वह सामर्थ्य दो, जिससे हम तुच्छ धनाढ्योंके आगे न झुककर दीन दुखियोंका हाथ पकड उन्हें तुम्हारी सेवामें ला सकें।

हमें परमार्थका वह रहस्य बता दो जिससे लोक और परलोक दोनोंमें नि श्रेय प्राप्त हो।

हमें वह यथार्थ और सर्वश्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करा दो जिसके द्वारा तुम्हारा रूप चराचरमें देख सकें।

हम वह शुद्ध बुद्धि चाहते हैं जिसके सहारे तुम्हारे प्रेमपथके बाधक-रूप कटक सहज ही हट जावें।

हे नाथ, हमें वह ऐश्वर्य दो जिसे पाकर हम अपने परायेका भेद भूल निरन्तर विश्व सेवा ही किया करें।

हमारे शिथिल शरीरमें उस बलका सचार कर दो जिसे पाकर हम अपने जन्मसिद्ध अधिकारोंको पहचानें और विषय-वासनाकी दुर्गम दुर्गमालाको क्षणभरमें ध्वस्त कर सकें।

हमारा सकीर्ण हृदय इतना विस्तीर्ण कर दो, जिससे हम उसमें तुम्हारे विराट् रूपका ध्यान कर सकें।

हमारे चर्म चक्षुओंमें वह सुधा-बिन्दु टपका दो, जिससे तुम्हारे प्रेमके आसुओंकी धार सदा लगी रहे और जिन्हें देखकर निर्दयी और दुराग्रही भी अपने दुराग्रहको छोडकर वशमें हो जावें।

भक्तवत्सल! हमें ऐसी स्मरण-शक्ति दो, जिससे हम तुम्हें पलभर भी न भूलें और प्रत्येक कार्यको बिना तुम्हारी साक्षीके न करें।

हमें वह अहकार चाहिये कि हम भारतीय, तुम्हारी प्रजा हैं और तुम हमारे राजा और सर्वस्व हो।

भगवन्, सबसे बडा वर जिसे हम मागना चाहते हैं, वह यह है कि तुम्हारे चरणोंमें हमारी निष्काम भक्ति बनी रहे और वह तुम्हारे प्रेमके लिये ही हो।

'—वियोगी हरि'

२ सच्चरित्रता

यदि इस ससारमें मनुष्यको आदर्श पुरुष बनानेवाला कोई सर्वोत्तम गुण है तो वह सच्चरित्रता है। मनुष्योंकी मानसिक सद्वृत्तियोंको सर्वाङ्गीण समुन्नत और उत्कृष्ट बनाना तथा कर्त्तव्यनिष्ठ होकर महाजनानुमोदित और विवेकप्रदर्शित पथसे अपना शान्त और सरल जीवन बिताना ही सच्चरित्रता है। तन मन वचन और कर्मसे दूसरेका अनिष्ट न करने, सबके साथ सहानुभूति तथा अनुग्रह रखने और उपयुक्त पात्रमें दान देनेहीको सच्चरित्रता कहा है।

मनुष्योंको चाहिये कि सदा सच्चरित्र बननेकी चेष्टा करें। छात्रोंको तो सर्वोपरि इसका अभ्यास करना उचित है क्योंकि उनके जीवनका प्रातःकाल छात्रावस्था ही है। सच्चरित्र बननेकी चेष्टा करनेवालोंको आन्तरिक सकल्पमें दृढप्रतिज्ञ होकर समयोचित आत्मसयम और कठोर आत्मशासन करना श्रेयस्कर है। अपनेको अपनेहीमें वशीभूत रखना आत्मशासन और अपनेको सब प्रकारकी उच्छृङ्खलतासे रोकना आत्मसयम है। यदि ऐसा बनकर अपने भाव और कार्य्यको सत्पथमें प्रवृत्त करे तो मनुष्य निस्सन्देह सच्चरित्र हो सकता है। सच्चरित्र व्यक्तियोंके सदनुष्ठान सदाचार और सदुदाहरण सदा समक्ष रखकर तदनुरूप जीवनयापनकी प्रबल आकाक्षा तथा उत्तम उत्तम ग्रन्थों और जीवनचरित्रोंका अध्ययन चरित्रशिक्षाके प्रबल सहायक हैं। सत्यानुराग, परोपकारेच्छा, आज्ञानुवर्तिता और सासारिक सुखदु खमें अविचलचित्तता होनेसे ही सच्चरित्रताकी दृढता हो सकती है।

जो मनुष्य अपने दोषदर्शनमें समर्थ नहीं है, जो दोषोंको दूर करनेमें शिथिलता करता है, जो पापकी आपातमधुरतामें प्रलुब्ध होकर प्रवृत्त होता है, जो कुत्सित ग्रन्थोंकी कुचरित्रमय कथाएं और कल्पनाएं पढकर मनमें कुविचार पैदा करता है, जो कुसगमें पडकर अपनेको कलुषित करनेका सूत्रपात करता है, वह कभी सच्चरित्र नहीं हो सकता। सदाचार शिक्षार्थी न ऐसे काम करें और न ऐसे चरित्रहीन व्यक्तियोंका ससर्ग ही करें क्योंकि दुराचारीका जो पापमय और दु खमय परिणाम और अध पात होता है वह सबको विदित ही है। जो मनुष्य सच्चरित्र है उसके हृदयमें सत्यपरायणता, न्यायनिष्ठा, सयमशक्ति प्रभृति सारी गुणावलिया लहरें मारती हैं। दया, स्नेह, क्षमा, विनय, भक्ति, प्रीति आदि कोमल वृत्तिया सचालित होती रहती हैं, श्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, सहिष्णुता, प्रतिभा आदि शक्तियां

विकसित होती हैं। सच्चरित्र व्यक्ति क्रोध, द्वेष, अविनय, अहकार, प्रलोभन आदि दुर्वृत्तियोंको दूर करता है। न्यायविमुखता, उच्छृङ्खलता, असत्यता आदि दुर्गुणोंको पास फटकने नहीं देता। चरित्रवान व्यक्ति माता पिता परिजन तथा गुरुजनोंको सदा सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा किया करता है। स्वजाति और स्वदेशके कल्याणार्थ आत्मत्याग करता है और विवेकपरायणता तथा कर्त्तव्यपालनमें उत्साह दिखलाता है। सच्चरित्र मृत्युलोक-निवासी होनेपर भी अमर, अकिंचन होनेपर भी सम्राट और शास्त्रज्ञान विहीन होनेपर भी ज्ञानी है। यही क्यों, सच्चरित्र व्यक्ति जनसाधारणके लिये आदर्श पुरुष है।

विद्या बुद्धि और चरित्रसे कोई अटूट और अनिवार्य्य सम्बन्ध नही है। विविध विद्याओंकी अभिज्ञता और चरित्रकी पवित्रता भिन्न भिन्न बात है, मूर्ख भी सुचरित्र हो सकता है और विद्वान् भी दुराचारी। इसके दृष्टान्तोंकी कमी नहीं है। पर विद्याके साथ सच्चरित्रताका सयोग वाछनीय है। सच्चरित्र निरक्षरकी अपेक्षा दुश्चरित्र साक्षर निकृष्ट है। यदि दुराचारी विद्या-बुद्धि सम्पन्न धनाढ्य भी हो तो मणिभूषित सर्पके समान त्याज्य है। समझना चाहिये कि दुराचारीका विद्याभ्यास और अर्थोपार्जन समाजको बडा अनिष्टकर है। अकिंचन चरित्रवान् व्यक्ति चरित्रहीन करोडपतिकी अपेक्षा महान् और सुखी है।

जिन कारणोंसे मनुष्य प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है और जिन गुणोंके कारण मनुष्य अपने नामको सार्थक करता है उन सबका एकाधार सच्चरित्रता है। सुचरित्र-बल ही प्रधान बल है। निष्कलक चरित्र ही अमूल्य सम्पत्ति है। सारी उन्नतियोंका मूल सच्चरित्रता है। महत्व और गौरवका परिचायक सच्चरित्रता ही है। सच्चरित्र होना ही मानव जीवनका प्रधान लक्ष्य और श्रेष्ठ कर्त्तव्य है। इससे सबको सुचरित्र बननेकी सदा चेष्टा करनी चाहिये।

कितना और कितनी वार खाना चाहिये ?

इस विषयमें डाक्टरोंमें मतभेद है कि कितना खाना चाहिये ? एक डाक्टरकी राय है कि खूब खाना चाहिये । इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकारकी खुराकोंका—उनके गुणोंके अनुसार—वजन भी नियत कर दिया है । दूसरा कहता है कि मजदूरीपेशा और मानसिक काम करनेवालोंका भोजन परिमाण और गुण दोनोंमें भिन्न भिन्न होना चाहिये । तीसरेका मत है कि मजदूर और बादशाह दोनोंको बराबर खुराक मिलनी चाहिये—यह कुछ आवश्यक नहीं है कि गद्दीधरोंको कम और मजदूरोंको अधिक भोजनकी आवश्यकता हो । पर इतना सब लोग जानते हैं कि कमजोर और ताकतवरोंके भोजनका परिमाण भिन्न भिन्न होना चाहिये । पुरुष और स्त्रीके भोजनमें अन्तर होता है, जवान और बच्चे तथा बूढे और जवानकी खुराकमें भी अन्तर होता है । एक लेखक तो यहा तक कहता है कि यदि हम अपनी खुराकको इतना कुचलें कि मुँहमें ही उसका पूरा रस बनकर राल द्वारा गलेके नीचे उतर जाय तो हम पाचसे लेकर दस रुपये भरकी खुराकसे अपना निर्वाह कर सकते हैं । इसने खुद हजारों प्रयोग किये हैं । उसकी पुस्तकोंकी हजारों प्रतिया खप चुकी हैं । लोग उन्हें खूब पढते हैं । ऐसी दशामें भोजनका वजन बताना एकदम व्यर्थ जान पडता है ।

अधिकाश डाक्टरोंने लिखा है कि सैकडे पीछे निन्नानवे मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाते हैं । यह ऐसी साधारण बात है कि बिना पढे लिखे लोग भी आसानीसे समझ सकते हैं । अतएव यह व्यर्थ है कि इस भयसे कि लोग बहुत ही कम खाकर कहीं बीमार न पड जायँ इसलिये तन्दुरुस्तीके विचारसे भोजनकी एक ऐसी मात्रा नियत कर देनी चाहिये कि जिससे कम किसीको न खाना चाहिये । भोजनका विचार करते समय हमें अपनी खुराक घटानेपर ही ध्यान रखना चाहिये ।

जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, खुराकको खब कुचलनेकी जरूरत है। इससे हम बहुतही थोडी खुराकमेंसे अधिकसे अधिक उपयोगी सत्व ग्रहण कर सकते हैं। इससे हर तरहसे फायदा है। अनुभवी लोगोंका कहना है कि जो मनुष्य पच जाने योग्य, परिमाणमें हितकर भोजन करते हैं उन्हें बहुत थोडा, बँधा हुआ, चिकना, और दुर्गन्धरहित, सूखा, भूरे रगका दस्त होता है। जिसे इस प्रकार खुलकर दस्त न होता हो, समझ लेना चाहिये कि उसने अधिक और अहितकर आहार किया है और जो कुछ खाया है उसे खूब कुचलकर मुहकी रालके साथ मिलने नहीं दिया। इस प्रकार मनुष्य अपने दस्त इत्यादिसे समझ सकता है कि उसने कम खाया है या अधिक। जिन्हें रातमें सुखकी नींद न आवे, स्वप्न दिखाई पडें, जीभका स्वाद सवेरे खराब जान पडे, उन्हें समझ लेना चाहिये कि अधिक खा लिया है। जिन्हें रातको पेशाबके लिये उठना पडे उन्हें समझ लेना चाहिये कि उन्होंने जल आदि द्रव मिली हुई चीजें बहुत खा पी ली हैं। सूक्ष्मतासे निरीक्षण करके हर मनुष्य अपनी खुराकका वजन निश्चित कर सकता है। बहुतेरे मनुष्योंकी साससे बदबू निकलती है, इससे पता चलता है कि खुराक उन्हें हजम नहीं हुई। कितनी ही बार देखा गया है कि अधिक खानेवालोंको फुन्सियां हो जाती हैं, मुहासे निकल आते हैं और नाकमें दाने पड जाते हैं। कितनोंको डकारें आया करती हैं। पर वह इन सब उपद्रवोंकी परवा ही नहीं करते।

हम सभी थोडे बहुत ऐसे ही बेपरवाह हैं, इसीसे हमारे महापुरुषोंने हमारे लिये व्रत, उपवास और रोजा इत्यादि नियत कर दिये हैं। रोमन कैथलिक ईसाइयोंमें भी बहुतसे व्रत उपवास हैं। केवल शरीरके आरोग्यके लिये ही यदि कोई मनुष्य प्रत्येक पाखमें एक दिन उपवास या एक समय भोजन करे तो इसमें कोई बुराई नहीं। इससे उसे बहुत ही फायदा होगा। बहुतेरे हिन्दू चौमासेमें

एक ही समय भोजन करनेका व्रत लेते हैं। इसमें सुखपूर्वक रहनेका रहस्य भरा हुआ है। जब हवामें नमी अधिक होती है और सूर्य नहीं दिखलाई पड़ता तब मेदा अपना काम बहुत कम कर सकता है, ऐसे समय मनुष्यको भोजन कम करना चाहिये।

आइये, अब कितनी बार खानेपर विचार करें। हिन्दुस्तानमें असंख्य मनुष्य दोही बार खाते हैं। मजदूरी पेशा अलबत्ता तीन बार खाते हैं। चार बार खानेवाले लोग अँगरेजी दवाइयां पैदा होनेके बाद निकले जान पड़ते हैं। आजकल अमेरिका और इंगलैंडमें ऐसी सभाएं स्थापित हो गयी हैं जो लोगोंको बतलाती हैं कि दो बारसे अधिक नहीं खाना चाहिये। इन सभाओंकी सलाह है कि हमें सवेरे कुछ भी नहीं खाना चाहिये। हमारी रातभरकी नींद खुराककी गरज पूरी कर देती है। इसलिये हमें सवेरे खानेके लिये नहीं, बल्कि काम करनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये। इन सभाओंका मत है कि हमें एक पहर काम करनेके बाद ही खानेके लिये तैयार होना चाहिये। इसलिये ऐसे विचार-वाले मनुष्य दिनमें दोही समय खाते हैं और बीचमें चाय इत्यादि भी नहीं पीते। इस विषयमें ड्युई नामक एक बहुत ही अनुभवी डाक्टरने एक पुस्तक लिखकर उपवास करने, सवेरे नाश्ता न करने और फल खानेके लाभ बड़ी ही उत्तमतासे दिखलाये हैं। मैं अपने आठ वर्षके अनुभवसे कह सकता हूं कि युवावस्था बीते-बाद तो दो दफेसे अधिक खानेकी बिलकुल ही जरूरत नहीं है। जब मनुष्यशरीरका संगठन पूर्णताको पहुँच रहा हो अथवा पहुँच गया हो तब उसे कई बार वा अधिक परिमाणमें खानेकी कोई जरूरत नहीं।

—महात्मा गांधी

४ जीवन-संग्राम

हम बतला चुके हैं कि इस पृथ्वीपर अपना जीवन व्यतीत करनेके लिये प्राणियों तथा वनस्पतियोंको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता अवश्य मिली है जिसके कारण वे इस जीवन-संग्राममें टिके हुए हैं। फर्क केवल इतना ही है कि किसीमें क्षमता अधिक और किसीमें कम है। जिनमे क्षमता कम है उनका जीवन सुखमय नही होता।

जीवनसंग्राम केवल आपसमें ही नही होता प्रत्येक प्राणी तथा वनस्पतिको प्रकृतिका भी सामना करना पडता है। जो अपना शरीर प्रकृतिके अनुकूल कर सकता है वह सुखी रहता है और जो उसके विरुद्ध जाता है वह दु:ख पाता है। शीत देशोंमे सूर्यकी किरणोंमें बिलकुल तेज नहीं रहता, इस कारण वहाके मनुष्योंके चमडे सफेद होते हैं। पर जैसे जैसे अधिक उष्ण देशोंकी ओर जाते हैं तैसे तैसे वहाके निवासियोंके शरीरका रंग गहरा होता जाता है। सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे मनुष्य शरीर-की रक्षा करनेके निमित्त प्रकृति धीरे धीरे रंग उत्पन्न करने लगती है। अंगरेज लोग जब ताजे विलायतसे आते हैं तब उनका रंग बिलकुल सफेद रहता है, परन्तु कुछ वर्ष यहा रहनेके उपरात उनके चेहरे और हाथोंमें गेहुआ रंग आ जाता है। सूर्यसे उनकी रक्षा करनेके लिये यह प्रकृतिका उपाय है। उनका शरीर इस-लिये सफेद बना रहता है कि उसकी रक्षा पोशाक करती रहती है। यदि कोई श्वेत रंगका अभिमानी साबुन आदिका अधिक प्रयोग करके प्रकृतिकी चेष्टा निष्फल कर दे तो वह उसके प्रति-कूल जानेके कारण कई प्रकारके रोगोंसे क्लेश पावेगा। उदा-हरणके लिये ऐसे लोगोंको लू बहुत जल्द लगती है, उन्हें मच्छड खटमल आदि उष्ण देशकी व्याधिया अधिक सताती हैं।

उत्तर हिन्दुस्तानके निवासी बहुधा लम्बे होते हैं और उनकी पिंडलिया क्षीण होती हैं, क्योंकि उनका देश एक सपाट मैदान

है और वे लम्बी लम्बी डगें भर सकते हैं। चलनेमें उनको विशेष परिश्रम नहीं होता, इस कारण उनके पैर गठीले नहीं होते, परन्तु नैपालनिवासी गुरखों, कांगडा-निवासी डोगरों और सह्याद्रि-निवासी मरहट्ठोंकी छाती चौडी, पैर गठीले और कद छोटा होता है। वजह यह है कि पहाडी जमीनपर लम्बी डगें भरना असम्भव है, यह देख प्रकृतिने उनकी टांगें छोटी रखी हैं, परन्तु वहांपर चलने फिरनेसे कलेजे, जांघ तथा पिण्डलियोंको बडी मिहनत करनी होती है। इस वास्ते उनकी छाती चौडी और पैर गठीले हो जाते हैं। जो जीवधारी जैसे देशमें पैदा होता है उसमें रहने योग्य बहुत कुछ उसे शरीर भी मिल जाता है और यदि कमी भी हुई तो प्रकृतिका सामना करते करते उसमें धीरे धीरे परिवर्त्तन होकर वह योग्य भी हो जाता है।

यदि कोई खासा ऊँचा पूरा मनुष्य गङ्गाकिनारेसे उठकर नैपालके पहाडोंमें जा बसे तो दो तीन पीढीमें उसके वंशजोंके शरीर नैपालियों सरीखे छोटे और गठीले हो जावेंगे। उसके शरीरमें भी थोडा बहुत परिवर्त्तन अवश्य होगा, परन्तु बहुत धीरे धीरे।

लोगोंके अनुभवमें आता है कि एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेसे उनकी तबीयत बिगड जाती है, वहांका पानी माफिक नहीं आता। इसका मतलब यह है कि उस प्रदेशकी आबहवासे जीवनसंग्राम करनेमें उनको जय नहीं मिली। कभी कभी लोग परदेश जाकर टिक तो जाते हैं, परन्तु फिर भी थोडे बहुत बलहीन हो जाते हैं और यदि वहाँ बस गये तो उनकी सन्तति और भी बलहीन हो जाती है। उनके बारेमें यह कह सकते हैं कि जीवनसंग्राममें उन्हें जय तो मिली, परन्तु पूर्ण रूपसे नहीं। पंजाब और संयुक्त प्रान्तके सैनिक यदि बहुत दिनोंतक दक्षिण बङ्गाल अथवा ब्रह्मदेशमें रह जावें तो उनका भी यही हाल होगा। अंगरेज लोग इस देशमें अधिक दिन रह जानेके उपरान्त

इसी प्रकार क्षीण होने लगते हैं । कारण यही है कि वे लोग प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलकर उसके प्रतिकूल चलते हैं। उत्तर हिन्दुस्तानकी आवहवा शुष्क है, वहा बाजरा, उडद, गेहू, सत्तू आदि वस्तुओंके खानेसे शरीरको बल मिलता है और लाभ होता है, परन्तु बङ्गालके सरीखे उष्ण और तर देशमें वे लोग अपने भोज्य पदार्थ वही रखते हैं । सूखे देशोंका भोजन वहाकी प्रकृतिके अनुकुल नहीं होता, अजीर्ण आदि रोग उन्हें सताने लगते हैं और वे बलहीन हो जाते हैं।

प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलनेसे मनुष्यको अपने देशमें ही अनेक कष्ट उठाने पडते हैं, परदेशकी बात दूसरी है। शरीरकी आवश्यकताओंको यथोचित रीतिसे पूर्ण न करनेसे, ऋतुके अनुसार खानपान, रहनसहन न बदलने तथा उचित व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम न करनेसे मनुष्य कहीं भी अनेक व्याधियोंसे क्लेशित हो अकाल मृत्युको प्राप्त होगा अर्थात् जीवनसग्राममें हार जावेगा।

अब जरा यह देखना चाहिये कि जीवनसग्राममें प्रकृति अन्य जीवधारियोंको किस प्रकार सहायता देती है। वनस्पत्याहारियोंमें हाथी सबसे बली है, परन्तु उसे जलसे अधिक प्रेम है, इस कारण वह ऐसे देशमें पनपता है जहाँ जलकी बहुतायत हो, जैसे आसाम, ब्रह्मा, बङ्गाल, स्याम, लका आदि देशोंमें। जहा पानी इफरातसे है वहा वनस्पतिया भी खूब होती हैं और वहीं उस भीमकायके योग्य भोजन मिलेगा। उसका सिर बहुत भारी है जिसका बोझ सभालनेके लिये मोटी तथा छोटी गर्दन रखी गयी है। उसे ऊँचे पेडोंसे पत्ते तोडकर खानेके लिये तथा मनमाना जल पीने तथा नहानेमें सहायता देनेके लिये लम्बी सूड मिली है। जिन देशमें वह उत्पन्न होता है वहाँ रहनेके लिये उसका शरीर भी कैसा योग्य बना है।

ऊंटको मरुस्थलका हाथी कहें तो अनुचित न होगा। उसके

शरीरकी रचना मरुभूमिके ही योग्य है, रेतमें पर धँस न जावें इसलिये उसके तलुवे चौडे गद्दीदार बने हैं। मरुस्थलमें पानी सिर्फ गाहेवगाहे मिल सकता है इस कारण उसमें सात आठ दिनके लिये पानी पेटमें रख लेनेकी शक्ति दी गयी है। मरुदेशमें बबूलके सिवाय और क्या उत्पन्न हो सकता है, परन्तु जिसके काटेके लग जानेसे मनुष्य महीनों खाटमें पडा रहता है उसी बबूलको खाकर ऊट अपना पेट भर सकता है। उसके थूकमें काटोंको छीलकर नरम करनेकी शक्ति है। फिर तारीफ यह कि ऊपर नीचे दहिने बायें जहा कहीं खाने योग्य कोई वनस्पति हो वह अपनी लचीली गर्दन घुमाकर खा सकेगा। रेगिस्तानमें रहनेवाले एक बडे जीवकी यदि ऐसी गर्दन न होती तो वह बेचारा वहाकी कठोर प्रकृतिसे टक्कर कैसे ला सकता? इसी ऊटको जब तर देशोंमें ले जाते हैं तब वहाके कीचड आदिमें चलनेमें उसे अत्यन्त कष्ट होता है। रेतीले देशोंमें मच्छड, पिस्सू, डास आदि कीडे बहुत कम होते हैं, इसलिये गाय, भैंस, घोडे आदि पशुओंके समान उनके हमले सहनेकी शक्ति ऊटमें बहुत कम रहती है। गर्म और तर देशमें तो मच्छड, पिस्सू आदि जीवोंकी विलायत है। वहा आनेपर इनके कारण ऊटको बडा कष्ट होता है, उसे घाव हो जाते हैं जो जल्दी सडने लगते हैं और वह बेचारा तडप तडपकर मर जाता है। वहाके जीवन युद्धमें बहुत कम ऊट जय पा सकते हैं। उनमें उतनी क्षमता नहीं। परन्तु गाय बैल घोडों गधों और कुत्तोंमें अधिक क्षमता होनेके कारण वे गर्म, शीत, तर, शुष्क सभी देशोंमें रह सकते हैं।

अन्य प्राणियोंकी शरीर रचना तथा उनका रहनसहन देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येक प्राणीको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता दी है और वे उसकी सहायतासे अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। फरक केवल

इसी प्रकार क्षीण होने लगते हैं। कारण यही है कि वे लोग प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलकर उसके प्रतिकूल चलते हैं। उत्तर हिन्दुस्तानकी आवहवा शुष्क है, वहा बाजरा, उडद, गेहू, सत्तू आदि वस्तुओंके खानेसे शरीरको बल मिलता है और लाभ होता है, परन्तु बङ्गालके सरीखे उष्ण और तर देशमें वे लोग अपने भोज्य पदार्थ वही रखते हैं। सूखे देशोंका भोजन वहाकी प्रकृतिके अनुकुल नहीं होता, अजीर्ण आदि रोग उन्हें सताने लगते हैं और वे बलहीन हो जाते हैं।

प्रकृतिके नियमोंके अनुकूल न चलनेसे मनुष्यको अपने देशमें ही अनेक कष्ट उठाने पडते हैं, परदेशकी बात दूसरी है। शरीरकी आवश्यकताओंको यथोचित रीतिसे पूर्ण न करनेसे, ऋतुके अनुसार खानपान, रहनसहन न बदलने तथा उचित व्यायाम अथवा शारीरिक परिश्रम न करनेसे मनुष्य कहीं भी अनेक व्याधियोंसे क्लेशित हो अकाल मृत्युको प्राप्त होगा अर्थात् जीवनसग्राममें हार जावेगा।

अब जरा यह देखना चाहिये कि जीवनसग्राममें प्रकृति अन्य जीवधारियोंको किस प्रकार सहायता देती है। वनस्पत्याहारियोंमें हाथी सबसे बली है, परन्तु उसे जलसे अधिक प्रेम है, इस कारण वह ऐसे देशमें पनपता है जहाँ जलकी बहुतायत हो, जैसे आसाम, ब्रह्मा, बङ्गाल, स्याम, लका आदि देशोंमें। जहा पानी इफरातसे है वहा वनस्पतिया भी खूब होती है और वहीं उस भीमकायके योग्य भोजन मिलेगा। उसका सिर बहुत भारी है जिसका बोझ सभालनेके लिये मोटी तथा छोटी गर्दन रखी गयी है। उसे ऊँचे पेडोंसे पत्ते तोडकर खानेके लिये तथा मनमाना जल पीने तथा नहानेमें सहायता देनेके लिये लम्बी सूड मिली है। जिन देशमें वह उत्पन्न होता है वहाँ रहनेके लिये उसका शरीर भी कैसा योग्य बना है।

ऊंटको मरुस्थलका हाथी कहें तो अनुचित न होगा। उसके

शरीरकी रचना मरुभूमिके ही योग्य है, रेतमें पर धंस न जावें इसलिये उसके तलुवे चौडे गद्दीदार बने हैं। मरुस्थलमें पानी सिर्फ गाहेबगाहे मिल सकता है इस कारण उसमें सात आठ दिनके लिये पानी पेटमें रख लेनेकी शक्ति दी गयी है। मरुदेशमें बबूलके सिवाय और क्या उत्पन्न हो सकता है, परन्तु जिसके काटेके लग जानेसे मनुष्य महीनों खाटमें पडा रहता है उसी बबूलको खाकर ऊंट अपना पेट भर सकता है। उसके थूकमें कांटोंको छीलकर नरम करनेकी शक्ति है। फिर तारीफ यह कि ऊपर नीचे दहिने बायें जहां कहीं खाने योग्य कोई वनस्पति हो वह अपनी लचीली गर्दन घुमाकर खा सकेगा। रेगिस्तानमें रहनेवाले एक बडे जीवकी यदि ऐसी गर्दन न होती तो वह बेचारा वहांकी कठोर प्रकृतिसे टक्कर कैसे खा सकता? इसी ऊंटको जब तर देशोंमें ले जाते हैं तब वहांके कीचड आदिमें चलनेमें उसे अत्यन्त कष्ट होता है। रेतीले देशोंमें मच्छड, पिस्सू, डास आदि कीडे बहुत कम होते हैं, इसलिये गाय, भैंस, घोडे आदि पशुओंके समान उनके हमले सहनेको शक्ति ऊंटमें बहुत कम रहती है। गर्म और तर देशमें तो मच्छड, पिस्सू आदि जीवोंकी विलायत है। वहां आनेपर इनके कारण ऊंटको बडा कष्ट होता है, उसे घाव हो जाते हैं जो जल्दी सडने लगते हैं और वह बेचारा तडप तडपकर मर जाता है। वहांके जीवन युद्धमें बहुत कम ऊंट जय पा सकते हैं। उनमें उतनी क्षमता नहीं। परन्तु गाय बैल घोडों गधों और कुत्तोंमें अधिक क्षमता होनेके कारण वे गर्म, शीत, तर, शुष्क सभी देशोंमें रह सकते हैं।

अन्य प्राणियोंकी शरीर-रचना तथा उनका रहनसहन देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येक प्राणीको किसी न किसी प्रकारकी क्षमता दी है और वे उसकी सहायतासे अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। फरक केवल इतना ही है

किसीको एक ही प्रकारकी आबहवाके लायक बनाया है और किसीके शरीरमें इतनी शक्ति है कि वह कई प्रकारकी आबहवामें टिक सकता है। सिवाय इसके प्रत्येक प्राणीका शरीर इस प्रकारका बना है कि जिस प्रकारका जीवन उसे व्यतीत करना है उसको कठिनाइया झेलनेमें उसे सहायता मिले। तोतेको कडी चोंच देकर उसे बादाम सरीखे कडे फल खानेयोग्य बनाया है। गौरैयाकी नरम चोंच है, वह केवल अन्नके दाने और छोटे छोटे कीडे मकोडे खा सकती है। बतकको जुडे नख देकर पानीमें तैरनेयोग्य बनाया है, इत्यादि।

अब यह देखना चाहिये कि वनस्पतियोंका क्या हाल है। उनके अवलोकन करनेसे भी यही ज्ञात होता है कि प्रकृतिने प्रत्येकको एक विशेष देश तथा जलवायुमें जीवनयुद्ध कर सफलता प्राप्त करनेयोग्य बनाया है। उनको दूसरे प्रान्तमें ले जानेसे उनकी तबीयत नासाज हो जाती है। मनुष्योंके समान वनस्पतियोंमें भी कई पौदे लखनवी मिजाजके होते हैं, अर्थात् गर्मी सर्दी आदि ज्यादा बरदाश्त नहीं कर सकते। उनको जरा तकलीफ हुई कि सूखने लगे। पपीतेका पेड बडी कोमल प्रकृतिका होता है, पानी जरा कम वा अधिक नहीं सह सकता। उसके विपरीत अमरूद, सीताफल (शरीफा), पीपल आदि पेड ऐसे पक्के शरीरके होते हैं कि उनको सब जगह आनन्द है। जिस प्रकार काबुली अथवा पजाबी लोग किसी भी देशमें जाकर औरोंकी अपेक्षा सुखी रहते हैं उसी प्रकार ये पेड भी अनेक देशों तथा जलवायुमें अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं।

फिर भी चाहे वह सक्षम हों अथवा अक्षम, प्रत्येक वनस्पति किसी विशेष प्रकारकी आबहवा और धरतीके ही अनुकूल बनी है और उसी जगह उसका पूर्ण रूपसे विकास हो सकता है।

चावलके लिये गर्म और तर देश ऐसा सपाट चाहिये जहा जलखात बनाकर पानी रोका जा सके। चायके लिये भी पानी

अधिक चाहिये, पर शर्त यह है कि वह बरसकर बह जावे। उसके ठहर जानेसे चायकी जड़ें जल्दी गल जाती हैं। इसी कारण चायकी खेती ऐसे पहाड़ोंकी ढालू जमीनमें होती हैं जहा अतिवृष्टि होती हो। केला, नारियल, सुपारी, हल्दी आदिके पेड भी अतिवृष्टि चाहते हैं, उनकी जड़ें बहुत कुछ पानी सह सकती हैं, परन्तु पेड लू लगनेसे बहुत कष्ट पाते हैं। नतीजा यह कि ये कोकण, मलाबार, त्रावणकोर, बगाल आदि ऐसे देशोंमें पाये जाते हैं जहाँ जल बहुत ज्यादा होता है और समुद्रतटके किनारे होनेसे लू भी नहीं चलती। उत्तर हिन्दुस्तानमें ये पेड लगानेसे एक तो होते ही नहीं और यदि मेहनत करनेसे लग भी गये तो अधमरे होते हैं और उनके फल भी अच्छे नहीं होते।

ज्वार, बाजरा और उड़दके लिये उष्ण वायु चाहिये, परन्तु जितना जल चावलको चाहिये उससे आधे तिहाईमें उनका काम चल जाता है। इस कारण दक्षिणकी उच्च समभूमिमें जहा तीस चालीस इचसे अधिक वर्षा नहीं होती, ज्वार अधिक होती है। बाजरेको और भी कम जल चाहिये, इस कारण राजपूतानेकी मरुभूमिके आसपासको प्राय रेतीली धरतीमें उत्पन्न होता है। गेहूको अच्छी खासी सर्दी और ओस चाहिये, थोडा पानी भी चाहिये। इसलिये वह उत्तर मध्य हिन्दुस्तानके मैदानोंमें जहा ठढ अच्छी पडती और एक बार वर्षा भी हो जाती है बहुतायतसे होता है। रूस युनाइटेड स्टेट्स रोमानियामें जडकालेमें बरफ गिरती हैं, जो गेहूको सह्य नहीं है, परन्तु वहाकी ग्रीष्म ऋतु हमारे जाडेकी ऋतुके समान हो जाती है। इस समयसे उन देशोंकी गरमीमें ही गेहूकी फसल पैदा होती है। गेहूके लिये नदियोंके किनारेकी काली धरती उत्तम समझी जाती है। गोदावरी नदीके आस-पासके कछारोंमें काली धरती बहुत है परन्तु वहा बहुत कम गेहू उत्पन्न होता है और यदि हुआ भी तो स्वादरहित और निर्जीव। वहाकी आबहवासे संग्राम करनेमें वह कमजोर हो जाता है।

चनेको गेहूकी अपेक्षा और भी कम पानी चाहिये जहा ओस पड़ती है पर वर्षा नहीं होती ।

आम एक सक्षम पेड है, कई प्रकारकी आबहवामें पनप सकता है। परन्तु गंगा यमुना आदि नदियोंके किनारेकी पीली ककडरहित धरतीमें वह जैसे उत्तम फल दे सकता है वैसे अन्य स्थानोंमें नही। इसी कारण यह फल उत्तर हिन्दुस्तानका मेवा हो रहा है। खरबूजे, तरबूज, भट्टे, ककड़ो आदिका पानी बहुत चाहिये, पर उनकी जडोंमें यह शक्ति नहीं कि कडी मिट्टीमें घुसकर बढ़ें। इसलिये नदियोंके किनारेकी रेतीली धरतीमें ही उनका जीवन सुखमय और उनका विकास पूर्ण रूपसे होता है। अन्य स्थानोंमें उनके बीज लगानेसे फल तो हो जाते हैं, पर आकारमें छोटे तथा स्वादमें फीके हो जाते हैं।

इस लेखका सार यह है कि जो प्राणी और वनस्पति प्रकृतिके अनुकूल स्थानमें रहेंगे, सुख पावेंगे और उसके प्रतिकूल स्थानमें यदि गये तो उन्हें कठिन जीवनसंग्राम करना पडेगा। उस युद्धमें यदि उनका नाश न हुआ तो वे बलहीन अवश्य हो जावेंगे।

५ अशोक

(१)

राजकीय काननमें अनेक प्रकारके वृक्ष सौरभित सुमनोंसे भरे झूम रहे हैं। कोकिला भी कूक कूककर आमकी डालीको हिलाये देती हैं। नववसन्तका समागम है। मलयानिल इठलाता हुआ कुसुम कलियोंको ठुकराता जा रहा है। इसी समय काननिकटस्थ शैलके झरनेके पास बैठकर एक युवक जल लहरियोंकी तरंगभंगी देख रहा है। युवक सरल विलोकनसे कृत्रिम जलप्रपातको देख रहा है। उसकी मनोहर लहरिया जो कि बहुत हो जल्दी जल्दी लीन हो स्रोतमें मिलकर सरल पथका अनुकरण करती हैं, उसे बहुत ही भली मालूम हो रही हैं, पर

युवकको यह नही मालूम कि उसकी सरल दृष्टि और सुन्दर अवयवसे विवश होकर एक रमणी अपने परम पवित्र पदसे च्युत होना चाहती है।

देखो, उस लताकुंजमें पत्तियोंकी ओटमे दो नीलमणिके समान कृष्णतारा चमककर किसी अद्भुत आश्चर्यका पता बता रहे हैं। नहीं नहीं, देखो, चन्द्रमामें भी कहीं तारा रहते हैं? वह तो किसी सुन्दरीके मुखकमलका आभास है। ऐसे ही स्थलोंको देखकर अभिधानकारोंने स्थलपद्मकी कल्पना की है।

युवक अपने आनन्दमें मग्न है। उसे इसका कुछ भी ध्यान नही है कि कोई व्याध उसकी ओर अलक्षित होकर वाण चला रहा है। युवक उठा और उसी कुञ्जकी ओर चला। क्यों चला? इसका उत्तर हम नहीं दे सकते। किसी प्रच्छन्न शक्तिकी प्रेरणासे वह युवक उसी लताकुंजकी ओर बढा। किन्तु उसकी दृष्टि वहा जब भीतर पडी तो वह अवाक् हो गया। उसके दोनों हाथ आप जुट गये। उसका शिर स्वय अवनत हो गया। रमणी स्थिर होकर खडी थी, उसके हृदयमें उद्वेग और शरीरमें कम्प था। धीरे धीरे उसके होंठ हिले और कुछ मधुर शब्द निकले। पर वे शब्द अस्पष्ट होकर वायुमण्डलमें लीन हो गये। युवकका शिर नीचे ही था। फिर युवतीने अपनेको सँभाला और बोली—"कुनाल, तुम यहा कैसे? अच्छे तो हो?"

"माताजीकी कृपासे"—उत्तरमें कुनालने कहा।

युवती मन्द मुसकानके साथ बोली—"मैं तुम्हें बहुत देरसे यहा छिपकर देख रही हू।"

कुनाल—"महारानी तिष्यरक्षिताको छिपकर देखनेकी क्या आवश्यकता है?"

तिष्य०—(कुछ कम्पित स्वरसे) "तुम्हारे सौन्दर्यसे विवश होकर।"

कुनाल—(विस्मित तथा भीत होकर) "पुत्रका सौन्द[illegible] तो माताहीका दिया हुआ है।"

तिष्य०—नहीं कुनाल, मैं तुम्हारी प्रेम भिखारिनी हू । राज[illegible] रानी नहीं हू और न तुम्हारी माता हू ।

कुनाल—(कुञ्जसे बाहर निकलकर) माताजी, मेरा प्रणा[illegible] ग्रहण कीजिये और अपने इस पापका प्रायश्चित्त कीजिये । जहा[illegible] तक सभव होगा अब आप इस पापमुखको कभी न देखेंगी ।

इतना कहकर शीघ्रतासे वह युवक, नहीं नहीं राजकुमार कुनाल, अपनी विमाताकी बात सोचता हुआ उपवनके बाहर निकल गया। पर तिष्यरक्षिता किंकर्त्तव्यविमूढ होकर वहीं तबतक खडी रही जबतक किसी दासीके आभूषणशब्दने उसकी मोहनिद्राको भग नहीं किया ।

(२)

श्रीनगरके समीपवर्त्ती काननमें एक कुटीरके द्वारपर कुनाल बैठा हुआ ध्यानमग्न है । उसकी सुशील पत्नी उसी कुटीरमें कुछ भोजन बना रही है ।

कुटीर स्वच्छ तथा उसकी भूमि परिष्कृत है। शान्तिकी प्रबलताके कारण पवन भी उस समय धीरे धीरे चल रहा है ।

किन्तु वह शान्ति देरतक नहीं रही, क्योंकि एक दौडता हुआ मृगशावक कुनालकी गोदमें आ गिरा, जिससे उसके ध्यानमें विघ्न हुआ और वह खडा हो गया। कुनालने उस मृगशावकको देखकर समझा कि कोई व्याध भी इसके पीछे आता ही होगा। पर जब कोई उसे न देख पडा तो उसने उस मृगशावकको अपनी स्त्री धर्मरक्षिताको देकर कहा—"प्रिये क्या तुम इसको बच्चेकी तरह पालोगी ?"

धर्मरक्षिता—"प्राणनाथ, हमारे ऐसे वनचारियोंको ऐसे ही बच्चे चाहिये ।"

कुनाल—"प्रिये, तुमको हमारे साथ बहुत कष्ट है।"

धर्म०—"नाथ, इस स्थानपर यदि सुख न मिला तो मैं समझूंगी कि संसारमें कहीं भी सुख नहीं है।"

कुनाल—"किन्तु प्रिये, क्या तुम्हें वे सब राजसुख याद नहीं आते? क्या उनकी स्मृति तुम्हें नहीं सताती? और क्या तुम अपनी मर्मवेदनासे निकलते हुए आंसुओंको रोक नहीं लेती? या वह सचमुच हुई नहीं है?"

धर्म०—"प्राणाधार! कुछ नहीं है। यह सब आपका भ्रम है। मेरा हृदय जितना इस शान्त वनमें आनन्दित है उतना कहीं भी नहीं रहा। भला ऐसे स्वभाववर्द्धित सरल सीधे और सुमन वाले साथी कहां मिलने? ऐसी मृदुल लता, जो कि अनायास ही चरणको चूमती है, कहीं उस जनरवसे भरे हुए राजकीय नगरमें मिली थी? नाथ, और सच कहना (मृगको चूमकर) ऐसा प्यारा शिशु भी तुम्हें आज तक कहीं मिला था? तिसपर आपको अपनी विमाताकी कृपासे जो दुःख मिलता था वह भी यहां नहीं है। फिर ऐसा सुखमय जीवन और कौन होगा?"

कुनालके नेत्र आंसुओंसे भर आये और वह उठकर टहलने लगे। धर्मरक्षिता भी अपने कार्यमें लगी। मधुर पवन भी उस भूमिमें उसी प्रकार चलने लगा। कुनालका हृदय अशान्त हो उठा और वह टहलता हुआ कुछ दूर निकल गया। जब नगरका समीपवर्ती प्रान्त उसे दिखलाई पड़ा तो वह रुक गया और उसी ओर देखने लगा।

पांच छः मनुष्य दौड़ते हुए चले आ रहे हैं। वे कुनालके पास पहुंचना ही चाहते थे कि उनके पीछे बीस अश्वारोही देख पड़े। वे सबके सब कुनालके समीप पहुंचे। कुनाल चकित दृष्टिसे उन सबको देख रहा था।

आगे दौड़कर आनेवालोंने कहा—"महाराज हम लोगोंको बचाइये।"

कुनाल उन लोगोंको पीछे करके आप आगे डटकर खड़ा हो गया। वे अश्वारोही भी उस युवक कुनालके अपूर्व तेजोमय स्वरूपको देखकर सहमकर उसी स्थानपर खडे हो गये। कुनालने उन अश्वारोहियोंसे पूछा—"तुम लोग इन्हे क्यों सता रहे हो? क्या इन लोगोंने कोई ऐसा कार्य किया है जिससे ये लोग न्यायत दण्डके भागी समझे गये हैं?"

एक अश्वारोही जो उन लोगोंका नायक था बोला, हमलोग राजकीय सैनिक हैं और राजाकी आज्ञासे इन विधर्मी जैनियोंका वध करनेके लिये आये हैं। पर आप कौन हैं जो महाराज चक्रवर्त्ती देवप्रिय अशोक देवकी आज्ञाका विरोध करनेपर उद्यत हैं?

कुनाल—"पर वह राजा कितना बडा है जिसकी आज्ञा माननेके लिये तुम लोग इतना घोर दुष्कर्म कर रहे हो?"

नायक—"मूर्ख! क्या तू अभी तक महाराज अशोकका पराक्रम नहीं जानता, जिन्होंने अपने प्रचण्ड भुजदण्डके बलसे कलिंग विजय किया है? और जिनकी राज्यसीमा दक्षिणमें केरल और मलयगिरि, उत्तरमें सिन्धुकोश पर्वत तथा पूर्व और पश्चिममें किरात देश और पटल है? जिनकी मैत्रीके लिये यवन नृपतिलोग उद्योग करते रहते हैं? उन महाराजको तू भली भांति नहीं जानता?"

कुनाल—पर कोई उससे बडा भी साम्राज्य है जिसके लिये किसी राज्यकी मैत्रीकी आवश्यकता नहीं है।

नायक—हमें इस विवादकी आवश्यकता नही है, हम अपना काम करेंगे।

कुनाल—तो क्या तुम इन अनाथ जीवोंपर कुछ दया न करोगे?

इतना कहते कहते राजकुमारको कुछ क्रोध आगया, नेत्र लाल हो गये। नायक उस तेजस्वी मूर्त्तिको देखकर एक बार फिर सहम गया। कुनालने कहा—"अच्छा यदि तुम न मानोगे

तो यहाके शासकसे जाकर कहो कि राजकुमार कुनाल तुम्हे बुला रहे हैं।

नायक सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। तब उसने अपने एक साथीकी ओर देखकर कहा—"जाओ, इन बातोंको कहकर दूसरी आज्ञा लेकर जल्द आओ।

अश्वारोही शीघ्रतासे नगरकी ओर चला। शेष सब लोग उसी स्थानपर खड़े थे। थोडी देरमें उसी ओरसे दो अश्वारोही आते हुए दिखाई पड़े। एक तो वही था जो भेजा गया था और दूसरा उस प्रदेशका शासक था। समीप आते ही वह घोड़ेपरसे उतर पडा और कुनालको अभिवादन करनेके लिये बढा। पर कुनालने रोककर कहा—"बस हो चुका, हमने आपको इसलिये कष्ट दिया है कि इन बेचारे मनुष्योंकी क्यों हिंसा की जा रही है।"

शासक—राजकुमार! आपके पिताकी आज्ञा ही ऐसी है और आपका यह वेश क्यों है?

कुनाल—इसके पूछनेकी कोई आवश्यकता नहीं, पर क्या तुम इन लोगोंको मेरे कहनेसे छोड सकते हो?

शासक—(दुखित होकर) "राजकुमार, आपकी आज्ञा हम कैसे टाल सकते हैं (ठहरकर) पर एक और बड़े दुखकी बात है।

कुनाल—वह क्या?

शासकने एक पत्र अपने पाससे निकालकर कुनालको दिखलाया। कुनाल उसे पढकर चुप रहा और थोडी देरके बाद बोला—तो तुमको इस आज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये।

शासक—पर यह कैसे हो सकता है?

कुनाल—जैसे हो, वह तो तुम्हे करना ही होगा।

शासक—किन्तु राजकुमार, आपके इस देवशरीरके दो नेत्ररत्न निकालनेका बल मेरे हाथोंमें नहीं है। हा, मैं अपने इस पदको त्याग कर सकता हू।

कुनाल—अच्छा तो तुम मुझे इन लोगोंके साथ महाराजके समीप भेज दो ।

शासकने कहा—जैसी आज्ञा ।

(३)

पौण्ड्रवर्द्धन नगरमें हाहाकार मचा हुआ है । नगरनिवासी प्राय उद्विग्न हो रहे है । पर विशेषकर जैन लोगोंहीमें खलबली मची हुई है । जैन रमणी जिन्होंने कभी घरके बाहर पैर भी नहीं रखा था, छोटे शिशुओंको लिये हुए भाग रही हैं । पर जाय कहा ? जिधर देखतो हैं उधर ही सशस्त्र कालरूप बौद्ध लोग उन्मत्तोंकी तरह दिखाई पडते हैं । देखो वह स्त्री जिसके केश परिश्रमसे खुल गये हैं, गोदका शिशु अलग मचल कर रो रहा है, थककर एक वृक्षके नीचे बैठ गयी हैं, अरे देखो, दुष्ट निर्दय वहा भी पहुच गये, और उस स्त्रीको सताने लगे ।

युवतीने हाथ जोडकर कहा—आप लोग दु ख मत दीजिये । फिर उसने एक एक करके अपने सब आभूषण उतार दिये और वे दुष्ट उन सब अलकारोंको लेकर भाग गये । इधर वह स्त्री निद्रासे क्लान्त होकर उसी तरुके नीचे सो गयी ।

उधर देखिये, वह एक रथ चला जा रहा है और उसके पर्दे हटकर बता रहे हैं कि उसमें स्त्री और पुरुष तीन चार बैठे हैं । पर सारथी उस ऊँची नीची और पथरीली भूमिमें भी उन लोगोंकी ओर विना ध्यान दिये रथ शीघ्रतासे लिये जा रहा है । सूर्यकी किरणें पश्चिममें फीकी हो गयी है, चारों ओर उस पथमें शान्ति है ! केवल उसी रथका शब्द सुनाई पडता है जो अभी उत्तरकी ओर चला जा रहा है । थोडी ही देरमें घोडे हाफते हुए थककर खडे हो गये । अब सारथी भी कुछ न कर सका और उसको रथके नीचे उतरना पडा ।

रथका रुका जानकर भीतरसे एक पुरुष निकला और उसने सारथीसे पूछा—क्यों, तुमने रथ क्यों रोक दिया ?

सारथी—अब घोडे नहीं चल सकते।

पुरुष—तब तो फिर बडी विपत्तिका सामना करना होगा। क्योंकि पीछा करनेवाले उन्मत्त सैनिक आ ही पहुँचेंगे।

सारथी—तब क्या किया जाय? (सोचकर) अच्छा आप लोग इस समीपकी कुटीमें चलिये, यहा कोई महात्मा हैं, वह अवश्य आप लोगोंको आश्रय देंगे।

पुरुषने कुछ सोचकर सब आरोहियोंको रथपरसे उतारा और वे सब लाग उसी कुटीकी ओर अग्रसर हुए।

कुटीके बाहर पत्थरपर एक अधेड मनुष्य बैठा हुआ है। उसका परिधेय वस्त्र भिक्षुकोंके समान है। रथपरके लोग उसीके सामने जाकर खडे हुए। उन्हें देखकर वह महात्मा बोले—आप लोग कौन हैं और यहा क्यों आये हैं?

उसी पुरुषने आगे बढकर हाथ जोडकर कहा—महात्मन्, हमलोग जैन हैं और महाराज अशोककी आज्ञासे जैन लोगोंका सर्वनाश किया जा रहा है। अत हमलोग प्राणके भयसे भागकर अन्यत्र जा रहे हैं। पर मार्गमें घोडे थक गये, अब ये इस समय चल नही सकते। क्या आप थोडी देरतक हमलोगोंको आश्रय दीजियेगा।

महात्मा थोडी देर सोचकर बोले, अच्छा आप लोग इसी कुटीमे चले जाइये।

स्त्री पुरुषोंने आश्रय पाया। अभी थोडी ही देर उन लोगोंको बैठे हुई है कि अकस्मात् अश्वपद शब्दने सबको चकित और भयभीत कर दिया। देखते देखते अश्वारोही उस कुटीके सामने पहुच गये। उनमेंसे एक महात्माकी ओर लक्ष्य करके बोला—ओ भिक्षु, क्या तूने भागे हुए जैन विधर्मियोंको अपने यहा आश्रय दिया है? समझ रख तू हम लोगोंसे बहाना नही कर सकता। क्योंकि उनका रथ इस बातका ठीक पता दे रहा है।

महात्मा—सैनिको, तुम उनको क्या करोगे? मैंने अवश्य

उन दुखियोंको आश्रय दिया है। क्यों व्यर्थ नररक्तसे अपने हाथोंको रंजित करते हो?

सैनिक अपने साथियोंकी ओर देखकर बोला—"यह दुष्ट भी जैन ही है ऊपरी बौद्ध बना हुआ है। इसे भी मारो।"

"इसे भी मारो" का शब्द गूंज उठा और देखते देखते उस महात्माका सिर भूमिमें लोटने लगा। इस काण्डको देखते ही कुटीके स्त्री पुरुष चिल्ला उठे। उन नरपिशाचोंने एकको भी न छोडा। सबकी हत्या की।

अब सब सैनिक धन खोजने लगे। मृत स्त्री पुरुषोंके आभूषण उतारे जाने लगे। एक सैनिक जो उस महात्माकी ओर झुका था, चिल्ला उठा। सबका ध्यान उसी ओर आकर्षित हुआ। सब सैनिकोंने देखा उसके हाथमें एक अंगूठी है जिसपर लिखा है "वीताशोक"।

(४)

महाराज अशोकके भाई जिनका पता नहीं लगता था वही वीताशोक मारे गये। चारों ओर उपद्रव शान्त है। पौण्ड्र-वर्द्धन नगर प्रशान्त समुद्रकी तरह हो गया है।

महाराज अशोक पाटलिपुत्रके साम्राज्य सिंहासनपर विचार-पति होकर बैठे हैं। राजसभाकी शोभा तो कहते नहीं बनती। सुवर्णरचित वेलबूटोंकी कारीगरीसे जिनमें मणिमाणिक्य स्थानानुकूल बिठाये गये हैं मौर्यसिंहासन-मन्दिर भारतवर्षका वैभव दिखा रहा है, जिसे देखकर पारसीक सम्राट् दाराके सिंहासनमन्दिरको ग्रीक लोग तुच्छ दृष्टिसे देखते थे।

धर्माधिकारी, प्राड्विवाक, महामात्य, धर्म-महामात्य, रज्जुक और सेनापति सब अपने अपने स्थानपर स्थित हैं। राजकीय तेजका सन्नाटा सबको चुप किये हुए है।

देखते देखते एक स्त्री और एक पुरुष उस सभामें आये। समास्थित सब लोगोंकी दृष्टिको पुरुषके अवनत तथा बड़े बड़े

नेत्रोंने आकर्षित कर लिया। किन्तु सब नीरव हैं। युवक और युवतीने मस्तक झुकाकर महाराजको अभिवादन किया।

स्वय महाराजने पूछा—"तुम्हारा नाम ?"

उत्तर—कुनाल।

प्रश्न—पिताका नाम ?

उत्तर—महाराज चक्रवर्त्ती धर्माशोक।

सब लोग उत्कण्ठा और विस्मयसे देखने लगे कि अब क्या होता है, पर महाराजका मुख कुछ भी विकृत न हुआ, प्रत्युत और भी गम्भीर स्वरसे प्रश्न करने लगे।

प्रश्न—तुमने कोई अपराध किया है ?

उत्तर—अपनी समझसे तो मैंने अपराधसे बचनेका उद्योग किया था।

प्रश्न—फिर तुम किस तरह अपराधी बनाये गये ?

उत्तर—तक्षशिलाके महासामन्तसे पूछिये।

महाराजकी आज्ञा होते ही शासक उपस्थित किया गया। उसने अभिवादनके उपरान्त एक पत्र उपस्थित किया जो अशोकके करमें पहुँचा। सब लोग देख रहे थे कि अब क्या होता है।

महाराजने क्षणभर महामात्यसे फिर पूछा, यह आज्ञापत्र कौन ले गया था ? उसे बुलाया जाय।

पत्रवाहक भी आया और कम्पित स्वरसे अभिवादन करते हुए बोला—धर्मावतार, यह पत्र मुझे महादेवी तिष्यरक्षिताके महलसे मिला था, और आज्ञा हुई थी कि इसे शीघ्र तक्षशिलाके शासकके पास पहुँचाओ।

महाराजने शासककी ओर देखा। उसने हाथ जोड़कर कहा—महाराज, यही आज्ञापत्र लेकर गया था।

महाराजने गम्भीर होकर अमात्यसे कहा—तिष्यरक्षिताको बुलाओ।

महामात्यने कुछ बोलनेके लिये चेष्टा की, किन्तु महाराजके

भृकुटिभगने उन्हें बोलनेसे निरस्त किया और वे अब स्वय उठे और चले।

महादेवी तिष्यरक्षिता राजसभामें उपस्थित हुई। अशोकने गम्भीर स्वरसे पूछा—यह तुम्हारी लेखनीसे लिखा गया है? क्या उस दिन तुमने इसी कुकर्मके लिये राजमुद्रा छिपा ली थी? क्या कुनालके बडे बडे सुन्दर नेत्रोंने ही तुम्हें अपने निकलवानेकी आज्ञा देनेके लिये विवश किया था? अवश्य तुम्हारा ही यह कुकर्म है। अस्तु तुम्हारी ऐसी स्त्रीको पृथ्वीके ऊपर नही किन्तु भीतर रहना चाहिये।

सब लोग काप उठे। कुनालने आगे बढ, घुटने टेक दिये और कहा—"क्षमा।"

अशोकने गम्भीर स्वरसे कहा—"नहीं।"

तिष्यरक्षिता उन्ही पुरुषोंके साथ गयी जो लोग उसे धरणीके भीतर रखनेवाले थे। महामात्यने राजकुमार कुनालको आसनपर बैठाया और धर्मरक्षिता महलमें गयी।

महामात्यने एक पत्र और एक अँगूठी महाराजको दी। यह पौण्ड्रवर्द्धनके शासकका पत्र तथा वीताशोककी अँगूठी थी।

पत्र पाठकरके और मुद्राको देखकर वही कठोर अशोक विह्वल हो गये और सिहासनपर गिर पडे।

उसी दिनसे कठोर अशोकने हत्याकी आज्ञा बन्द कर दी। स्थान स्थानपर जीवहिंसा न करनेकी आज्ञा पत्थरोंपर खुदवा दी गयी। कुछ ही कालके बाद महाराज अशोकने उद्विग्न चित्तको शान्त करनेके लिये भगवान बुद्धके प्रसिद्ध स्थानोंके देखनेके लिये धर्मयात्रा की।

—जयशकर प्रसाद

अकबरका सुशासन

मुसलमान बादशाहोंमें अकबर ही सबसे पहला बादशाह हुआ जिसने राजनीतिक तत्त्वको समझा। वास्तवमें मुगल-वंशका संस्थापक वही था और उसे ही भारतवर्षका हिन्दू-मुसलमानोंका—सच्चा राजा बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसका जीवनचरित्र पढ़नेसे आरम्भमें ही विचित्रता झलकने लगती है। पराजित शत्रुके प्रति दया दिखाना नवस्थापित राज्यमें कितना काम करता है, यह अकबर खूब समझता था। उसकी राजनीति सबसे निराली थी। उसके पहले मुसलमान बादशाहोंने न वैसा किया था, न उनसे वैसा होना सम्भव ही था। पानीपतकी दूसरी लड़ाईके बाद जब प्रभुभक्त हेमूं घायल होकर पकड़ा गया तब उसी आसन्नमृत्यु अवस्थामें वह अकबरके सामने लाया गया। वही योद्धा जो कुछ ही समय पहले एक बड़ी सेना इकट्ठी कर भारतवर्षकी ओरसे मुगलोंका सामना करने गया था, उसके भाग्यने कुछ ऐसा पलटा खाया कि घायल और बन्दी होकर अपने शत्रुके सामने हाजिर किया जाता है। ऐसे समयमें पठान बादशाह क्या करते यह कहनेकी आव श्यकता नहीं। खान बाबा बैरमखाने प्रचलित नियमोंके अनुसार ही युवक बादशाह अकबरसे कहा कि आप इस पराजित काफिरका सिर काट अपनी विजयिनी तलवारकी प्यास बुझावें। अकबर लड़का था परन्तु भावी महत्वका चिन्ह उसके रोम रोमसे झलकता था। सच्चे वीरको जैसा चाहिये उसी प्रकार अकबरने भी पराजित बन्दी तथा काफिर शत्रुको निर्दयतासे मारनेसे साफ इन्कार किया। परन्तु बैरम कर माननेवाला था, वह जिस रंगमें रँग चुका था, उसने जिस पाठशालामें शिक्षा पायी थी उसके विरुद्ध जाना उसकी अवस्थाके मनुष्यके लिये कठिन था। बैरमने झट मरते हुए हेमूका सिर

धड़से अलगकर अपनी शत्रुताकी आग बुझायी। पर इस एक घटनाने ही स्पष्ट कर दिखाया कि भारतका भावी सम्राट् किस प्रकारका मनुष्य था। ज्यों ज्यों अकबरकी उम्र बढ़ती गयी उसके विचार भी प्रौढ होते गये और साथ ही भारत शासनकी पद्धति भी बदलती गयी। अकबरने मनुसंहितामें कही हुई ऋषियोंकी बातोंका ही प्रयोग करना उचित समझा। सम्भव है कि अबुलफजल और फैजी जैसे संस्कृतके विद्वानोंने उक्त बातें अकबरको सुझायी हों। जो हो, इतना अवश्य सत्य है कि अकबरने निश्चय कर लिया था कि भारतवर्षका राज्य केवल बाहुबलपर ही स्थिर नहीं रह सकेगा। जबतक इस राज्यकी नींव प्रजाके प्रेम तथा सहानुभूतिपर न पड़ेगी, जबतक हिन्दू मुसलमानका मेल न बढ़ेगा, आपसकी फूट न मिटेगी, विजेता और विजितका भाव न घटेगा, तबतक अकबर निश्चिन्त न रह सकेगा। इन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये उसने कई उपाय किये। मुगलोंने यद्यपि पानीपतकी लड़ाईमें अफगानोंको सर करना, मुगलोंके राज्यका विस्तार करना तथा हिन्दू प्रजाको भी मिलाये रहना सोच रखा था तो भी एक साथ ये तीनों काम संकीर्ण नीतिके अवलम्बनसे नहीं हो सकते थे। अकबर दूर-न्देश था, उसने पहले हिन्दुओंको विशेषकर राजपूत वीरोंको वशमें करनेकी ठानी। लड़ाईसे वा प्रलोभनसे वा मनुके बताये उपायोंसे किसी न किसी प्रकार उसने राजपूत नरेशोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। क्रमशः सबके सब, केवल महाराना उदय सिंह और अद्वितीय वीर प्रतापसिंहको छोड़, अकबरके मित्र वा सम्बन्धी बन गये। वे बड़े बड़े पदोंपर बिठाये गये, राजपूतों-की सेना बनी और उसके अधिनायक तथा नायक राजपूत राजा ही होने लगे। अब क्या था, राजाके प्रेम और विश्वास-पर मुग्ध होकर हिन्दुओंने प्राणतक अर्पण करना तुच्छ समझा। उन्हें अपनी योग्यता दिखाने तथा अकबरको अपना पक्ष पुष्ट

करनेका इससे बढ़कर और कौन अवसर मिल सकता था। हिन्दू मन्सबदार काबुल या बंगालके अफगानोंके सर करनेके लिये नियुक्त किये जाने लगे। जो बातें यहां मुसलमानोंके इतिहासमें कभी नहीं हुई थीं वह अकबरने कर दिखायीं।

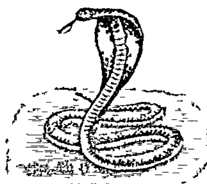
धर्मके नामपर, ईश्वरभक्तिके बहाने, कितनी खूनखराबी हुई इसकी गवाही इतिहास पुकार पुकारकर दे रहा है। हमारा ही धर्म सच्चा है, हम ईश्वरको जो आकार जो गुण देते हैं वही ठीक है, हम जिस प्रकार उसकी पूजा करते हैं हमने उसकी उपासनाके लिये जो पद्धति बनायी है और जो मन्दिर उठाया है वही ठीक है, मद्भिन्न दूसरोंकी सब बातें बिलकुल झूठी निःसार हैं। इतना ही नहीं हम जो कहते हैं या जो करनेकी सलाह देते हैं दूसरोंको भी वही मानना और करना पड़ेगा। यदि न करेंगे तो उन्हें तलवारके जोरसे सच्चे रास्तेपर खींच लाना हमारा धर्म है। यही आजतकके धर्मयुद्धोंकी नीति रही है। इन्हीं विचारोंसे परिचालित ईश्वरके भक्तोंने रक्तकी कितनी नदियां बहायीं और निरपराधियोंके रुण्ड मुण्डके कैसे कैसे पहाड़ खड़े किये, उनका अब कौन हिसाब लगा सकता है? कैथलिक और प्रोटेस्टेण्टोंके युद्ध, मुसलमानों और कृस्तानोंकी धार्मिक लड़ाइयां, हिन्दुओं और बौद्धोंके समर और हिन्दू मुसलमानोंके युद्ध उनके प्रमाण हैं। पर इन सब लड़ाई झगड़ोंका क्या फल हुआ? कोई किसी दूसरे धर्मका समूल नाश न कर सका। ईश्वर जो था वही रहा। वह न पराजितोंके ही पास आया न उसने विजेताओंकोही अपनाया। उसके लिये सब बराबर हैं, सब उसीके जीव हैं। अपनी अपनी रुचि और बुद्धिके अनुसार लोग उसके रूपकी कल्पना करते और उपासनाकी पद्धति बना लेते हैं। इन विचारोंपर चलनेके लिये असंकुचित बुद्धि चाहिये, उदार हृदय चाहिये। पर मत-मतान्तरका जोश लोगोंको अनुदार और कातर बना

मुसलमानोंके समयमें भी भारतकी ऐसी अवस्था थी। अकबरने देखा कि धार्मिक प्रभेदके कारण हिन्दू मुसलमानोंमें बहुत बडा वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी सम्भव ही नहीं है कि सबके सब हिन्दू मुसलमान हो जायँ जिससे दोनोंका झगडा मिटे और बादशाह सुखकी नींद सोवे। इस कारण उसने सोचा मित्रभाव तथा धार्मिक प्रश्नोंमें उदार नीतिका प्रयोग ही राज-नीतिज्ञका काम होगा। अतएव उसने ऐसा ही किया और फल भी आशातीत हुआ। हिन्दुओंको अपने धर्मके कारण जो जजिया नामक कर देना पडता था वह उठा दिया गया। हिन्दू तीर्थयात्रियोंसे जो कर लिया जाता था वह भी माफ कर दिया गया। अबतक हिन्दू कर्मचारी उच्च पदपर नियुक्त नहीं होते थे, जोखिमका काम उनके हाथ कभी नहीं सौंपा जाता था, अकबरने इस रुकावटको भी हटा दिया। हिन्दू मुसलमान दोनोंके अधिकार प्राय बराबर हो गये, दोनों अपनी अपनी योग्यता और कार्यकुशलतासे उच्च पदोंपर पहुँचने लगे। अकबर बादशाह इस उदार नीतिसे हिन्दुओंके प्यारे हो गये। हिन्दुओंके बराबर कृतज्ञ जाति पृथ्वीपर खोजे ढूँटे ही मिलेगी। प्रेम और राजभक्तिसे गद्गद हो हिन्दुओंने कहना शुरू किया "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।"



७ सांपोंका स्वभाव

हिन्दुस्तानके प्राय सभो भागोंमें साप होते हैं। सापमें यह विशेषता है कि जबतक उसको कोई सताता नहीं तब-तक वह नहीं काटता। ऐसे बहुतसे उदाहरण हैं कि उसके ऊपरसे निकल जानेपर भी उसने किसीको नहीं काटा। इसके विपरीत यदि किसीने उसके साथ जरा भी छेड छाड की तो उसकी कोपदृष्टिसे



बचना मुश्किल हो जाता है। सापोंके सबन्धकी दो चार सच्ची घटनाओंका यहापर उल्लेख किया जाता है जिससे पाठकोंको मन बहलावके साथ साथ, सापोंके स्वभावका भी थोडा बहुत पता लग जायगा।

छोटे छोटे गावोंमें ग्वाले प्रात काल ही अपनी गाय और भैंसोंको दुहते हैं। एक दिन एक ग्वालेने जब अपनी गाय दुही तब उसको उसका दूध हमेशासे कम मालूम हुआ। उस दिन तो उसने इस बातपर विशेष ध्यान नही दिया। परन्तु जब प्रतिदिन उसको दूध कम मिलने लगा तब उसको सन्देह हुआ कि रातके वक्त कोई पडोसी आकर गायको दुह जाता होगा। यह विचारकर वह एक दिन सारी रात अपने बाडेमें छिपकर बैठा रहा। सारी रात बीत गयी परन्तु कोई मनुष्य न आया। निदान थककर वह गाय दुहनेकी तैयारी करने लगा, इतनेमें उसने एकाएक गायको काँपने देखा। भयसे उसके मुँहपर मुरदनीसी छा गयी थी, मानों किसी रोगसे उसका शरीर अकड गया हो। ग्वाला गायसे थोडी ही दूरपर था। इस

मुसलमानोंके समयमें भी भारतकी ऐसी अ
देखा कि धार्मिक प्रभेदके कारण हिन्दू मु
वैमनस्य फैला हुआ है और यह कभी
सबके सब हिन्दू मुसलमान हो जायँ कि
मिटे और बादशाह सुखकी नींद सोवे ।
मित्रभाव तथा धार्मिक प्रश्नोंमें उदार
नीतिज्ञका काम होगा । अतएव उसने
भी आशातीत हुआ । हिन्दुओंको
जजिया नामक कर देना पडता था
तीर्थयात्रियोंसे जो कर लिया जाता
गया । अबतक हिन्दू कर्मचारी
थे, जोखिमका काम उनके हाथ
अकबरने इस रुकावटको भी
दोनोंके अधिकार प्राय बराब
योग्यता और कार्यकुशलता
अकबर बादशाह इस उदार
हिन्दुओंके बराबर कृतज्ञ जा
प्रेम और राजभक्तिसे गद्
"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्व

इससे कभी कभी वडी हानि होती है। एक दिन सन्ध्या समय एक लडकी अपने घरके वरामदेमें फिर रही थी। घरके बाहर पीपलका एक वृक्ष था वह लडकी फिरते फिरते उस पीपलके वृक्षके पास आयी और सहसा स्तब्ध होकर खडी रह गयी। डरसे उसका सारा वदन कांपने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति भी न रही।

"अम्मा! ओ अम्मा!" आखिर उसने ज्यों त्यों करके बहुत डरी हुई आवाजसे अपनी माको वुलाया।

"क्यों वेटी, क्या है?" अन्दरसे आवाज आयी।

"मा! मेरा पैर एक सांपपर—उसके सिरपर—पड गया है"—लडकीने कहा।

"वैसे ही खडी रहना, मैं अभी आती हूं, देखना जरा हिलना मत"—माने कहा।

इस प्रकार लडकीको आश्वासन देती हुई वह एक दिया हाथमें लेकर उसके पास आयी। लडकी वहीं खडी थी। उसका मुँह पीला पड गया था। खून सूख गया था और मुखपर घवराहट छाई हुई थी। परन्तु उसने अपना पैर सांपके सिरपर खूव जोरसे दवा रखा था। सांप भी उसकी टांगोंमें लिपट गया था और उसके पैरके नीचेसे अपना सिर छुडानेकी कोशिश कर रहा था। सांप कुछ छोटा था इसलिये लडकीके पैरतलेसे निकल न सका। यदि वह वडा होता तो अवश्य लडकीको मार डालता।

लडकीकी माने आकर अपना पैर लडकीके पैरपर रख दिया और उसको खूव जोरसे दवाने लगी। उसने लडकीके वगलमें अपने दोनों हाथ डालकर उसको वडी मजवूतीसे पकड रखा था। कितनी ही देरतक दोनों मा वेटी सांपका सिर अपने पैरके नीचे दवाये खडी रहीं। यदि थोडीसी भी गफलत हो जाती तो दोनों मा वेटी आलिंगित अवस्थामें ही मृत्युको प्राप्त हो

जातीं। इस प्रकार कुछ देरतक दबा रहनेसे साप मर गया। निदान जब साप मरकर धरतीपर गिर पडा तब माने लर्डकीके पैरपरसे अपना पैर उठाया और उन दोनोंके जोमें जी आया।

—छबीलदास सामन्त

८ चरित्रपालन

चरित्रमें कहीपर किसी तरहका दाग न लगने पावे इस बातकी चौकसीका नाम चरित्रपालन है। हमारे लिये चरित्र-पालनकी आवश्यकता इसलिये मालूम होती है कि चरित्रको यदि हम सुधारनेकी फिकिर न रखें तो उसे विगडते देर नही लगती, जैसे उर्वरा फलवन्त धरतीमें लम्बी लम्बी घास और कटीले पेड आपसे आप उग आते हैं पर अन्न आदिक उपकारी पौधे वडे यत्न और परिश्रमके उपरान्त उगते हैं। सच तो यों है कि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिने चरित्रमें विकार पैदा कर देनेवाले इतने तरहके प्रलोभन ससारमें उपजा दिये हैं जिनसे आकर्षित हो मनुष्य बातकी बातमें ऐसा विगड जा सकता है कि फिर यावज्जीवन किसी कामका नहीं रहता। महलके बनानेमें कितना यत्न और परिश्रम करना पडता है पर जब बनकर तैयार हो जाता है उसे ढहाते देर नही लगती। इसी बातपर लक्ष्य कर कवि-शिरोमणि कालिदासने कहा है—

"विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषा न चेतासि त एव धीरा"

अर्थात् जो बातें विकार पैदा करनेवाली हैं उनके होते हुए भी जिनके मनमें विकार न पैदा हो वे ही धीर हैं। महाकवि भारविने भी ऐसा ही कहा है—

"विक्रिया न खलु कालदोपजा निर्मल प्रकृतिषु स्थिरोदया।"

अर्थात् निर्मल प्रकृतिवालोंमें कालकी कुटिलताके कारण जो विकार पैदा होते हैं चिरस्थायी नहीं रहते। चरित्ररक्षा एक

प्रकारकी सन्दली जमीन है जिसपर यश सौरभ इत्रके समान बनाये जा सकते हैं अर्थात् जैसे गन्धी सन्दलका पुट दे हर किस्मका इत्र उसमेंसे तैयार करता है वैसे ही चरित्र जब आदमीका शुद्ध है तो वह हर तरहकी योग्यता प्राप्त कर सकता है। शुद्ध चरित्रवाला मनुष्य सब जगह प्रतिष्ठा पाता है और जिस काममें सन्नद्ध होता है उसीमें पूर्ण योग्यताको पहुंच हर तरहपर सरसब्ज होता है।

यथाहि मलिनैर्वस्त्रैर्यत्र तत्रोपविश्यते।

एवं चलितवृत्तस्तु वृत्तशेषं न रक्षति॥

अर्थात् जैसे मैला कपडा पहिने हुए मनुष्य जहां चाहता है वहां बैठ जाता है, कपडोंमें दाग लग जानेका खयाल उस आदमीको बिलकुल नहीं रहता उसी तरह चलितवृत्त अर्थात् जिसके चालचलनमें दाग लग गया है वह फिर बाकी अपने और चरित्रोंको भी नही बचा सकता वरन् वह नित्य नित्य बिगडता जाता है। मन, जिह्वा और हाथका निग्रह चरित्रपालनका मुख्य अंग है। जिसने मनको कुपथपर जानेसे रोका है और हाथको दूसरेकी वस्तु चुरानेसे या बेईमानीसे ले लेनेमें रोक रखा है वही चरित्रपालनमें दूसरोंके लिये उदाहरण हो सकता है। ऐसा मनुष्य कसौटीमें कसे जानेपर खरेसे खरा निकलेगा।

वरं विन्ध्याटव्यामनशनतृषार्तस्य मरणम्।

वरं सर्पाकीर्णे तृणपिहित कूपे निपतनम्।

वरं गर्त्तावर्त्ते गहन जलमध्ये विलयनम्।

न शीलाद्विभ्रंशो भवतु कुलजस्य श्रुतवत॥

सच है, कुलीन समझदार साक्षरके लिये चरित्रमें दाग लगना ऐसी ही कड़ी बात है कि उसे अपना जीवन भी बोझ मालूम होने लगता है। जैसा ऊपरके श्लोकमें कविने कहा है कि "विन्ध्य

पहाडके वनमें भूखा प्यासा हो मर जाना अच्छा, तिनकोंसे ढके सर्पों से भरे कुए में गिरकर प्राण दे देना श्रेष्ठ, पानीके भँवरमें डूबकर विला जाना उत्तम है, पर शिष्ट पढे लिखे मनुष्यका चरित्रसे च्युत हो जाना अच्छा नहीं।" रुपया पैसा हाथकी मैल है आता जाता रहता है किन्तु बात गये बात फिर नहीं बनती, इसीलिये धनका दरिद्र दरिद्र नहीं कहा जा सकता यदि वह सुच- 'रित्रमें आढ्य हो तो। जिनके आखका पानी ढरक गया है उनको चरित्रपालन कोई बडी बात नहीं है और न इसको कुछ कदर उन्हें है, किन्तु जो चरित्रको सबसे बडा धन माने हुए हैं वे अत्यन्त सयमके साथ बडी सावधानीसे ससारमें निबहते हैं। यावत् धर्म, कर्म और परमार्थसाधन सबका निचोड वे इसीको मानते हैं। ऐसे लोग जनसमाजमें बहुत कम पाये जाते हैं, हजारोंमे कही एक ऐसे होते हैं और ऐसे ही लोग समाजके अगुआ, राह दिखलानेवाले आचार्य गुरु रसूल या पैगम्बर हुए है और आप्त तथा शिष्ट माने गये हैं। उनके एक एक शब्द जो मुखसे निकलते हैं तथा उनका उठना बैठना चलना फिरना अलग अलग चरित्र पालनमें उदाहरण होता है। जो प्रतिष्ठा बडेसे बडे राजाधिराज सम्राट् बादशाह शाहनशाहको दुर्लभ है वह चरित्रवानको सुलभ है और यह प्रतिष्ठा चरित्रपालनवालेको सहज ही मिल गयी हो सो नहीं, वरन सच कहिये तो यह असिधारा-व्रत है। ससारके अनेक सुखोंको लात मार बडे बडे क्लेश उठानेके उपरान्त मनुष्य इसमें पक्का हो सकता है। चरित्रसे बहुत मिलती हुई दूसरी बात शील है। शीलका चरित्रमेंही अन्तर्भाव हो सकता है। चरित्र- पालनमें चतुर शील-सरक्षणमें भी प्रवीण हो सकेगा किन्तु शील- सरक्षणमें विचक्षण मनुष्य चरित्रपालनमें प्रवीण नहीं हो सकता। अँगरेजीमें शीलके लिये "काण्डक्ट" और चरित्रके लिये "करेक्टर" शब्द है। आदमीकी बाहरी चालचलनका सुधार शील या "काण्डक्ट" अथवा "बिहेवियर" कहा जायगा किन्तु मनुष्यका

आभ्यन्तर शुद्ध जबतक न होगा तबतक बाहरी सभ्यता "चरित्र" नहीं कहलावेगी। श्री रामचन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्धदेव तथा महात्मा ईसाके चरित्रपालनका समाजपर वैसा ही असर होता है जैसा रक्तसंचालनका शरीरपर। सुस्निग्ध पुष्ट भोजनसे जो रुधिर पैदा होता है वह शरीरको पुष्ट और नीरोग रखता है, वैसे ही जिस समाजमें चरित्रपालनकी कदर है और लोगोंको इसका खयाल है कि हमारा चरित्र दगीला न होने पावे वह समाज पुष्ट पड़ती जाती है और उत्तरोत्तर उसकी उन्नति होती जाती है। जिस समाजमें चरित्रपालनपर किसीकी दृष्टि नहीं है और न किसीको "चरित्र किस तरहपर बनता बिगडता है" इसका कुछ खयाल है उस बिगडी समाजका भला क्या कहना! कुपथ्य भोजनसे विकृत रुधिर पैदा होकर जैसे शरीरको व्याधिका आलय बना नित्य उसे क्षीण और जर्जर करता जाता है वैसे ही लोगोंके कुचरित्र होनेसे समाज नित्य क्षीण निःसत्व और जर्जर होता जाता है। जिस समाजमें चरित्रकी बहुतायत होगी वह समाज सर्वोपरि दीप्यमान होकर देश और जातिकी उन्नतिका द्वार होगा। हमारी प्राचीन आर्यजाति चरित्रकी खान थी जिनके नामसे इस समय हिन्दूमात्र पृथ्वीभरमें विख्यात है। अफसोस! जो कौम किसी समय दुनियाके सब लोगोंके लिये चरित्र-शिक्षामें नमूना थी वह आज दिन यहांतक गयी बीती हो गयी कि दूसरेसे सभ्यता और चरित्रपालनकी शिक्षा लेनेमें अपना अहोभाग्य समझती है! समय खेलाडीने हमें अपना खिलौना बनाकर जैसा चाहा वैसा खेल खेला, देखें आगे अब वह कौन खेल खेलाता है।

—बालकृष्णभट्ट

६ मनुष्य समाज

यदि अकेले एक मनुष्यको किसी ऐसी जगह छोड दें जहा उसके खानेके लिये अन्न, पीनेके लिये ठढा जल और रहनेके लिये एक झोंपडी हो तो क्या वह वहा सुखसे रह सकता है ? हरगिज नहीं। सबसे पहले यदि हम उसकी साधारण जरूरतोंको ही देखें तो भी उसकी रोटी बनानेके लिये कई एक चीजें चाहिये। आटा पीसनेके लिये चक्की, उसके गूधनेके लिये बरतन, पानी रखनेके लिये लोटा आदि चाहिये। और यदि यह थोडा सामान उसके पास हो भी, तो भी क्या वह वहा सुखसे रह सकता है और अपनी उन्नति कर सकता है ? फिर भी हम वही उत्तर देंगे—हरगिज नहीं।

जिन लोगोंको नौकरीके कारण कभी कभी पाँच पाँच चार चार वर्षतक ऐसी जगह रहना पडा है जहा दूसरे मनुष्यके दर्शन दुर्लभ हों, उनसे दर्यापत कीजिये। वे बतलावेंगे कि "हम किसीसे बात करनेके लिये तरसते थे।" यह क्यों ? कारण यह है कि ऐसा जीवन मनुष्यस्वभावके विपरीत है। मनुष्य ऐसे जीवनमें न कुछ सीख सकता है और न सुख पा सकता है। ऐसा जीवन मनुष्यको पशुतुल्य बना देता है।

प्राकृतिक पदार्थोंका भोग, तथा मानसिक शक्तियोंका विकास, तभी हो सकता है जब मनुष्य मनुष्योंमें रहे। एक झोंपडी बनानेके लिये दो चार मनुष्य काफी हैं, परन्तु एक सुन्दर भवन बनानेके लिये सैकडों मनुष्य चाहिये। एक गाडी या रथ बनानेके लिये थोडे ही मनुष्य बस हैं, परन्तु एक रेलगाडीके लिये बहुतसे मनुष्योंकी सहायता दरकार है। प्रीति, न्याय, दया, शील, सन्तोष, धैर्य, आदि गुणोंकी धारणा हमलोग मनुष्य-समुदायमें रहकर ही सीख सकते हैं। अकेले आदमीके लिये धर्म अधर्म बराबर है। मानसिक तथा आत्मिक शक्तियोंका विकास भी

मनुष्य समाजमें ही हो सकता है, इसीलिये यूनान देशका प्रसिद्ध विद्वान् अरस्तू कहता है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।

यहांपर कोई हमसे यह पूछ सकता है कि योगी साधु आदि महात्मा तो एकान्तमें ही रहना पसन्द करते हैं, फिर उनके जीवन पशुतुल्य क्यों नही हो जाते? इसका उत्तर यह है कि वे मनुष्य समाजमें ही उत्पन्न हुए और यही रहकर उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है फिर उस ज्ञानकी वृद्धिके लिये जब जब उन्हें मनन और निदिध्यासनकी आवश्यकता पडती है, तो वे एकान्तमें चले जाते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य बिलकुल जंगलोंहीमें रहते हैं उनके जीवन पशुओंके तुल्य हो जाते हैं। मनुष्य अकेला नहीं रह सकता। समाजमें रहना उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। यदि समाजमें नहीं रहता तो अपना मनुष्यत्व खो देता है। इसीलिये एक विद्वान् कहता है कि—

"समाजसे पृथक् रहनेवाले मनुष्यकी वही हकीकत है जो शरीरसे कटे हुए हाथकी है। जैसे कटा हुआ हाथ निकम्मा है, उसी प्रकार समाजसे अलग रहनेवाला आदमी भी निकम्मा है।"

"परस्पर सम्बन्धपूर्वक इकट्ठा रहनेवाले जनसमुदायका नाम मनुष्य-समाज है" समाजका यह साधारण लक्षण है। इस शब्दका प्रयोग यदि हम और भी विस्तृत अर्थमें करें तो समग्र पृथ्वीपर जो भिन्न भिन्न मनुष्य जातियां हैं उन सबको मनुष्य-समाजके नामसे पुकार सकते हैं। इस महान मनुष्य समुदायके आचार व्यवहारका पाठ तथा उसकी रीति भांति यश चरित्र आदिके ज्ञानका नाम सामाजिक विज्ञान है। इस समाजके दो बडे उद्देश्य हैं।

प्रथम उद्देश्यको हम अधिकार नामसे उल्लेख करेंगे। जन-समुदायमें रहनेवाले व्यक्तियोंको कुछ अधिकार प्राप्त हैं। उनके लाभ उठानेका उन्हें पूरा हक है। ये अधिकार राजनीतिक श्रमविभाग विद्या अथवा धर्मसे सम्बन्ध रखते हैं।

दूसरे उद्देश्यका नाम हम कर्त्तव्य रखते हैं। प्रत्येक व्यक्तिका समाजमें रहकर उसके नियमोंका पालन करना आवश्यक है। जिन नियमोंके पालनसे सब सभ्योंका बराबर उपकार होता हो, समाजमें शान्तिरक्षा होती हो और सबकी उन्नति होती हो उनका पालन करना उसका कर्त्तव्य है।

इन दो उद्देश्योंको स्पष्ट करनेके लिये हम एक उदाहरण देते हैं। मान लीजिये कि सौ स्त्रीपुरुषोंको दस हजार एकड भूमि रहनेके लिये दी गयी तो बराबर बराबर हिस्सा करनेसे प्रत्येकके हिस्सेमें एक सौ एकड भूमि आयी। अब इस भूमिमें वे जो चाहें बोवें, जिस तरह चाहें अपने श्रमसे भूमिको अधिक उपजाऊ बनावें उस भूमिसे पूरा लाभ उठानेका उन्हें अधिकार है। दस हज़ार एकड भूमिमें कुछ वर्ष बाद उन्होंने अपनी सन्तानके लिये पाठशालाएं खोल दीं, सबके बालक, बालिकाएं उनमें पढ़ने लगे। इन सब बातोंमें सब अधिकार बराबर रहे। मान लीजिये कि इस समयतक सबका धर्म एक ही है और सबका काम उस छोटी सी बस्तीमें अच्छी तरह चला जाता है।

अब यदि इस छोटीसी बस्तीमें कोई उद्दण्ड पुरुष जबरदस्ती दूसरेकी भूमि छीनना चाहे, अथवा किसीके बालकोंको पाठशालामें न पढने दे, या कोई और गडबड करे तो इसका उपाय क्या है? मनुष्य समाजमें बहुधा हम ऐसे स्वार्थी लोगोंको देखते हैं जो दूसरेका माल हजम कर लेते हैं या अपनेको सबसे बडा बतलाते हैं। ऐसे अनुचित कर्मों से वे समाजमें अशान्ति फैलाते हैं। बतलाइए ऐसे लोगोंसे किस प्रकार बचाव हो सकता है?

इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहले हम पाठकोंसे समाजके पूर्वोक्त दो उद्देश्योंका अभिप्राय अच्छी प्रकार समझ लेनेकी प्रार्थना करते हैं। प्रथम उद्देश्य "अधिकार" या "हक"से तात्पर्य अपने स्वत्वका रक्षा, अपने श्रमसे पूरा लाभ, विद्याप्राप्तिमें बराबर अधिकार तथा

धर्म या मजहबकी आजादीका होना है। दूसरे उद्देश्य "कर्त्तव्य" से अभिप्राय उन नियमोंका पालन है जिनसे समाजमें शान्तिपूर्वक लाभ और उन्नति हो। इसीलिये मनुष्यको समाजके नियमोंपर कथन करते हुये एक विद्वान् कहता है—"मनुष्यको सामाजिक स्वहितकारी नियमोंमें स्वतंत्र होना चाहिये।"

—स्वामी सत्यदेव

१० विज्ञान और देशानुराग

सच्चे देशप्रेमका अभाव

आजकल भारतवर्ष क्या, सारे संसारमें स्वदेश भक्तिकी धूम है। देशभक्त लोग देश-भक्तिकी अनेक प्रकारकी कल्पनाएं कर लेते हैं और अपने अपने आदर्शके अनुसार देशकी भक्ति करते हैं। कुछ लोग अपने देशपर मरते हैं, बहुतेरे अपने देशके लिये जीते भी हैं। कोई व्यापारमें, कोई व्यवहारमें, कोई वेषभूषामें, कोई अपनी बोलचालमें, निदान जिस रूपसे जिसे रुचता है देश भक्तिका परिचय देता है। लेखक इस विषयका पण्डित नहीं जो इसपर विवेचनायुक्त बातें लिख सके, किन्तु उसका विश्वास है कि आजकलका हमारा शिक्षित समाज अपनेको कितना ही देशभक्त कहे, वैज्ञानिक दृष्टिसे उसे देशभक्त कहनेमें हमको संकोच होगा।

जिस भारत सन्ततिने अपने देशको अपने धर्ममें ऐसा लीन कर लिया कि नदी, वन, पहाड़, झरने, नाले, गड्ढे, पेड़, लता, पशु, पक्षी, बालक, बुड्ढे, जवान, कहांतक कहे कंकड़ पत्थर-तकको देवता माना, बड़ेसे बड़ा आदर दिया, छोटेसे बड़ेतकको पूजा, मिट्टीको सिरपर चढ़ाया और प्यारे भारतको त्यागकर बाहर जानेको महापातक ठहराया—उसीसे उद्भूत आज हमारा शिक्षित समुदाय ऐसे वायुमण्डलमें रहते हुए भी जिसमें उसे इन प्राकृतिक वस्तुओंकी खबर नहीं, देश-भक्तिका दम भरता है।

हम जिस देशको प्यार करते है उसके वृक्ष और लताका पता नहीं, उनके सौन्दर्य, उनके जीवनका जानना दूर रहा, नाम तक मालूम नहीं। जिन पक्षियोंकी सुन्दरताका वर्णन हम कवियोंकी रचनामें पाते हैं, उनके दर्शन भी कभी हुए? जिन लताओं और पुष्पोंके नाम काव्योंमें पढे उनमेंसे कितने देखे हैं, कितनोंके सौन्दर्यका नयनानन्द प्राप्त किया है? जो कीडे मकोडे हमारे जीवनके लिये अत्यावश्यक हैं, जिनका प्रत्युपकार करनेमें हम असमर्थ हैं, उनमें हम किस किसको जानते हैं? जिस अन्धेरी रातसे हमें घृणा है उसमें ही स्वच्छ नीलाकाशमें सारे महिमण्डलको शोभा पहुचाते हुए तारोंसे कितने शिक्षित लोग वार्त्तालाप करते हैं? शिक्षित समुदायने अपने मस्तिष्कपर शास्त्रके विषयोंका बोझ लाद लेना ही शिक्षाका फल समझ रखा है और रसज्ञताको एक दम विदा कर दिया है।

विज्ञानद्वारा सच्चे देशप्रेमकी शिक्षा

जिस स्थितिका हमने ऊपर वर्णन किया है उस स्थितिको बदलनेका क्या उपाय है? हम किस तरह सच्चे देशभक्त, सच्चे भारतीय बने? हम जिस देशको अपना कह रहे हैं उससे किस तरह गहरी जानपहचान करें? यही प्रश्न हमारे सामने पेश है और विज्ञान ही उन सब प्रश्नोंका प्रत्यक्ष उत्तर है।

हम जब किसीसे गहरी दोस्ती, गाढा प्रेम करना चाहते हैं, तो क्या दूर दूरसे बातचीत करने वा "लग्गीं पानी पिलानेसे" काम चल सकता है? जिससे हम प्रेम करना चाहते हैं उसकी भाषामें उससे बातचीत करते हैं, उसके दुखके साथ दुख सहते, उसके सुखमें सुखी होते, उसके दोषोंको दूर करते, निदान सब तरहका मैत्रीका सलूक करते हैं। घूमने फिरने वा काम काजसे इधर उधर जानेमें सैकडों पौधे देखनेमें आते हैं इनसे मैत्री कर लेनेके लिये हमें थोडी सी वनस्पति विद्या जान लेनी

चाहिये। हमारी मातृभाषा भाइयोंसे, मनुष्योंसे, बातचीतके लिये है। वनस्पतिसे बातचीत करनेको हमें वनस्पति विज्ञान द्वारा बताई हुई भाषाका प्रयोग करना होगा। बस थोडीसी विद्यासे ही, हम जिधर जाते हैं मित्रोंके कुटुम्बके कुटुम्ब स्वागतके लिये खडा पाते हैं। कोई टहनी नहीं, कोई पत्ती नहीं जो हमारा जी बहलानेके लिये एक नयी कहानी लेकर खडी न हो। फूल, पखडिया, केसर, पराग, मकरन्द जिनपर हमारे कवियोंने अपनी सरस्वतीको वार दिया है आज भी हमारे लिये बागकी रविशोंको परिस्तानका तमाशा और सडकके किनारोंको इन्द्रके अखाडेका दृश्य बना रहे हैं। अमृतमय मधुको पान करके मस्त भौंरे और वनस्पतियोंमें घूम घूमकर चहकनेवाले पक्षी हमको नन्दन वनका आनन्द देनेको स्वागत कर रहे हैं। पर हम हैं पढे लिखे गवार, हम पढ लिखकर भी इनकी भाषा नहीं समझते। हमारी आखोंपर ऐनक चढी हुई है, पर हम पत्तियों, फूलों, फलोंके सौन्दर्यको देखनेमें असमर्थ हैं। क्यों? क्योंकि हमारी आखोंको विज्ञानका प्रकाश नहीं मिला है, हमने ज्योति ठीक करनेको ऐनक ली पर अज्ञानके अन्धकारसे निकलनेकी फिक्र न की।

घूमना घामना देशान्तरकी सैर करना फैशनके अनुकूल है, परन्तु उसका उद्देश्य मुख्यत दस पाच मित्रोंके साथ गपशप और सहभोजको छोड अधिक नही होता। हम अपने प्यारे देशके विशेष स्थानोंको भी विस्तारपूर्वक नहीं देखते। कैसी भूमि किस प्रकारकी मिट्टी वा चट्टान है, क्या उपजता है, कैसे पत्थर वा खनिज हैं कितनी ऊंचाई है, कैसी ऋतु रहती है, कैसा तापक्रम रहता है, कैसी वर्षा होती है, इत्यादि सैकडों बातें उस स्थानपर पहुंचकर मालूम करने और अनुभव प्राप्त करनेसे सच्ची जानकारी होती है, परन्तु हमारे सैर करने वाले इन बातोंको भूगोल-की पुस्तकमें तह कर रखते हैं और पाठशालाकी परीक्षाओंके लिये ही इनकी जानकारी सार्थक समझते हैं।

यह समझ बैठना ही भूल है कि इन जानकारियोंसे अपने दिमाग क्यों थकावें। इनसे दिमागको थकान नहीं होता, वरन् आराम मिलता है। आँखों कानोंके नाड़ीजाल जो घरेलू या कामकी चीजें देखते सुनते थके रहते हैं, इन आनन्ददायक परिवर्त्तनोंसे उन्हें आराम मिलता है, उनकी पुष्टि होती है। रास्तेका चलना नही खलता दूरसे दूरका रास्ता आनन्दमें कट जाता है, साथ ही मनको बड़ा सन्तोष, बड़ा सुख होता है कि हम अपनोंमें ही विचर रहे हैं। यह वनस्पति, यह खनिज सब हमारे ही हैं।

थोडी देरके लिये हम मान भी लें कि इस तरह जगलोंकी खाक छाननेकी हमें फुरसत नहीं है। खैर साहब, अपना काम काज बाजार गये बिना तो चल नही सकता। आप बाजारमें जाकर सैकड़ों हजारों तरहकी चीजे देखते हैं। उनमें बहुतेरी चीजें आप अपने नित्यके काममें लाते हैं, क्या यह आपको मालूम है कि तेजपात कहासे आता है, कैसे पेडमें होता है? लौंगका फल कहासे आता है? कत्था कैसे निकालते, बनाते हैं, सुपारी कहासे मगायी जाती है। कहातक कहे हजारों चीजें हैं जिनपर सफहे नही, कागजके रीमके रीम रगे जा सकते हैं, परन्तु हमको कभी मनमें उत्कण्ठा नही होती कि जो वस्तुए हमें नित्य स्वाद और सुख देती हैं, कहा कैसे होती हैं, किस प्रकार आती हैं। जिनसे हम इतना सुख उठावें उनका बिलकुल हाल न जाने, यह कैसे दु खकी बात है। यह सच है कि आप इन सब चीजोंको पैसे देकर लेते हैं, परन्तु पैसा आप उपजाने, लाने, साफ या तय्यार करनेकी मजदूरीमें देते हैं। इनके स्वादके लिये, इनसे मिलते हुए सुखके लिये क्या हम कुछ दे सकते हैं? इतने पर भी हम इन्हें जाननेका जरा भी प्रयत्न नहीं करते। यह हमारी अज्ञानता ही है जिसके कारण धीरे धीरे यह चीजें हो हमारे देशसे बाहर चली गयीं और अब हमारे पास हमारी ही अपनी अयोग्यतासे मेहमान बनकर आयी हैं। जापानी आदि विदेशी

व्यापारी इन बातोंकी छानबीन करके अपने यहाके मालसे बाजार भर देते हैं पर हमारे कानोंपर जू नहीं रेंगती। रसायन, भौतिक वा प्राणिविद्यामें ही विज्ञान सीमित नहीं है। विज्ञान बहुत व्यापक शब्द है। मेथी मँगरेला सोंठ काले नमककी जानकारी भी विज्ञान है और वह जानकारी इतनी ही नहीं है कि "दिसावर-से मँगाते हैं।" उसका पूरा वृत्तान्त जानना विज्ञान है। आपको वनस्पतियों और खनिजोंसे यदि राहमें, जगलमें, मैदानमें मैत्री करनेका अवसर नहीं मिलता तो बाजारमें ही उनके सजा-तियोंसे प्रेम पैदा कीजिये। फिर तो हर बनियेकी दुकान आपके लिये प्रदर्शिनी वा नुमायशगाह हो जायगी, हरएक कुजड़ेकी डाल आपको खुली हुई किताब मिलेगी।

जब आप विज्ञानके सहारे अपने देशकी वस्तुओंको इस तरह जानेंगें, जब आप कंकड़ कंकड़से और पत्तो पत्तोसे दोस्ती कर लेंगे, जब आप अपने प्यारे देशको जान जायँगे, जब आपको पक्षी पक्षी पहचानने लगेगा, तब जो देशके प्रेमका आनन्द आपको होगा उसका स्वाद अवर्णनीय है, तब जो आनन्द और प्रेमका समुद्र आपके हृदयमें उमड़ेगा उसमें सारे सकुचित भाव सदैव के लिये डूब जायँगे। अपने देशको प्राणपणसे प्यार करते हुए भी किसी अन्यसे द्वेष न होगा। कोई अपने माता पिताको चाहे, उनका आदर करे, तो इसे औरोंके मा बापसे द्वेष करना कोई पशु ही समझेगा।

इन्हीं बातोंपर विचार करनेसे समझमें आता है कि हमारी देश भक्ति कोरी क्यों रहती है। हम भक्ति करते हैं पर जानते नहीं कि किसकी भक्ति करते हैं। पहले जो अन्धविश्वाससे देशभक्तिको परम्परागत पूजामें व्यक्त करते थे, सुधारकोंकी कृपा-से वह हमारे दिलके पन्नेसे ऐसा उड गया जैसे स्कूलके काले तख्तेपरका लिखा लिखाया झाडनके एक दौरेमें साफ हो जाता है। अब हम किसी दृष्टिसे भी प्रकृतिके दर्शन नहीं करते, न

धर्मकी श्रद्धासे न ज्ञानकी पिपासासे। यही बात है कि कोरा जवानी जमा खर्च रह गया। ऐसी दशामें विज्ञानको छोड दूसरा उपाय ही नहीं। विज्ञानके ही प्रकाशमें सत्यरूपी तेजस्वी बालक अपने शुद्ध सात्विक आकारमें देख पड़ेगा। विज्ञानसे ही हम अपने देशको जान जायँगे। जान ही न जायँगे बल्कि उसे संसारमें सबसे ऊंचा स्थान दिलवायेंगे। विज्ञान सच्ची देश-भक्ति, सच्चे देश-प्रेमका अमूल्य शिक्षक है।

विज्ञानसे जीवनका सुख

संसारमें कोई ऐसा मनुष्य नहीं जिसके हृदयमें अपने देशके अनुरागका अंकुर न हो। सच्चा व्यावहारिक विज्ञान इसी अंकुरको सींचकर पल्लवित, पुष्पित करता तथा उन्नत होनेपर भी फल-भारसे नत कर देता है। परन्तु यह असंभव नहीं कि ऐसा भी कोई निखट्टू हो जिसे पशुकी नाईं, अपने पेट पालनेके सिवा और कोई व्यापार नहीं है। ऐसे निखट्टुओंका जीवन भी विज्ञानकी बदौलत आनन्दमय हो जाता है। अपनी वास्तविक स्थितिको समझकर वह निखट्टू भी अपनेको संसारका एक सम्बन्ध रखनेवाला व्यक्ति समझने लगता है। विज्ञान उसे पशुसे मनुष्य बना देता है। विज्ञान सचमुच आदमी बनानेवाली विद्या है।

आजकल स्कूलोंमें प्रत्यक्ष वस्तुओंकी शिक्षापर बहुत जोर दिया जाता है, परन्तु हमारा अनुमान है कि हमारासा आदर्श अपने सामने रखकर भी शिक्षाविभाग पूरी पूरी सफलता नहीं पा सकता, क्योंकि हम तो प्रत्यक्ष देखते हैं कि इस शिक्षाकी आवश्यकता बड़ोंको लड़कोंकी अपेक्षा अधिक ही है। इस आवश्यकताकी पूर्ति विज्ञानद्वारा अवश्य हो सकती है यदि देशके सच्चे हितू इसको सफल करनेमें तन मन धनसे उद्योगशील हों।

—रा० गौ०

११ कसरत

मनुष्योंको हवा, पानी और अन्नकी जितनी जरूरत है उतनी ही कसरतकी भी। यह माना कि कसरत विना मनुष्य बहुत वर्षों तक जी सकता है और हवा पानी तथा अन्न विना नहीं। फिर भी यह सिद्धान्त सर्वमान्य है कि कसरत विना मनुष्य नीरोग नहीं रह सकता। हमने खुराकका जैसा अर्थ किया है वैसा ही कसरतका भी करना चाहिये। कसरतका अर्थ हाकी, टेनिस, फुटबाल क्रिकेट, और घूमना ही नहीं है। कसरत मात्रके माने हैं शारीरिक और मानसिक काम। जैसे खुराक हाड और मासहीके लिये नहीं मनके लिये भी आवश्यक है, वैसे ही कसरत शरीरहीके लिये नहीं मनके लिये भी होनी चाहिये। शारीरिक कसरत न करनेसे शरीर रोगी रहता है और मनकी कसरत न होनेसे वह भी शिथिल रहता है। मूर्खताको एक तरहका रोग ही समझना चाहिये। कोई बडा पहलवान कुश्ती मारनेमें तो बडा प्रवीण हो किन्तु मन उसका गँवारोंका सा हो तो उसके लिये नीरोग शब्दका प्रयोग करना भूल है। अँगरेजी कहावत है कि नीरोग वही मनुष्य है जिसके नीरोग शरीरमें नीरोग मनका निवास है।

ऐसी कसरतें कौन सी हैं? प्रकृतिने तो हमारे लिये ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया है कि हम सदा कसरत करते रह सकते हैं। शान्तिपूर्वक विचार करनेसे मालूम होगा कि दुनियाका बहुत बडा भाग खेतीपर ही निर्वाह करता है। किसानके परिवारको खूब कसरत करनी पडती है। रोज आठ दस घंटे अथवा इससे भी अधिक काम करनेपर इन्हें खाने पहननेभरको मिल सकता है। इन्हें मनके लिये अलग कसरत नहीं करनी पडती। किसान मूढ हो तो कोई काम ही न कर सके। उसे मट्टीकी पहचान, ऋतुपरिवर्तनका ज्ञान, चतुराईके साथ जोतना

और साधारणतः चन्द्रमा सूर्य और तारोंकी गति जाननी चाहिये। शहरका बडा भारी बुद्धिमान् भी किसानके यहा जाकर निर्बुद्धि सिद्ध होगा। किसान ही यह बता सकेगा कि अमुक बीज कैसे बोया जाता है। उसे आस पासके रास्तोंका ज्ञान होता है, आस पासके मनुष्योंको पहिचानता है, तारे इत्यादि देखकर वह रातमें भी दिशा पहचान लेता है। पक्षियोंके शब्द और उनकी गतिसे वह बहुतसी बातें ताड लेता है। विशेष प्रकारके पक्षियोंको इकट्ठा होते और कलोल करते देखकर वह बता सकता है कि पक्षियोंका यह काम वर्षाका चिह्न है अथवा किस बातका सूचक है। किसान अपने काम भरकी खगोल भूगोल और भूगर्भ विद्या समझता है। उसे अपने बाल-बच्चोंका पालन पोषण करना पडता है, इससे उसे मानवधर्म-शास्त्रका साधारण ज्ञान होना सिद्ध होता है। पृथ्वीके विशाल भागमें रहनेके कारण वह ईश्वरका महत्व सहजमें समझता है, शरीरसे मजबूत होता है, अपनी दवा आप कर लेता है। उसकी मानसिक शिक्षाकी बाबत जिक्र किया ही जा चुका है।

पर सब लोग किसान नहीं बन सकते, न यह प्रकरण किसानोंके फायदेके लिये लिखा ही जा रहा है। यहा व्यापार वा ऐसे अन्य धन्धे करनेवालोंका प्रश्न है कि वे क्या करें। हमने किसानोंकी जिन्दगीका कुछ वर्णन यहा इसलिये किया है जिसमें लोग इस प्रश्नका उत्तर आसानीसे समझ सकें और अपना रहनसहन उन्हींके समान बना सकें। हमारा रहनसहन किसानके रहनसहनसे जितनाही भिन्न होगा हम उतने ही अधिक रोगी भी होंगे। किसानके जीवन वृत्तान्तसे पाठक समझ गये होंगे कि मनुष्यको आठ घटे शारीरिक श्रम करना चाहिये और वह ऐसा कि जिसमें मानसिक शक्तियोंको भी काम करनेका अवसर मिल सके। इसमें सन्देह नहीं कि व्यापारी आदिको कुछ मानसिक कसरत करनेका अवसर

मिलता है परन्तु यह कसरत एकतरफी होती है। ये लोग किसानके समान खगोल, भूगोल तथा इतिहासका ज्ञान नहीं रखते। इन्हें भावतावकी खबर रहती है, मालकी खपत करना खूब जानते हैं, परन्तु इन कामोंमें मानसिक शक्तिपर पूरा जोर नहीं पड़ता, और न इस धन्धेमें शरीरको ही अधिक मेहनत होती है।

ऐसे मनुष्योंके लिये पाश्चात्य विद्वानोंने क्रिकेट इत्यादिके खेल लाभकारक बतलाये हैं। उनकी राय है कि वार्षिक उत्सवोंपर भिन्न भिन्न खेल खेलने चाहिये और मानसिक श्रमके लिये ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिये जिनमें बहुत ज्यादा सोचने विचारनेकी जरूरत न पड़े। यह एक ओरकी बात हुई। अब इसकी जाच होनी चाहिये। इसमें सन्देह नहीं कि ऐसे खेलोंसे शरीरकी कसरत हो जाती है, पर ऐसे व्यायामसे मनुष्यका मन नहीं सुधरता। इसके अनेक उदाहरण हैं। क्रिकेट या फुटबालके अच्छे खिलाडियोंकी संख्या देखी जाय तो उनमें कितने अच्छी मानसिक शक्तिवाले मिलेंगे? हिन्दुस्तानके जो राजा महाराजा अच्छे खिलाडी हैं उनकी मानसिक शक्तिके सम्बन्धमें हमें क्या प्रमाण मिले हैं? इसके विपरीत जो अच्छी मानसिक शक्तिवाले हैं उनमें कितने खिलाडी हैं? मेरी समझमें मानसिक शक्तिवाले लोगोंमें बहुत ही कम खेलनेवाले दिखलाई पड़ेंगे। विलायतके गोरे आजकल खेलनेमें खूब भाग लेते हैं, उनको उन्हींके महाकवि किपलिङ्गने बुद्धिशत्रुकी उपाधि दी है और यह भी कहा है कि ये लोग इंगलैण्डके शत्रु बनेंगे।

हमारे भारतीय बुद्धिमान गृहस्थोंका मार्ग निराला ही है—ये मनकी कसरत करते हैं, पर शरीरकी कसरत बिल्कुल नहीं करते या कम करते हैं। इसीसे इन्हें हम असमय खो बैठते हैं, इनका शरीर बराबर मानसिक काम करते रहनेके कारण क्षीण हो जाता है, कोई न कोई रोग इनके शरीरमें घर किये

रहता है और उनके पुष्ट विचारोंसे देशके लाभ उठानेका समय आते आते ही वह ससारसे चल देते हैं। इससे मालूम होता है कि शारीरिक या केवल मानसिक कसरत काफी नही, न वही कसरत जो अनुपयोगी और सिर्फ खिलवाडके लिये हो। जिस कसरतसे मन और शरीर दोनोंका सुधार साथ साथ और हरदम होता रहे वही कसरत अच्छी है और उसीसे मनुष्य नीरोग रह सकता है। किसानीमें ये दोनों गुण हैं।

जो किसान नहीं हैं वह क्या करें? क्रिकेट इत्यादि खेलोंसे होनेवाली कसरत ठीक नहीं, इसलिये हमें ऐसी कसरत तलाश करनी चाहिये जिससे किसानका सा कुछ काम हो। फेरीवालोंकी तो अपने धधेमें ही कसरत हो जाती है। व्यापारी तथा अन्यान्य लोग अपने घरके आस पास फुलवारी लगा सकते हैं और उसमे नित्य दो चार घटे खोदनेका काम कर सकते हैं। यह प्रश्न तो बेफायदा होगा कि हम दूसरेके घरमें रहते हों तो उसकी जमीनमें कैसे काम करें? यह मनकी सकीर्णता है, जमीन चाहे जिसकी हो, हमें खोदने और बोनेसे मिलनेवाले फायदे तो मिलेंगे ही। इसके सिवा हमारा घर सुधरा रहेगा, साथही हमें सन्तोष भी होगा कि हमने दूसरेकी जमीन ठीक रखी है। जिन्हें जमीन सम्बन्धी कसरतका मौका न मिल सके या जिन्हें वह नापसन्द हो, उनके लिये भी दो बातें लिख देनी जरूरी हैं। जमीनमें काम करनेकी कसरतके बाद सर्वोत्तम कसरत चलना है। इसे कसरतोंकी रानी कहते हैं, और यह बहुत ठीक है। हमारे साधु सन्त बहुत तन्दुरुस्त रहते हैं, इसके अन्य कारणोंमेंसे एक यह भी है कि ये लोग घोडागाडी आदिका उपयोग नहीं करते। अपनी सारी मुसाफिरी पैदलही करते हैं। थोरो नामक एक बडे विद्वान् अमेरिकनने चलनेकी कसरतके सम्बन्धमें एक बहुतही विचारपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसने दिखाया है कि जो लोग समय न मिलनेका बहाना करके

घरसे बाहर नहीं निकलते, हिलते डुलते नहीं और सदा लिखने आदिका काम किया करते हैं उन मनुष्योंके लेख आदि भी वैसे ही रोगी या शिथिल होते हैं जैसे वे खुद होते हैं। अपने अनुभव-के सम्बन्धमें उसने लिखा है कि मैं जिस समय अधिकसे अधिक चलता था मेरे उत्तमसे उत्तम ग्रन्थ उसी समयके लिखे हुए हैं। उसके लिये रोज चार पाच घटे चलना कुछ बात न थी। जिस प्रकार सच्ची भूख लगनेपर हम कोई काम नहीं कर सकते, पेटपूजामें ही व्यस्त हो जाते हैं उसी प्रकार हमें कसरतकी ऐसी पक्की आदत डाल लेनी चाहिये कि उसके बिना किये हम और कामही न कर सकें। अपने मानसिक कामोंका नापना हमें पसन्द नहीं, इससे हम यह नहीं देख सकते कि शारीरिक कसरतके बिना किये हुए मानसिक काम नीरस और निकम्मे होते हैं। चलनेसे शरीरके प्रत्येक भागमें खून तेजीसे दौरा करता है, प्रत्येक अगमें हलचल पैदा होती है और सारा शरीर कस उठता है। चलनेसे हाथ पैर तो हिलते-ही हैं, साथ ही बाहरकी शुद्ध हवा मिलती है। बाहरके सुन्दर दृश्योंका आनन्द भी प्राप्त होता है। सदा एकही जगह और गलियोंमें न चलना चाहिये, खेतों और जगलोंमें घूमना आवश्यक है, वहा प्राकृतिक शोभाकी कुछ परख होगी। दो एक मीलका चलना कोई चलना नहीं कहलाता, दस बारह मीलका चलना, चलना है। जो लोग हर रोज ऐसा न कर सकें वे प्रति रवि-वारको खूब चल सकते हैं। कोई बीमार एक अनुभवी वैद्यके यहा दवा लेने गया, अजीर्णका रोगी था। वैद्यने उसे रोज थोडा चलनेकी सलाह दी। बीमारने कहा, मुझमें जरा भी चलनेको ताकत नहीं है। वैद्यने समझ लिया कि बीमार कम-हिम्मत है, वह उसे अपनी गाडीपर चढाकर घुमाने ले गया। रास्तेमें उसने जान बूझकर अपना चाबुक गिरा दिया। सभ्य-ताकी रक्षाके विचारसे रोगी चाबुक उठानेके लिये उतर पडा,

इधर वैद्यने गाडी हाक दी। बेचारे रोगीको हापते हुए दूरतक गाडीके पीछे जाना पडा तब वैद्यने गाडी घुमायी और चढाकर उसे कहा कि तुम्हारे लिये चलना ही दवा थी, इसीसे तुम्हें चलानेके लिये मुझे यह निर्दय व्यवहार करना पड़ा। बीमारको खूब कडाकेकी भूख लगी थी, इससे वह चाबुककी बात भूल गया। उसने वैद्यका उपकार माना और घर जाकर सन्तोषपूर्वक भोजन किया। जिन्हें बदहजमी और उससे उत्पन्न होनेवाली बीमारियां हों व चलनेका प्रयोग आजमा देखें।

—महात्मा गाधी

१२ लाला लाजपतराय

पंजाब प्रान्तके लुधियाना जिलेके अन्तर्गत जगरावँ नामक गावँमें सवत् १९२५में लाला लाजपतरायका जन्म हुआ। लालाजी अग्रवालवशके शिरोभूपण हैं। पिता, लाला राधाकिशन शिक्षक थे। उन्होंने आरभमें सर सैयद अहमदके साथ कांग्रेसमें योग दिया था। जब सर सैयद अहमदने काग्रेस छोडा लाला राधाकिशनने उन्हें एक बडा ही मार्मिक पत्र लिखा था जो देशभक्तोंके पढनेयोग्य है। जैसे उनके पिता शिक्षक थे माता भी



शिक्षिता थीं। लालाजीपर मातापिताका अपूर्व प्रभाव पडा और बालकपनसे ही बडे तीक्ष्णबुद्धि और स्वतन्त्रताप्रिय थे। लालाजीने सवत् १९४२में नामके साथ वकालत पास की और

हिसारमें वकालत शुरू की। लालाजी, गुरुदत्तजी और हंसराज जी तीनों महाशयोंने एक साथ आर्यसमाजके आन्दोलनमें योग दिया था। इनकी निरन्तर चेष्टा, अनवरत अध्यवसाय और अदम्य उत्साहसे लाहौरमें दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज स्थापित हुआ था। कालेजको लाखोंकी सहायता मिली। लालाजी वरसों उसके अवैतनिक मन्त्री और अवैतनिक व्याख्याता रहे, अपनी आमदनीसे भी कालेजको सहायता दी। यद्यपि आज सरकारी विश्वविद्यालयके अधीन है तथापि इस कालेजका प्रारम्भिक उद्देश्य राष्ट्रिय शिक्षा था। कालेजके अतिरिक्त पंजाब प्रान्तके अन्यान्य कितने ही स्कूलोंको आपसे बराबर सहायता मिलती रही है। आज जो आर्यसमाजकी शाखा प्रशाखाएं भिन्न भिन्न नगरोंमें स्थापित हो अपने उद्देश्यका प्रचार करती हुई देशसेवाके कार्यमें अग्रसर हो रही हैं लाला लाजपतराय और लाला हंसराजकी चेष्टाका फल हैं।

युवावस्थासे ही लालाजीको देशके राजनैतिक आन्दोलनमें दिलचस्पी थी। सं० १९४५में आपने सर सैयद अहमदके कार्यके विरोधमें कई पत्र लिखे जो प्रयागकी कांग्रेसके समय प्रकाशित हुए थे। तभी आपका यशसौरभ चारों ओर फैल गया। इसके पहले सर सैयदके ये बड़े भक्त थे और उनके सम्पादित सोशल रिफार्मर और अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट गजट श्रद्धासे पढ़ते थे। ऐसी पत्र पत्रिकाओं और पुस्तकोंके पढ़नेहीसे हृदयमें जातीय भावका बीज अंकुरित हुआ था।

कालेज छोड़ते ही आपने उर्दूमें इटलीके देशभक्त महात्मा मेजनी और गेरिबाल्डीकी जीवनी लिखी। आपके बनाये शिवाजी, श्रीकृष्ण और दयानन्दके जीवनचरित्र आज भी बड़े आदरके साथ पढ़े जाते हैं। पंजाबमें इन्हींकी बदौलत पहले पहल जातीय आन्दोलन आरम्भ हुए और देशसेवाकी महिमा सब लोगोंपर प्रकट हुई। आप पंजाबी तथा अन्यान्य कई पत्रोंमें

मयिक परिस्थितियोंपर अपने विचार प्रकट करते रहे हैं और
ौं उर्दू पत्रोंका सम्पादन किया है।

स० १९५४में भारतमें बडा भारी दुर्भिक्ष हुआ। आपने
स समय आर्यसमाजकी ओरसे सहायता की और ऐसी
वस्था की जिसे देशवासी कभी भूल नही सकते। आगेके
लोंमें भी आपने ऐसी व्यवस्था की जो किसीके किये नहीं हो
कती। असहाय, माता पितासे हीन, दीन बालक बालिकाओंको
ो साहाय्य आपकी ओरसे प्राप्त हुआ था वह सदा स्मरणीय
हेगा। १९५८के दुर्भिक्ष कमीशनके सामने आपने जो साक्ष्य
दिया था उसमें ऐसी सप्रमाण बातें कहीं जिनसे आपका नाम
भारतमें अमर हो गया। स० १९६१में कांगडा भूकम्पके समय
भी आपकी सहायता अमूल्य थी।

इसी समय लण्डनमें कांग्रेस कार्यके प्रचारके लिये दो भार-
तीय प्रतिनिधियोंके भेजनेका प्रस्ताव हुआ। गोखले और लाजपत-
राय ये ही दोनों प्रतिनिधि चुने गये। अस्वस्थ रहनेपर भी निःस्वार्थ
भावसे उदारतापूर्वक विलायत जानेके लिये लालाजी तैयार
हो गये। आपकी विलायत यात्राके लिये पजाब इंडियन एसोसि-
येशनने तीस हजार रुपये स्वीकार किये पर आपने एक पाई भी
न लेकर यह रकम विद्यार्थियोंके लाभार्थ खर्च करनेको दे दी।
युरोप और अमेरिकामें भ्रमण करनेसे आन्दोलनके सम्बन्धमें
आपको अनेक नयी बातें मालूम हुई और गोखलेके साथ प्रचारका
काम यथेष्ट रूपसे किया। किस प्रकार राजनैतिक आन्दोलन
करनेसे स्वायत्तशासन शीघ्र ही प्राप्त होगा, इसके विषयमें आपने
खूब चर्चा की। इंगलैंडकी तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितिकी
रक्षा करते हुए भारतमें यथोचित आन्दोलन करना आपका
प्रधान उद्देश्य था।

सं० १९६२में लालाजीने काशी कांग्रेसमें वङ्गभङ्गके सम्बन्धमें
प्रभावपूर्ण व्याख्यान दिया था जिससे जनसाधारणमें नूतन

भावका आविर्भाव हुआ। इसी समयसे आपपर विपत्तिके बादल उमडने लगे और कष्टभोगका एक प्रकार आरम्भ हो गया। पंजाब सरकारने सहसा आपको निर्वासन दण्ड दे दिया। विना मेघके जैसे वज्रपात होता है वैसा हो यह निर्वासन दण्ड भारत-वासियोंको प्रतीत हुआ। आपके निर्वासनका क्या कारण है, इसका किसीको कुछ पता न लगा। इस निर्वासनके विरुद्ध इंगलैंडमें प्रयत्न किया गया पर वह विफल हुआ।

इस घटनासे भारतका बच्चा बच्चा लालाजीके नामसे परिचित हो गया। भारतभरमें आन्दोलनकी धूम मच गयी। लोकमतकी प्रबलताके आगे सरकार भी नरमा गयी और छ महीने बाद लालाजीको छोड देना पडा। उस समय जनताने कृतज्ञतावश आपका जो स्वागत किया वह चक्रवर्तीके लिये भी दुर्लभ था।

सं० १९६४में सूरतकी कांग्रेसके लिये आप सभापति चुने गये पर आपने इसे अस्वीकार कर अपनी महाप्राणताका परिचय दिया। आप उक्त कांग्रेसमें स्वदेशी और बायकाटके आन्दोलनका समर्थन करनेके लिये प्रस्तुत होकर आये थे पर सूरतकी कांग्रेसकी सूरत ही बिगड गयी और उसका कायापलट हो गया।

लाला लाजपतराय सामान्य सम्मानके लोभी नहीं हैं। वे कर्मवीर हैं, कर्म ही उनका जीवन है। देशकी जिससे यथार्थ उन्नति हो वही कार्य वे प्राणपणसे करते हैं। आपका विश्वास है कि सरकारकी अभीप्सित प्रणालीद्वारा कभी भी स्वायत्त शासन प्रतिष्ठित न होगा। जो हमें मिलना चाहिये तुरत मिल जाय। जबतक नहीं मिलता तबतक हम स्थिर कैसे रह सकते हैं।

सूरत कांग्रेसके बाद आप यथावसर राजनैतिक कार्य करते रहे। यूरोपीय युद्धारम्भके कुछ दिन पहले अमेरिका गये। आपको वहा कुछ दिनोंतक ब्रिटिश सरकारके भारत लौटने न देनेसे रुक जाना पडा। आप भारतमें उस समय आ

संवत १५४२ फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमाको युगधर्म प्रवर्तक प्रेमावतार भगवान् श्री गौराङ्गदेवने मानवदेह धारण कर 'बंगालके नवद्वीप नगरको पवित्र किया।

श्री गौराङ्गके भाग्यवान् पिता 'पुन्दर' उपाधिधारी श्री जगन्नाथ मिश्र थे। वे बडे विद्वान थे। उनकी सर्वगुण सम्पन्ना प्रेममयी पत्नीका नाम था श्री शची देवी। श्री गौराङ्गके पहले श्री शची देवीको आठ कन्या और एक पुत्र कुल नौ सन्तानें हुई थीं। जिनमें सभी कन्यायें असमय स्वर्ग पधार चुकी थीं, केवल पुत्र जिनका नाम श्री विश्वरूप था उस समय वर्तमान था। विश्वरूप संस्कृत अध्ययन कर रहा था, पढनेमें उसकी बुद्धि-प्रखरता देख अध्यापकगण दंग हो जाते थे।

श्री गौराङ्गदेवका प्रादुर्भाव नीमके वृक्षके नीचे बने हुए सूतिकागृहमें हुआ था। इसलिये श्री शचीदेवी उन्हें 'निमाई' कहा करती थीं, और श्री जगन्नाथ मिश्र 'विश्वम्भर' कहा करते थे। इसके अतिरिक्त श्री गौर, गौराङ्ग, चैतन्य, कृष्ण चैतन्य, महाप्रभु, आदि नामसे भी भक्तगण उनका सम्बोधन करते थे।

पाचवे वर्ष उनका विद्यारम्भ हुआ। निमाई बडे खिलवाडी थे। पढने लिखनेमें उनका मन लगेगा यह आशा कम थी। परन्तु बात उलटी हुई, वे बडी एकाग्रतासे खेलकूद छोडकर पढने लगे। उस समय उनके बड़े भाई विश्वरूप प्राय अपना अध्ययन पूर्ण कर चुके थे। जगन्नाथ मिश्र उनके विवाहकी चिन्तामें थे कि अकस्मात् घरसे विरागी होकर वह चले गये। उन्होंने संन्यास ले लिया इससे सभी बडे दु:खित हुए। जगन्नाथ मिश्रकी अवस्था तो जीवनमृतसी हो गयी। निमाईका पढना भी शिथिल कर दिया गया। चिन्ता यह थी कि पढने लिखनेके बाद कहीं वह भी विरागी होकर न चल दें। पांच छ वर्षके बालक निमाईको यह बात बहुत बुरी मालूम हुई। उन्होंने हठ करकेपुन पढना आरम्भ किया औरतेरह चौदह वर्षकी अवस्था-

तक ही व्याकरण साहित्य न्याय आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गये। निमाई जब ग्यारह वर्षके थे तभी जगन्नाथमिश्रका स्वर्गवास हुआ। शची मा और निमाई बडी विपत्तिमें पडे। फिर भी बालक निमाईने माको पूर्ण आश्वासन दिया, और भली भाति माताकी सेवा शुश्रूषा करते हुए निरन्तर अध्ययन करते रहे।

नवद्वीप उस समय भारतवर्षका विद्याकेन्द्र था। वहाकी जैसी स्थिति थी वैसी प्राय कम देखी सुनी जाती है। निमाई पढ लिखकर अध्यापन करने लगे।

एक दिन गगातटपर बैठे हुए निमाई अपने सैकडों छात्रों-को पढा रहे थे, अकस्मात् वहीं दिग्विजयी केशव काश्मीरी पडित भी आये। दोनों महापुरुष आपसमें परिचित हुए। साधारण बातोंके बाद शास्त्रचर्चा छिड पडी। आशुकवि केशवने एक घडीमें सौ श्लोक बनाकर गगाकी स्तुति की। निमाईने उसके एक एक श्लोकको कहकर उनसे उसके गुण दोष पूछे। दिग्विजयीको उनकी स्मरणशक्ति देख विस्मय हुआ। वे बोले—इसमें दोष कहा? सभी गुण हैं। निमाईने मन्द मुसकाते हुए बडे विनीत भावसे श्लोकके अनेक दोषोंका उद्घाटन किया। बात सच्ची थी। दिग्विजयीको चुप हो जाना पडा।

पहले निमाईके साथ एक वैद्यकुमार मुकुन्द चट्टलवासी पढते थे। परन्तु इन दिनों वह विद्याचर्चासे विरक्त हो भक्ति पथके पथिक हो गये थे।

एक दिन स्नानके लिये जाते हुए निमाई पण्डितने उन्हें राहमें देखा। सैकडों शिष्योंके साथ निमाईको मुकुन्दजीने भी देखा, परन्तु निमाई उनका विद्रूप करेंगे इस भयसे वह दूसरे मार्गसे चटपट चले गये।

निमाईने सब समझ लिया। वह अपनी छात्र मडलीको सम्बोधन कर बोले कि देखो मुकुन्द हमें अवैष्णव जानकर बिना मिले चले गये। परन्तु तुमलोग याद रखना—

एमन वैष्णव आमि हइव ससारे।
अज भव आसिवेक आमार दुआरे॥

उसी दिनसे निमाईने अपनी चर्य्या बदल दी।

विवाहके बाद वर्षोंतक वह नवद्वीपमें ही रहकर अपने टोलमें अध्यापन करते रहे, परन्तु अब उनका मन उस नीरस शास्त्रचर्चासे उचट सा गया था, क्योंकि हरि-प्रेम रसका स्वाद उन्हें मिल चुका था।

वे दिन रात कृष्ण प्रममें मत्त रहने लगे, धीरे धीरे उनका प्रेमोन्माद बढ़ने लगा। दिवानिशि एक भावसे हरिनाम कीर्तन, अविरल अश्रुप्रवाह, निरन्तर पुलक, सतत आवेश देख देख सभी लोग, बड़े आश्चर्यान्वित हो जाते थे।

कुछ कुढैले दुष्टोंसे निमाईकी महत्ता नहीं देखी गयी। वे सब नगरके काज़ी चाद खाको उनके विरुद्ध उसकाने लगे। काज़ीका स्वभाव स्वत उग्र था, लोगोंकी भडकाहटने आगमें घीका काम किया। रोज रोज कीर्तनकी खोल-झाझसे चिढकर एक दिन उसने भक्तमडलीमें आकर खोल झाझ तोड फोडकर फेंक दिया। निमाईने यह बात पीछे सुनी और दूसरे ही दिन ऐसा चक्कर डाला कि काजी रामको छट्ठीका दूध याद आ गया। उसने अपनी आज्ञाही नहीं लौटायी प्रत्युत श्री गौराङ्गका प्रेमी शिष्य हो गया। आज भी उसके वशज बंगालमें हैं जो एक हिन्दूकी तरह श्री गौरकृष्णके परम भक्त एव सकीर्तनके परम प्रेमी हैं।

प्रभुके सामाजिक विचार बड़े उदार थे, जाति पातिका बखेड़ा तो उन्होंने पहले ही दूर कर दिया था। वह जानते थे कि कलियुगमें जातिका बन्धन भलीभाति चलना कठिन है इसी लिये उसका पथ परिष्कार करना उन्हें अति आवश्यक [illegible]त हुआ था।

बिना दयाके प्रेमकी स्थिति असम्भव थी इसलिये जीवमात्र-पर दयाका भाव जागृत करके श्री गौरने जगतकी बढ़ती हुई हिंसा प्रकृति रोकी थी। हिन्दू मुसलमानोंकी कलह प्रकृति रोकनेके लिये उन्होंने धर्मजगतमें राष्ट्रीय भावकी सृष्टि की थी। असभ्य नृशंस प्रकृति मुसलमानोंको भी कलेजेसे लगा उन्होंने उन्हें प्रेमदान करते समय समाजका भय नहीं किया। चैतन्य बड़े निर्भीक थे। बात बातमें व्यर्थ बन्धन भी उन्हें पसन्द नहीं था। बंगालाधिपति सुबुद्धिरायको हुसेनखाने बलपूर्वक जल पिलाकर मुसलमान कर दिया था, वे बहुत दिनोंतक पंडितोंसे अपना प्रायश्चित्त पूछते घूमते रहे। नवद्वीप काशी तथा अन्यान्य स्थानोंके सभी पंडितोंने उन्हें शरीरत्याग देनेकी व्यवस्था दी थी। परन्तु सुबुद्धिराय इस प्रायश्चित्तमें कुछ लाघव चाहते थे। उनकी वांछा कहीं सिद्ध नहीं हुई। जब महाप्रभु काशी पहुँचे तब सुबुद्धिराय प्रभुके निकट आये। प्रभुने कहा मृत्युकी व्यवस्थासे तामसी प्रायश्चित्त होगा। तुम वृन्दावन चले जाओ और कालिन्दीके कूलपर बैठकर भगवान् श्री कृष्णका नाम संकीर्त्तन करो इसीसे तुम्हारा कल्याण हो जायगा। सुबुद्धिरायने तुरन्त उस व्यवस्थाका पालन किया। इतनी उदारता इतनी निर्भीकता मानव धर्मशास्त्रमें कहां मिलती?

—कृष्ण चैतन्य गोस्वामी

१४ इब्न बतूताकी यात्रा

मुसलमान यात्री इब्न बतूताका आसन उन सब यात्रियोंसे ऊंचा है जिन्होंने ऐसे समयमें यात्रा की थी जब न रेल थी और न आजकलके ऐसे बड़े बड़े जहाज ही थे। उस समय यात्रियोंको पगपगपर बड़ी बड़ी भयंकर विपत्तियोंका सामना करना पड़ता था। इब्न बतूता तीस वर्षतक एशिया और ... भिन्न भिन्न देशोंमें घूमता रहा। सब मिलाकर [illegible]

वलवनके समयके लगभग नब्बे वर्षके पुराने गडे हुए चावल मैंने देखे। रंग उनका कुछ मैला अवश्य हो गया था पर स्वाद उनका वैसा ही था। दीवारके नीचेका भाग पत्थरका है और ऊपरी भाग ईंट और चूनेका। दीवारपर दो सवार बडी अच्छी तरह दौड सकते हैं। शहरवाले उन्हें देख सकते हैं, परन्तु बाहरवाले नहीं। इसका यह कारण है कि दीवारपर भी जाने आनेका रास्ता छोडकर बाहरकी तरफ एक छोटी चहारदीवारी बना दी गयी है। शहरपनाहमें बाहर आने जानेके लिये अट्ठाईस फाटक हैं।

देहलीकी जामे मसजिद भी अपने ढगकी एक ही है। पहले वह काफिरोंकी परस्तिशगाह थी। वह सगमर्मरकी बनी हुई है। लकडी और मामूली पत्थरका नाम नही। बीच मसजिदमें एक तीस गज लबा स्तभ है। कहते हैं वह सात धातुओंको मिलाकर बनाया गया है और किसी भी शस्त्रसे काटा नहीं जा सकता। मसजिदका एक मीनार बहुत ही ऊचा है। वह सुर्ख पत्थरका बना हुआ है। उसके ऊपर चढनेकी सीढ़िया इतनी चौडी हैं कि हाथी भी उनपर चढ सकता है।

शहरके बाहर एक बडा भारी हौज है। वह दो मील लबा और एक मील चौडा है। उससे भी बडा एक और हौज है। देहलीसे जो सडकें और नगरोंको जाती हैं उनपर दोनों तरफ इतने वृक्ष हैं कि सदा छाया रहती है। उनपर तीन तीन मील-पर सरायें बनी हुई हैं जिनमें मुसाफिर ठहरते हैं।

हमलोगोंके आनेका समाचार बादशाह मुहम्मद तुगलकको मिल गया था। उसने अपने कर्मचारियोंको आज्ञा दे दी थी कि हमें रास्तेमें किसी तरहकी तकलीफ न होने पावे। देहली पहुँचकर हम वजीर और काजीके साथ राजमाताको सलाम करने गये। राजमाताने हमारा अच्छा सत्कार किया और हमारे ठहरनेका उचित प्रबन्ध कर दिया। हर रोज प्रात.काल

हम वजीरको सलाम करने जाते थे। एक दिन उसने मुझे दो हजार दीनार दिये और कहा कि यह आपके कपडोंकी धुलाई है। इसके सिवा उसने मुझे एक बहुमूल्य चोगा और मेरे नौकरोंको जो लगभग चालीस थे, दो हजार दीनार दिये। उस समय बादशाह कहीं बाहर गये हुए थे, परन्तु उनकी कृपासे हम लोगोंके आराममें कोई विघ्न नहीं पडा। इसी बीच मेरी एक लडकीका देहान्त हो गया। वजीरने उसकी अन्त्येष्टि क्रियाका सब खर्च सरकारी खजानेसे दिया।

"हमारे देहली पहुँचनेके थोडेही दिनों बाद समाचार मिला कि बादशाह राजधानीको लौट रहे हैं। हम लोग नजरें ले लेकर सात मील आगे बढकर बादशाहसे मिलने गये। बादशाहने मेरा और मेरे साथके मुसाफिरोंका खूब सत्कार किया और सबको खिलअतें दी। देहली पहुँचकर बादशाहने हममेंसे हर मुसाफिरको योग्यतानुसार एक एक पदपर नियत कर दिया। मुझे देहलीके काज़ी का पद मिला। मेरी तनखाह बारह हजार रुपये साल नियत हुई। इसके सिवा बारह हजारकी जागीर भी मिली। मैं हिन्दुस्तानकी जबान बिलकुल न समझता था। इसलिये बादशाहने मेरे दो नायब नियत किये, जो मुझे हर बातमें सहायता दें।

मुहम्मद तुगलक बडा ही उदार और दयालु बादशाह है परन्तु साथ ही जिद्दी भी परले सिरेका है। जरा जरा सी बातपर जिद कर बैठता है। जिदमें आकर कभी कभी वह बडे बडे कठोर काम कर डालता है। कुछ बागियोंने देहलीवालोंको बादशाहके विरुद्ध भडका दिया। फल यह हुआ कि बादशाहने हुक्म दे दिया कि देहली खाली कर दी जाय। यदि कोई आदमी नगरके किसी मकानमें पाया जायगा तो उसे प्राणदण्ड दिया जायगा। लोग अपने अपने घर छोडकर भाग गये। केवल दो आदमी जिनमें एक अन्धा था, एक घरमें छिप रहे। शाही नौकरोंने उन्हें ढूंढ निकाला। जो अन्धा था उसे देहलीसे दौल्ताबादतक घसीटे जानेका

हुक्म हुआ और दूसरेको एक ऊँची छतपरसे गिरा दिये जानेका। कोई न कोई घटना इस तरहकी हुआ ही करती है। कभी कोई शेख अपनी जान खोता है और कभी कोई अमीर हाथीके पैरोंमें बँधवाकर मारा जाता है।

"यद्यपि बादशाह मुझपर बडी कृपा करता था तथापि मैं प्रति दिन होनेवाले इन अत्याचारोंको न देख सकता था। इधर हिन्दुस्तानमें रहते मुझे बरसों हो गये थे, इसलिये घूमनेके लिये मेरा जी ललचा रहा था। मेरा खर्च भी बहुत बढ गया था। पचपन हजार रुपयेका तो मेरे ऊपर कर्ज हो गया था। इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी। बादशाहने एक शेखपर नाराज होकर उसे कैद कर दिया। शेखके मिलने जुलनेवाले भी पकडे जाने लगे। मैं भी उससे मिला करता था, इसलिये दूसरोंके साथ मुझे भी बादशाहके सामने हाजिर होना पडा। औरोंको तो फाँसी दे दी गयी परन्तु मैं छोड दिया गया। छूटते ही मैंने अपने कामसे इस्तीफा दे दिया और अपना सब माल असबाब फकीरोंको बाँट-कर फकीरी वेश धारण कर लिया।

इसी समय चीनके सम्राट्ने बादशाह मुहम्मदके पास कुछ सौगातें भेजीं। मैं जो फकीरी वेशमें बादशाहसे मुलाकात करने गया तो उसने पहलेसे भी अधिक मेरा सत्कार किया। उसने कहा—"मैं जानता हू कि तुम सफरको बहुत पसन्द करते हो। अच्छा तुम मेरे एलची बनकर चीन जाओ और मेरी तरफसे चीनके सम्राट्के पास सौगातें ले जाओ। मैंने इस कामको स्वीकार कर लिया। मैं बादशाहकी तरफसे सौगातें लेकर चीनसे आये हुए एलचीके साथ देहलीसे चल पडा। रास्तेमें हिन्दुओंने हम लोगोंपर डाका डाला। हम सब भागकर तितर बितर हो गये। मैं अकेला रह गया। सात दिनतक जगली फलों और पत्तोंको खाता मैं चला गया। एक दिन कमजोरीके कारण बेहोश होकर सडकपर गिर पडा। जो आखें खुलीं तो मैंने अपनेको

शाही सिपाहियोंके बीचमें पाया। मैं बादशाहके पास पहुँचाया गया। वह मेरे लूटे जानेका हाल सुन चुका था। मुझे बारह हजार रुपये देकर कुछ आदमियोंके साथ उसने फिर रवाना किया।

"रास्तेमें हम लोग जोगियोंसे मिले। ये जोगी जमीनके नीचे अपना मकान बनाते हैं। हवा आनेके लिये केवल जरासा छेद रहता है। ये महीनों कुछ नहीं खाते। मैंने सुना है कि एक जोगीने सालभरतक कुछ नहीं खाया। बादशाह जोगियोंको बहुत पसन्द करते हैं। वे उनकी सुहबतमें भी बैठते हैं। जोगी लोग केवल एक बार देखकर ही आदमीको मार सकते हैं। एक दिन मैं बादशाहके पास बैठा था कि दो जोगी आये। बादशाहने उनका बडा आदर किया और मेरी तरफ इशारा करके उनसे कहा, यह मुसाफिर है, इसे कोई करामात दिखलाइये। एक जोगी उठा और आकाशमें उड गया। मैं इस विचित्र लीलाको देखकर बेहोश हो गया। जब मैं होशमें आया तब देखा कि जोगी उसी प्रकार हवामें उड रहा है। इतनेमें दूसरा जोगी उठा और चन्दनका एक टुकडा जमीनपर मारकर वह भी उसी तरह हवामें उडने लगा। जब मैं बहुत घबरा गया तब बादशाहने जोगियोंके इस खेलको बन्द करवा दिया।

"चलते चलते हमलोग सिन्धुपुर नामके द्वीपमें पहुँचे। इसमें एक बडा भारी तालाब और एक मन्दिर है। मैं मन्दिरके पास पहुँचा तो देखता क्या हूँ कि एक जोगी दो मूर्त्तियोंके बीचमें बैठा है। मैंने उसे बुलाया, पर वह न बोला। मैंने इधर उधर देखा, पर कोई खाद्य पदार्थ मुझे न दिखायी पडा। मैं देख ही रहा था कि वह एकदम कडका और एक नारियल उस वृक्षसे जो उसके सामने ही था, पटसे नीचे गिर पडा। वह नारियल उसने मेरी तरफ फेंक दिया। मैंने उसे कुछ रुपया देना चाहा पर उसने तुरन्त मुझे मेरे रुपयोंसे दस रुपये अधिक दे दिये। मैं उसे

मुसलमान समझता हूं क्योंकि जब मैंने उसे बुलाया तब पहले तो उसने आकाशकी तरफ संकेत किया, फिर मक्कामुअज्जमाकी तरफ इन इशारोंसे उसने यह प्रकट किया था कि वह खुदायवाहद और रसूल-अल्लाहको जानता है और उन्हींपर ईमान रखता है।

"यहांसे हमलोग मलाबार पहुंचे। यहांकी सड़कोंपर आधे आधे मीलपर मुसाफिरखाने बने हुए हैं। हिन्दू और मुसलमान कोई क्यों न हो बिना किसी रोकटोकके इन मुसाफिरखानोंमें ठहर सकते हैं। इन मुसाफिरखानोंमें एक एक कुआ है। एक आदमी कुए पर सदा बैठा रहता है और लोगोंको पानी पिलाया करता है। हिन्दुओंको पानी किसी पात्रमें दिया जाता है और मुसलमानोंको चुल्लूमें। हिन्दू अपने पात्र मुसलमानोंको नहीं छूने देते। यदि कोई पात्र किसी मुसलमानसे छू जाय तो वह तुरन्त तोड़ दिया जाता है। यहां अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं। परन्तु मुसलमान व्यापारी भी बहुत पाये जाते हैं। नगरोंमें मुसलमान यात्री मुसलमान व्यापारियोंके यहां ठहरा करते हैं। जहां मुसलमान व्यापारी नहीं, वहां हिन्दू लोग मुसलमानोंको केले या किसी दूसरे पत्तेपर खाना दे देते हैं। इस राज्यमें मैंने दो मासतक सफर किया, परन्तु कहीं जरासी भी जमीन बिना जाती-बोयी न देखी। हर एक आदमीके पास एक एक बाग है, जिसमें रहनेके लिये घर बना है। यहां सिवा बादशाहके कोई घोड़ेपर सवार नहीं होता। अमीर लोग पालकियोंपर सवार होते हैं। व्यापारी लोग लदने वाले जानवरोंका काम कुलियोंसे लेते हैं। चोरोंको यहां प्राण दण्डतक दिया जाता है, इसीलिये यहां चोरी नहीं होती। मलाबारमें बारह राजा हैं। सबसे बड़े राजाके पास पचास हजार सेना है और सबसे छोटेके पास पांच हजार। इन राजाओंके उत्तराधिकारी इनकी बहनोंके पुत्र होते हैं। इस देशमें काली मिर्च बहुत होती है।

"हेली और पट्टन होते हुए हमलोग कालीकट पहुँचे। यहासे चीनको जहाज जाते हैं। प्रत्येक जहाजमें एक हजार नौकर रहते हैं, जिनमें छ सौ मल्लाह होते हैं और चार सौ नौकर चाकर। बड़े जहाजके साथ तीन छोटे छोटे जहाज भी रहते हैं। ये जहाज चीनमें बनते हैं। ये बडी बडी शहतीरोंके डाडोंसे खेये जाते हैं। बीस पचीस मल्लाह मिलकर एक डाड चलाते हैं। जहाजोंमें लकडीके घर बने रहते हैं, जिनमें जहाजके कर्मचारी रहते हैं।

"हमलोग चीन जानेवाले जहाजोंपर सवार हुए। दुर्भाग्य-वश चलते ही तूफान आया। जहाज टूटफूट गये मेरे सब साथी समुद्रमें डूब गये। केवल मैं बच गया। अन्तको घूमते घामते मैं मालद्वीप पहुँचा।

यहासे इब्न बतूताकी भारतयात्रा समाप्त होती है। उस समय मालद्वीपमें कोई स्त्री राज कर रही थी। पहुँचते ही बतूताको वहाके काजीका पद मिल गया। वह वहा लगभग एक वर्षके रहा। उसने वहाकी चार स्त्रियोंसे शादी की। एकसे तो एक पुत्र भी हुआ। अधिक दिनोंतक वह वहा न ठहर सका। अपनी स्त्रियोंको तिलाक देकर वह सीलोनको चलता बना। वहा उसने बाबा आदमके पदचिह्नोंके दर्शन किये। वहासे वह दक्षिण भारतमें घूमता हुआ बगालके चटगावमें पहुँचा। चटगावसे एक जहाजपर सवार होकर वह चीन गया। रास्तेमें जावा, सुमात्रा आदि द्वीपोंकी भी सैर करता गया। उस समय चीनमें चगेजखाका कोई वशज राज्य करता था। वह चीनवालोंकी शिल्पकला सम्बन्धिनी चतुरताको देखकर दग रह गया। उसने चीनकी राजपद्धतिकी भी बडी प्रशसा की है। चीनमें मुसाफिरोंको बडा आराम था। देशभरमें कहीं डाकुओं और चोरोंका नाम न था। उसके चीनमें पहुँचनेके थोडे ही दिनों बाद वहा एक बडा राज्यविप्लव हुआ। उसमें चीनका बादशाह मारा गया। उसका भतीजा सिंहासनपर बैठा।

देशमें अशान्ति बढ़ती देख बतूता वहांसे चल दिया। जावा सुमात्रा आदि द्वीपोंमें फिर एक चक्कर लगाकर वह बीस वर्ष बाद अरब पहुँचा। मक्का दमश्क काहिरा आदि तीर्थों और नगरोंमें ठहरता हुआ वह संवत् १४०६ वि०में सकुशल स्वदेशको लौट गया।

संवत् १४०६ में वह फिर यात्रा करने निकला था। दो वर्षतक वह मध्य अफरीकाकी सैर करता रहा। बादको वह स्वदेश लौट गया और बीस वर्षतक जीता रहा। तिहत्तरवर्षकी उम्रमें इस बड़े यात्रीकी जीवनयात्रा समाप्त हो गयी।

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

१५ शाहजहांके अन्तिम दिन

यमुनाके किनारेवाले शाही महलमें एक भयानक सन्नाटा छाया हुआ है, केवल बार बार तोपोंकी गड़गड़ाहट और अस्त्रोंकी झनकार सुनाई दे रही है। वृद्ध शाहजहां एक आरामकुरसीपर मसनदके सहारे लेटा हुआ है और एक दासी कुछ दवाका पात्र लिये हुए खड़ी है। शाहजहां अन्यमनस्क होकर कुछ सोच रहा है। तोपोंकी आवाजसे कभी कभी चौंक पड़ता है। अकस्मात् उसके मुखसे निकल पड़ा—नहीं नहीं, क्या वह ऐसा करेगा, क्या हमको तख्तताऊससे निराश हो जाना चाहिये?

"हां, अवश्य निराश हो जाना चाहिये।"

शाहजहांने सिर उठाकर कहा—"कौन? जहांनारा? क्या तुम सच कहती हो?"

जहांनारा—(समीप जाकर) हां, जहांपनाह! यह ठीक है। क्योंकि आपका अकर्मण्य पुत्र दारा भाग गया और निमकहराम दिलेरखां क्रूर औरंगज़ेबसे मिल गया और किला उसके अधिकारमें हो गया।

शाहजहा—लेकिन जहानारा! क्या औरंगजेब क्रूर है? क्या वह अपने बुड्ढे बापकी कुछ इज्जत न करेगा? क्या वह हमारे सामने तख्तताऊसपर बैठेगा?

जहानारा—(जिसकी आखोंमें अभिमानका अश्रुजल भरा था) जहापनाह! आपके इस पुत्रवात्सल्यने आपकी यह अवस्था कर दी। औरंगजेब एक नारकीय पिशाच है, उसका किया क्या नहीं हो सकता, एक भले कार्यको छोडकर।

शाहजहा—नहीं जहानारा, ऐसा मत कहो।

जहानारा—हा जहापनाह, मैं ऐसा ही कहती हूँ।

शाहजहा—ऐसा? तो क्या जहानारा! इस बदनमें मोगल-रक्त नहीं है? तू हमारी कुछ भी मदद कर सकती है?

जहानारा—जहापनाहकी जो आज्ञा हो।

शाहजहा—तो हमारी तलवार हमारे हाथमें दे। जबतक वह हमारे हाथमें रहेगी कोई भी तख्तताऊस हमसे न छुडा सकेगा।

जहानारा आवेशके साथ—"हा जहापनाह! ऐसा ही होगा" कहती हुई वृद्ध शाहजहाकी तलवार उसके हाथमें देकर खडी हो गयी। शाहजहा उठा और लडखडाकर गिरने लगा। शाहजादी जहानाराने पकड लिया और तख्तताऊसके कमरेकी ओर बढने लगी।

तख्तताऊसपर वृद्ध शाहजहा बैठा है और नकाब डाले हुए जहानारा पासकी कुर्सीपर बैठी हुई है। और कुछ सर्दार, जो कि उस समय वहा थे खडे हैं, नकीब खडा है। शाहजहाके इशारा करते ही उसने अपने चिरअभ्यस्त शब्द करनेके लिये मुँह खोला। अभी पहला ही शब्द उसके मुँहसे निकला था कि उसका सिर छटककर दूर जा रहा। सब चकित होकर देखने लगे।

जिरःबक्तरसे लदा हुआ औरंगजेब अपनी तलवारको रूमाल से पोंछता हुआ सामने खडा हो गया और सलाम करके बोला—

हुजूरकी तबियत नासाज सुनकर मुझसे न रहा गया इसलिये हाजिर हुआ।

शाहजहा (कापकर)-"लेकिन बेटा इतनी खूरेजीकी क्या जरूरत थी। अभी अभी वह देखो, बुडढे नकीबकी लाश लोट रही है। ओफ मुझसे यह नहीं देखा जाता (कापकर) क्या बेटा "
(इतना कहते कहते बेहोश होकर तख्तसे झुक गया।)

औरगजेब—(कडककर अपने साथियोंसे) हटाओ इस नापाक लाशको।

जहानारासे अब न रहा गया और दौडकर सुगन्धित जल लेकर वृद्ध पिताके मुखपर छिडकने लगी।

औरगजेब-(उधर देखकर) हैं, यह कौन है, जो मेरे बढे बापको पकडे हुए है। (शाहजहाके मुसाहिबोंसे) तुम सब बडे नामाकूल हो, देखते नही हमारे प्यारे बापकी क्या हालत है और उन्हें अभी भी पलँगपर नहीं लिटाया (औरगजेबके साथ साथ सब तख्तकी ओर बढे)।

जहानारा उन्हें यों बढते देखकर फुरतीसे कटार निकालकर और हाथमें शाही मोहर किया हुआ कागज निकालकर खडी हो गयी और बोली–देखो इस मोहरके मुताबिक मैं तुम लोगोंको हुक्म देती हू कि अपनी अपनी जगहपर खडे रहो जबतक मैं दूसरा हुक्म न दू। सब उसी कागजकी ओर देखने लगे। उसमें लिखा था—इस शख्सका सब लोग हुक्म मानो और हमारी तरह इज्जत करो। सब उसको अभ्यर्थनाके लिये झुक गये स्वय औरगजेब भी झुक गया और कई क्षणतक सब निस्तब्ध थे।

अकस्मात् औरगजेब तनकर खडा हो गया और कडककर बोला—"गिरफ्तार कर लो इस जादूगरनीको। यह सब झूठा फिसाद है, हम सिवा शाहशाहके और किसीको नही मानेंगे।"

सब लोग उस औरतकी ओर बढे। जब उसने देखा तो फौरन अपना नकाब उलट दिया, सब लोगोंने सिर झुका दिया

और पीछे हट गये। औरगजेबने एक बार फिर सिर नीचे कर लिया और कुछ बडबडाकर जोरसे बोला—कौन, जहानारा, तुम यहा कैसे ?

जहानारा—औरगजेब ! तुम यहा कैसे ?

औरगजेब—(पलट कर अपने लडकेको तरफ देखकर) बेटा ! मालूम होता है कि बादशाह बेगमका कुछ दिमाग बिगड गया है, नहीं तो इस बेशर्मीके साथ इस जगहपर न आती। तुम्हें इनकी हिफाजत करनी चाहिये ।

जहानारा—"और औरगजेबके दिमागको क्या हुआ है जो वह अपने बापके साथ इस बेअदबीसे पेश आया " अभी इतना उसके मुँहसे निकला ही था कि शाहजादेने फुरतीसे उसके हाथसे कटार निकाल लिया और कहा–"मैं अदबके साथ कहता हू कि आप महलमें चलें नहीं तो "

जहानारासे यह देखकर न रहा गया। रमणीसुलभ वीर्य और अस्त्र क्रन्दन और अश्रुका प्रयोग उसने किया और गिडगिडाकर औरगजेबसे बोली—"क्यों औरगजेब ! तुमको कुछ भो दया नहीं है ?"

औरगजेबने कहा—'दया क्यों नहीं है । बादशाह बेगम ! दारा जैसे तुम्हारा भाई था वैसाही मैं भी तो भाई ही था, फिर तरफदारी क्यों ?

जहानारा—वह तो बापका तख्त नहीं लिया चाहता था, उनके हुक्मसे सल्तनतका काम चलाना था।

औरंगजेब—तो क्या मैं नहीं यह काम कर सकता ? अच्छा ज्यादा बहसकी कोई जरूरत नहीं है। बेगमको चाहिये कि वह महलमें जावें।"

जहानारा कातर दृष्टिसे वृद्ध मूर्च्छित पिताको देखकर हाय बाप ! करती हुई शाहजादेकी बतायी राहसे जाने लगी।

(२)

यमुनाके किनारेके एक महलमें शाहजहा पलगपर पडा है और जहानारा उसके सरहाने बैठी हुई है।

जहांनारासे जब औरगजेबने पूछा कि वह कहा रहना चाहती है तो उसने केवल अपने वृद्ध और हतभागे पिताके साथ रहना स्वीकार किया और अब वह साधारण दासीके वेशमें अपना जी अभागे पिताकी सेवामें व्यतीत करती है।

वह भडकदार शाही पेशवाज अब उसके बदनपर नहीं दिखाई पडती, केवल सादे वस्त्रही उसके प्रशान्त मुखकी शोभा बढाते हैं, चारों ओरसे उस शाही महलमें एक शान्ति दिखाई पडती है। जहानाराने शाही असबाब जो उसके पास थे सब गरीबोंको बांट दिये, और अपने निजके बहुमूल्य अलकार भी उसने पहिनने छोड दिये। अब जहानारा एक तपस्विनी ऋषिकन्या सी हो गयी। अब बात बातपर दासियोंपरकी वह झिडकी उसमें नहीं रही। केवल आवश्यक वस्तुओंके सिवाय उसके रहनेके स्थानमें और कुछ नहीं है।

वृद्ध शाहजहाने लेटे लेटे आख खोलकर कहा–बेटी, अब दवाकी कोई जरूरत नहीं है, यादे खुदा ही दवा है। अब तुम इसके लिये मत कोशिश करना। जहानाराने रोकर कहा—पिता, जबतक शरीर है तबतक उसकी रक्षा जरूर करनी चाहिये। शाहजहां कुछ न बोलकर चुपचाप पडे रहे। थोडी देरतक जहानारा बैठी रही फिर उठी और दवाकी शीशिया यमुनाके जलमें फेंक दीं। थोडी देरतक वहीं बैठी बैठी यमुनाका मन्द प्रवाह देखती रही। वह चित्तमें सोचती थी कि यमुनाका प्रवाह वैसाही है मुगल साम्राज्य भी तो वैसाही है फिर शाहजहा भी तो जीवित हैं, लेकिन तख्तता ऊसपर तो वह नहीं बैठते। क्या संसारके सब पदार्थ ऐसेही क्षणिक हैं? इसी सोचविचारमें वह तबतक

वहां बैठी थी जबतक चन्द्रमाकी किरणें उसके मुखपर नहीं पड़ीं।

शाहजादी जहानारा तपस्विनी हो गयी है। उसके हृदयमें वह स्वाभाविक तेज अब नहीं है किन्तु एक स्वर्गीय तेजसे वह कान्तिमयी थी। उसकी उदारता पहलेसे भी बढ गयी। दीन और दुखीके साथ उसकी ऐसी सहानुभूति थी कि लोग उसे मूर्तिमती करुणा मानते थे। उसकी इस चालसे पाषाणहृदय औरंगजेब भी विचलित हुआ। उसकी स्वतन्त्रता जो छीन ली गयी थी उसे फिर मिली। पर अब स्वतंत्रताका उपभोग करनेके लिये उसे अवकाश ही कहां था? पिताकी सेवा, दुखियोंकी सहानुभूति करनेसे उसे समय ही नहीं था। जिसकी सेवाके लिये हजारों दासियां हाथ बांधकर खडी रहती थीं वह स्वयं दासीकी तरह अपने पिताकी सेवा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी। वृद्ध शाहजहांके इंगित करनेपर उसे उठाकर बैठाती और सहारा देकर कभी कभी यमुनाके तटतक उसे ले जाती और उसका मनोरंजन करती हुई छाया सी बनी रहती।

वृद्ध शाहजहांने इहलोककी लीला पूरी की। अब जहानाराको संसारमें कोई कार्य नहीं है। केवल इधर उधर उसी महलमें घूमना भी अच्छा नहीं मालूम होता। उसकी पूर्व स्मृति उसे और भी सताने लगी। धीरे धीरे वह बहुत क्षीण हो गयी। अन्तमें वह बीमार पड गयी। उसकी सेवाके लिये जो दासियां थीं वे उसकी सेवा जीसे करने लगीं पर जहानाराने दवा कभी न पी। धीरे धीरे उसकी बीमारी बहुत बढी और उसकी दशा बहुत खराब हो गयी। औरंगजेबने सुना अब उससे भी सह्य न हो सका। वह जहानाराको देखनेके लिये गया।

एक पुराने पलँगपर जीर्ण बिछौनेपर जहानारा पड़ी थी और केवल एक धीमी सांस चल रही थी। औरंगजेबने देखा कि यह वही जहानारा है जिसके लिये भारतवर्षकी कोई वस्तु अलभ्य

(२)

यमुनाके किनारेके एक महलमें शाहजहां पलगपर पडा है और जहानारा उसके सरहाने बैठी हुई है।

जहांनारासे जब औरंगजेबने पूछा कि वह कहा रहना चाहती है तो उसने केवल अपने वृद्ध और हतभागे पिताके साथ रहना स्वीकार किया और अब वह साधारण दासीके वेशमें अपना जी अभागे पिताकी सेवामें व्यतीत करती है।

वह भडकदार शाही पेशवाज अब उसके बदनपर नहीं दिखाई पडती, केवल सादे वस्त्रही उसके प्रशान्त मुखकी शोभा बढाते हैं, चारों ओरसे उस शाही महलमें एक शान्ति दिखाई पडती है। जहानाराने शाही असबाब जो उसके पास थे सब गरीबोंको बाट दिये, और अपने निजके बहुमूल्य अलकार भी उसने पहिनने छाड दिये। अब जहानारा एक तपस्विनी ऋषिकन्या सी हो गयी। अब बात बातपर दासियोंपरकी वह झिडकी उसमें नहीं रही। केवल आवश्यक वस्तुओंके सिवाय उसके रहनेके स्थानमें और कुछ नहीं है।

वृद्ध शाहजहाने लेटे लेटे आख खोलकर कहा—बेटी, अब दवाकी कोई जरूरत नहीं है, यादे खुदा ही दवा है। अब तुम इसके लिये मत कोशिश करना। जहानाराने रोकर कहा—पिता, जबतक शरीर है तबतक उसकी रक्षा जरूर करनी चाहिये। शाहजहा कुछ न बोलकर चुपचाप पडे रहे। थोडी देरतक जहानारा बैठी रही फिर उठी और दवाकी शीशिया यमुनाके जलमें फेंक दीं। थोडी देरतक वहीं बैठी बैठी यमुनाका मन्द प्रवाह देखती रही। वह चित्तमें सोचती थी कि यमुनाका प्रवाह वैसाही है मुगल साम्राज्य भी तो वैसाही है फिर शाहजहा भी तो जीवित हैं, लेकिन तख्तता ऊसपर तो वह नहीं बैठते। क्या संसारके सब पदार्थ ऐसेही क्षणिक हैं? इसी सोचविचारमें वह तबतक

वहा बैठी थी जबतक चन्द्रमाकी किरणें उसके मुखपर नहीं पडीं।

शाहजादी जहानारा तपस्विनी हो गयी है। उसके हृदयमें वह स्वाभाविक तेज अब नहीं है किन्तु एक स्वर्गीय तेजसे वह कान्तिमयी थी। उसकी उदारता पहलेसे भी बढ गयी। दीन और दुखीके साथ उसकी ऐसी सहानुभूति थी कि लोग उसे मूर्तिमती करुणा मानते थे। उसकी इस चालसे पाषाणहृदय औरंगजेब भी विचलित हुआ। उसकी स्वतन्त्रता जो छीन ली गयी थी उसे फिर मिली। पर अब स्वतन्त्रताका उपभोग करनेके लिये उसे अवकाश ही कहा था? पिताकी सेवा, दुखियोंकी सहानुभूति करनेसे उसे समय ही नहीं था। जिसकी सेवाके लिये हजारों दासिया हाथ बाधकर खडी रहती थीं वह स्वय दासीकी तरह अपने पिताकी सेवा करती हुई अपना जीवन व्यतीत करने लगी। वृद्ध शाहजहाके इ गित करनेपर उसे उठाकर बैठाती और सहारा देकर कभी कभी यमुनाके तटतक उसे ले जाती और उसका मनोरजन करती हुई छाया सी बनी रहती।

वृद्ध शाहजहांने इहलोककी लीला पूरी की। अब जहानाराको ससारमें कोई कार्य नहींहै। केवल इधर उधर उसी महलमें घूमना भी अच्छा नहो मालूम होता। उसकी पूर्व स्मृति उसे और भी सताने लगी। धीरे धीरे वह बहुत क्षीण हो गयी। अन्तमें वह बीमार पड गयी। उसकी सेवाके लिये जो दासिया थीं वे उसकी सेवा जीसे करने लगीं पर जहानाराने दवा कभी न पी। धीरे धीरे उसकी बीमारी बहुत बढी और उसकी दशा बहुत खराब हो गयी। औरंगजेबने सुना अब उससे भी सहा न हो सका। वह जहानाराको देखनेके लिये गया।

एक पुराने पलँगपर जीर्ण बिछौनेपर जहानारा पडी थी और केवल एक धीमी सास चल रही थी। औरंगजेबने देखा कि यह वही जहानारा है जिसके लिये भारतवर्षकी कोई वस्तु अलभ्य

नहीं थी, जिसके बीमार पडनेपर शाहजहा भी व्यग्र हो जाता था और सैकडों हकीम उसे आरोग्य करनेके लिये व्यग्र रहते थे। वह इस तरह एक कोनेमें पडी है। पाषाण भी पिघला, औरगजेबकी आखें आसूसे भर आयीं और वह घुटनेके बल बैठ गया। समीप मुँह लेजाकर बोला—बहिन, कुछ हमारे लिये हुक्म है? जहानाराने अपनी आंखें खोल दीं और एक पुरजा उसके हाथमें दिया, जिसे औरगजेबने ले लिया। फिर पूछा—बहिन क्या तुम हमें माफ करोगी? जहानाराने खुली हुई आखोंको आकाशकी ओर उठा दिया। उस समय उसमेंसे एक स्वर्गीय ज्योति निकल रही थी और वह वैसेही देखती रह गयी। औरगजेब उठा और आसू पोंछते हुए पुरजेको पढा। उसमें लिखा था

बगैर सबज न पोशद कसे मजारे मरा
कि कब्रपोश गरीबा हमी गयाह बसस्त

—जयशंकर "प्रसाद"

१६ आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता (अपने भरोसेपर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होनेसे पुरुषमें पौरुषका अभाव कहना अनुचित नहीं मालूम होता। जिनको अपने भरोसेका बल है वे जहा होंगे जलमें तूबीके समान सबके ऊपर रहेंगे। ऐसोंहीके चरित्रपर लक्ष्यकर महाकवि भारविने कहा है—

"लघयन् खलु तेजसा जगन्नमहानिच्छति भूतिमन्यत "

अर्थात् तेज और प्रतापसे ससारभरको अपने नीचे करते हुए ऊची उमगवाले दूसरेके द्वारा अपना वैभव नहीं बढाना चाहते। शारीरिक बल, चतुरङ्गिणी सेनाका बल, प्रभुताका बल, ऊंचे कुलमें पैदा होनेका बल, मित्रताका बल, मन्त्रतन्त्रका बल इत्यादि जितने बल हैं निज बाहुबलके आगे सब क्षीण बल हैं, वरन् आत्मनिर्भरताकी बुनियाद यह बाहुबल सब तरहके बलको

सहारा देनेवाला और उभारनेवाला है। युरोपके देशोंकी जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका जापान आदि जो इस समय मनुष्य जातिके सिरताज हो रहे हैं इसका यही कारण है कि उन देशोंमें लोग अपने भरोसेपर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दुस्तानका जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहाके लोग अपने भरोसेपर रहना भूल ही गये। इसीसे सेवकाई करना यहाके लोगोंसे जैसी खूबसूरतीके साथ बन पडता है वैसा स्वामित्व नहीं। अपने भरोसेपर रहना जब हमारा गुण नहीं तब क्योंकर सभव है कि हमारेमें प्रभुत्व शक्तिको अवकाश मिले।

निरी किस्मत और भाग्यपर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। अच्छा किसीने कहा है—

"दैव दैव आलसी पुकारा"

ईश्वर भी सानुकूल और सहायक उन्हींका होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। अपने आप अपनी सहायता करनेकी वासना आदमीमें सच्ची तरक्कीकी बुनियाद है। अनेक सुप्रसिद्ध सत्पुरुषोंकी जीवनी इसका उदाहरण तो हई है वरन् प्रत्येक देश या जातिके लोगोंमें बल और ओज तथा गौरव और महत्वके आनेका आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है। बहुधा देखनेमें आता है कि किसी कामके करनेमें बाहरी सहायता इतना लाभ नहीं पहुँचा सकती जितना आत्मनिर्भरता। समाजके बन्धनमें भी देखिये बहुत तरहके संशोधन सरकारी कानूनोंके द्वारा वैसा नहीं हो सकते जैसा समाजके एक एक मनुष्यका अलग अलग अपना संशोधन अपने आप करनेसे हो सकता है। कडेसे कडा कानून आलसी समाजको परिश्रमी, अपव्ययी या फजूलखर्चको किफायतशार या परिमित व्ययशील, शराबीको परहेजगार; क्रोधीको शान्त या सहनशील, सूमको उदार, लोभीको सन्तोषी, मूर्खको विद्वान्, दर्पान्धको नम्र, दुरा-

नहीं थी, जिसके बीमार पडनेपर शाहजहा भी व्यग्र हो जाता था और सैकडों हकीम उसे आरोग्य करनेके लिये व्यग्र रहते थे। वह इस तरह एक कोनेमें पड़ी है। पाषाण भी पिघला, औरंगजे- बकी आखें आसूसे भर आयीं और वह घुटनेके बल बैठ गया। समीप मुँह लेजाकर बोला—बहिन, कुछ हमारे लिये हुक्म है? जहानाराने अपनी आखें खोल दीं और एक पुरजा उसके हाथमें दिया, जिसे औरंगजेबने ले लिया। फिर पूछा--बहिन क्या तुम हमें माफ करोगी? जहानाराने खुली हुई आखोंको आकाशकी ओर उठा दिया। उस समय उसमेंसे एक स्वर्गीय ज्योति निकल रही थी और वह वैसेही देखती रह गयी। औरंगजेब उठा और आंसू पोंछते हुए पुरजेको पढ़ा। उसमें लिखा था

बगैर सबज न पोशद कसे मजारे मरा
कि कब्रपोश गरीबा हमी गयाह बसस्त

—जयशकर "प्रसाद"

१६ आत्मनिर्भरता

आत्मनिर्भरता (अपने भरोसेपर रहना) ऐसा श्रेष्ठ गुण है कि जिसके न होनेसे पुरुषमें पौरुषका अभाव कहना अनु- चित नही मालूम होता। जिनको अपने भरोसेका बल है वे जहा होंगे जलमें तूबीके समान सबके ऊपर रहेंगे। ऐसोंहीके चरित्र- पर लक्ष्यकर महाकवि भारविने कहा है---

"लघयन् खलु तेजसा जगन्नमहानिच्छति भूतिमन्यत"

अर्थात् तेज और प्रतापसे ससारभरको अपने नीचे करते हुए ऊची उमगवाले दूसरेके द्वारा अपना वैभव नहीं बढ़ाना चाहते। शारीरिक बल, चतुरङ्गिणी सेनाका बल, प्रभुताका बल, ऊचे कुलमें पैदा होनेका बल, मित्रताका बल, मन्त्रतन्त्रका बल इत्यादि जितने बल हैं निज बाहुबलके आगे सब क्षीण बल हैं, वरन् आत्मनिर्भरताकी बुनियाद यह बाहुबल सब तरहके बलको

सहारा देनेवाला और उभारनेवाला है। युरोपके देशोंकी जो इतनी उन्नति है तथा अमेरिका जापान आदि जो इस समय मनुष्य जातिके सिरताज हो रहे हैं इसका यही कारण है कि उन देशोंमें लोग अपने भरोसेपर रहना या कोई काम करना अच्छी तरह जानते हैं। हिन्दुस्तानका जो सत्यानाश है इसका यही कारण है कि यहाके लोग अपने भरोसेपर रहना भूल ही गये। इसीसे सेवकाई करना यहाके लोगोंसे जैसी खूबसूरतीके साथ बन पडता है वैसा स्वामित्व नही। अपने भरोसेपर रहना जब हमारा गुण नहीं तब क्योंकर सभव है कि हमारेमें प्रभुत्व-शक्तिको अवकाश मिले।

निरी किस्मत और भाग्यपर वे ही लोग रहते हैं जो आलसी हैं। अच्छा किसीने कहा है—

"दैव दैव आलसी पुकारा"

ईश्वर भी सानुकूल और सहायक उन्हीका होता है जो अपनी सहायता अपने आप कर सकते हैं। अपने आप अपनी सहायता करनेकी वासना आदमीमें सच्ची तरक्कीकी बुनियाद है। अनेक सुप्रसिद्ध सत्पुरुषोंकी जीवनी इसका उदाहरण तो हई है वरन् प्रत्येक देश या जातिके लोगोंमें बल और ओज तथा गौरव और महत्त्वके आनेका आत्मनिर्भरता सच्चा द्वार है। बहुधा देखनेमें आता है कि किसी कामके करनेमें बाहरी सहायता इतना लाभ नहीं पहुँचा सकती जितना आत्मनिर्भरता। समाजके बन्धनमें भी देखिये बहुत तरहके सशोधन सरकारी कानूनोंके द्वारा वैसा नहीं हो सकते जैसा समाजके एक एक मनुष्यका अलग अलग अपना सशोधन अपने आप करनेसे हो सकता है। कडेसे कडा कानून आलसी समाजको परिश्रमी, अपव्ययी या फजूलखर्चको किफायतशार या परिमित व्ययशील, शराबीको परहेजगार, क्रोधीको शान्त या सहनशील, सूमको उदार, लोभीको सन्तोषी, मूर्खको विद्वान्, दर्पान्धको नम्र, दुरा-

चारीके सदाचारी, कदर्यको उत्तम, दरिद्र भिखारीको आढ्य, भीरु डरपोकको धीर धुरीण, झूठे गपोडियेको सच्चा, चोरको ईमानदार, व्यभिचारीको एक पत्नीव्रतधर इत्यादि नहीं बना सकता, किन्तु ये सब बातें हम अपने ही प्रयत्न और चेष्टासे अपनेमें ला सकते हैं। सच पूछो तो जाति या कौम भी सुधरे हुए ऐसे एक एक व्यक्तिकी समष्टि है। समाज या जातिके एक एक आदमी यदि अलग अलग अपनेको ही सुधारें तो जातिकी जाति, या समाजकी समाज, सुधर जाय।

सभ्यता और है क्या? यही कि सभ्य जातिके एक एक मनुष्य आबाल वृद्ध वनिता सबोंमें सभ्यताके सब लक्षण पाये जायँ। जिसमें आधे या तिहाई सभ्य हैं वही जाति अर्द्धशिक्षित कहलाती है। कौमी तरक्की भी अलग अलग एक एक आदमियोंके परिश्रम योग्यता सुचाल और सौजन्यका मानों टोटल है। उसी तरह कौमकी तनज्जुली कौमके एक एक आदमीकी सुस्ती कमीनापन नीच प्रकृति स्वार्थपरता और भांति भांतिकी बुराइयोंका ग्रैण्ड टोटल है। इन्हीं गुणों और अवगुणोंको जाति-धर्मके नामसे भी पुकारते हैं जैसा सिक्खोंमें वीरता और जंगली असभ्य जातियोंमें लुटेरापन। जातीय गुणों या अवगुणोंको गवर्नमेन्ट कानूनके द्वारा रोक दे या जड पेडसे नेस्तनाबूद कर दे परन्तु वे किसी दूसरी शकलमें न, सिर्फ फिरसे उमड आवेंगे वरन् पहिलेसे ज्यादा तरोताजगी और सरसब्जीकी हालतमें हो जायँगे। जबतक किसी जातिके हरएक व्यक्तिके चरित्रमें आदिसे मौलिक सुधार न किया जाय तबतक औवल दर्जेका देशानुराग और सर्वसाधारणके हितकी वाछा सिर्फ कानूनके अदल बदलपनसे या नये कानून जारी करनेसे नहीं पैदा हो सकती। जालिमसे जालिम बादशाहकी हुकूमतमें भी रहकर कोई कौम गुलाम नहीं कही जा सकती वरन् गुलाम वही कौम है जिसमें एक एक व्यक्ति सब भांति कदर्य स्वार्थपरायण और जातीयताके

भावसे रहित है। ऐसी कोम जिसको नस नसमें दास्यभाव समाया हुआ है कभी तरक्की नहीं करेगी चाहे कैसे ही उदार शासनसे वह शासित क्यों न की जाय। तो निश्चय हुआ कि देशकी स्वतन्त्रताकी गहरी और मजबूत नींव उस देशके एक एक आदमियोंके आत्मनिर्भरता आदि गुणोंपर स्थित है। ऊंचेसे ऊंचे दरजेकी तालीम बिलकुल बेफायदा है यदि हम अपने ही सहारे अपनी बेहतरी न कर सकें। जानस्टुअर्ट मिलका सिद्धान्त है कि "राजाका भयानकसे भयानक अत्याचार देशपर कभी कोई बुरा असर नहीं पैदा कर सकता जबतक उस देशकी एक एक व्यक्तिमें अपने सुधारकी अटल वासना दृढताके साथ है।"

पुराने लोगोंसे जो चूक और गलती बन पडी है उसीका नतीजा वर्त्तमान समयमें हमलोग भुगत रहे हैं। उसीको चाहे जिस नामसे पुकारिये यथा "जातीयताका भाव जाता रहा" "एका नहीं है" "आपसकी हमदर्दी नहीं है" इत्यादि। तब पुराने क्रमको अच्छा मानना और उसपर श्रद्धा जमाये रहना हम क्योंकर अपने लिये उपकारी और उत्तम मानें। हम तो इसे निरा चंडूखानेकी गप्प समझते हैं कि हमारा धर्म हमें आगे नहीं बढने देता, अथवा विदेशी राजसे शासित हैं इसीसे हम तरक्की नहीं कर सकते। वास्तवमें सच पूछो तो आत्मनिर्भरता अर्थात् अपनी सहायता अपने आप करनेका भाव हमारे बीच हई नहीं। हमारी यह सब वर्त्तमान दुर्गति उसीका परिणाम है।' बुद्धिमानोंका अनुभव हमें यही कहता है कि मनुष्यमें पूर्णता विद्यासे नहीं वरन् कामसे होती है। प्रसिद्ध पुरुषोंकी जीवनी पढनेसे नहीं वरन् उन प्रसिद्ध पुरुषार्थी पुरुषोंके चरित्रका अनुकरण करनेसे मनुष्यमें पूर्णता आती है। युरोपकी सभ्यता जो आजकल हमारे लिये प्रत्येक उन्नतिकी बातमें उदाहरणस्वरूप मानी जाती है एक दिन या एक आदमीके कामका परिणाम नहीं है। जब कई पुश्ततक देशका देश ऊंचे काम, ऊंचे ख्याल और ऊंची वासनाओंको

ओर प्रबलचित्त रहा तब वे इस अवस्थाको पहुँचे हैं। वहाके हरएक फिरके जातिया वर्णके लोग धैर्यके साथ धुन बांधके बराबर अपनी अपनी तरक्कीमें लगे हैं। नीचेसे नीचे दरजेके मनुष्य किसान कुली कारीगर आदि और ऊचेसे ऊचे दरजे वाले कवि दार्शनिक राजनीतिज्ञ सबने मिलकर कौमी तरक्कीको इस दरजेतक पहुँचाया है। एकने एक बातको आरम्भ कर उसका ढाचा खडा कर दिया, दूसरेने उसी ढाचेपर साबित कदम रह एक दरजा और बढाया। इसी तरह क्रम क्रमसे कई पीढीके उपरान्त वह बात जिसका केवल ढांचामात्र पडा था पूर्णता और सिद्ध अवस्थातक पहुँच गयी। ये अनेक शिल्प और विज्ञान जिनकी दुनियाभरमें धूम मची है इसी तरह शुरू किये गये थे और ढाचा छोडनेवाले पूर्वपुरुष अपनी भाग्यवान भावी सन्तानको उस शिल्प कौशल और विज्ञानकी बडी भारी मीरास या बपौतीका उत्तराधिकारी बना गये।

आत्मनिर्भरता या "अपने आप अपनी सहायता"के सम्बन्धमें जो शिक्षा हमें खेतिहर दूकानदार बढई लोहार आदि कारीगरोंसे मिलती है उसके मुकाबिलेमें स्कूल और कालिजोंकी शिक्षा कुछ नहीं है और यह शिक्षा हमें पुस्तक या किताबोंसे नहीं मिलती वरन् एक एक मनुष्यके चरित्र, आत्मदमन, दृढ़ता, धैर्य, परिश्रम, स्थिरअध्यवसायपर दृष्टि रखनेसे मिलती है। इन सब गुणोंसे हमारे जीवनकी सफलता है। ये गुण मनुष्य जातिकी उन्नतिका छोर हैं और हमें जन्म ले क्या करना चाहिये इसका सारांश है।

बहुतेरे सत्पुरुषोंके जीवनचरित्र धर्मग्रन्थके समान हैं जिनके पढनेसे हमें कुछ न कुछ उपदेश जरूर मिला है। बडप्पन किसी जाति विशेष या खास दरजेके आदमियोंके हिस्सेमें नहीं पडा जो कोई बडा काम करे या जिससे सर्वसाधारणका उपकार हो वही बडे लोगोंकी कोटिमें आ सकता है। वह चाहे गरीबसे

गरीब या छोटेसे छोटे दर्जेका क्यों न हो बड़ेसे बड़ा है। वह मनुष्यके तनमें साक्षात् देवता है। हमारे यहां अवतार ऐसे ही लोग हो गये हैं। सवेरे उठ जिनका नाम ले लेनेसे दिनभरके लिये मंगलकी गारण्टी समझी जाती है, ऐसे महामहिमाशाली जिस कुलमें जन्मते हैं वह कुल उजागर और पुनीत हो जाता है। ऐसोंहीकी जननी वीरप्रसू कही जाती है। पुरुषसिंह ऐसा एक पुत्र अच्छा, गीदड़ोंकी खासियतवाले सौ पुत्र भी किस कामके। पुत्रजन्ममें लोग बड़ी खुशी मनाते हैं, शहनाई बजवाते हैं, फूले नहीं समाते, हमें पछतावा और दुःख होता है कि जहां तीस करोड़ गीदड़ थे वहां एककी गिनती और बढ़ी क्योंकि हिन्दुस्तानकी हमारी बिगड़ी गिरी कौममें सिंहका जन्मना सर्वथा असम्भवसा प्रतीत होता है और न हमलोगोंके ऐसे पुण्य काम हैं कि हमारे बीच सब सिंह ही सिंह जन्में। तब हमारी इतनी अधिक बढ़ती जैसे बाल्यविवाहकी कृपासे हो रही है किस कामकी! सिवा इसके कि हिन्दुस्तानकी पृथ्वीका बोझ बढ़ता जाय। समाजमें ऐसे ऐसे कुसंस्कार और निन्दित रीतियां चल पड़ी हैं कि आत्मनिर्भरता पासतक नहीं फटकने पाती। बहुत तरहके समाजबन्धन तथा खानपान आदिकी कैद जो हमारे पीछे लगा दी गयी है उन सबका यही तो परिणाम हुआ कि आजादी जिसपर आत्मनिर्भरता या किसी दूसरे पौरुषेय गुणकी लम्बी चौड़ी इमारत खड़ी हो सकती है, शुरू हीसे नहीं आने पाती। जब कि युरोपके भिन्न भिन्न देशोंमें बाप मा अपने लड़कों को तालीम देनेके साथ ही साथ अपने भरोसेपर जिन्दगीकी किश्तीको किस तरहपर खे ले जाना चाहिये यह लड़कपनमें सिखाते हैं, तब यहां दुधमुँहे बालक बालिकाओंका ब्याह कर स्वयं अपना भरणपोषण तथा अन्य समस्त पौरुषेय गुणोंकी जड़पर कुल्हाड़ा चलानेका प्रयत्न किया जाता है। युरोपके देशोंमें पिता पुत्रको शक्तिभर उत्तमसे उत्तम शिक्षा दे उसे उ

लिये तैयार कर देता है जिसमें वह अपने आप निर्वाह कर सके। वहाके बाप मा हमलोगोंके बाप माकी तरह अपने पुत्रके मित्रमुख शत्रु नहीं हैं कि बिना सोचे समझे लड़कपनसे चक्कीका पाट गलेमें बाध उस बेचारेको सब तरहपर हीन, दीन और लाचार कर डालें और आप भी चितापर पहुचनेतक लड़कोंकी फिकिरसे सुचित्त न रहें। इतिहाससे पूरा पता लगता है कि जबसे यहा ब्रह्मचर्यकी प्रथा उठा दी गयी और दुधमुँहोंका व्याह जारी कर दिया गया तबसे आजतक बराबर हमारी घटती ही होती जाती है। हम तो यही कहेंगे कि जैसा पाप हमसे बन पड़ता है उसके मुकाबिलेमें हमें कुछ भी दण्ड नही मिलता। दस या बारह वर्षकी कन्याओंके विवाहरूपी महापापकी इतनी सजा मिली तो कुछ न हुआ। अस्तु हमारेमें आत्मनिर्भरता न होनेका बाल्यविवाह एक बहुत बड़ा प्रधान कारण है। इसीका यह फल है कि हम नया कुआ खोद नया स्वच्छ पानी पीना जानते ही नहीं।

हमारे देशकी कुल आबादीके दस हिस्सेमें आठ हिस्सा ऐसा है जो केवल बाप दादोंकी कमाई या परम्पराप्राप्त जीविका अथवा वृत्तिसे निर्वाह करता है। सौमें एक ऐसे मिलेंगे जो अपने निज बाहुबल और पुरुषार्थके भरोसे हैं सो भी उनके सब पुरुषार्थ करतूत या सपूतीका निचोड़ केवल इतना ही है जैसा किसी कविने कहा है—

"अन्नपानजिता दारा सफल तस्य जीवनम्"

अर्थात् सफल जीवन उसीका है जिसने अन्नबलसे अपने लड़के और स्त्रीको प्रसन्न कर रखा है। इतना जिसने किया वह पक्का सपूत और पुरुषार्थी है।

इधर पचास साठ वर्षों से अँगरेजी राज्यके अमन चैनका फायदा पाय हमारे देशवाले किसी भलाईकी ओर न झुके, वरन् दस वर्षकी गुड़ियोंका व्याहकर पहलेसे ड्योढ़ी दूनी सृष्टि बल-

बच्चा बढाने लगे। हमारे देशकी जनसख्या अवश्य घटनी चाहिये और उसके घटानेका सुगम उपाय केवल बाल्यविवाहका रुक जाना है। पञ्चायतोंको चाहिये कि वह बाल्यविवाहको जुर्ममें दाखिल कर पूरे सिनपर आनेके पहले जो अपने कन्या या पुत्रका विवाह करे उसके लिये कोई भारी सजा या जुर्माना कायम कर दें, तब कदाचित् यह बुराई हम लोगोंमेंसे दूर हो। अपने आप ये कभी राहपर नहीं आनेवाले हैं। आत्मनिर्भरतामें दृढ, अपने कुवते बाजूपर भरोसा रखनेवाला पुष्ट-वीर्य, पुष्ट बल, भाग्यवान् एक सन्तान अच्छी। कूकर शूकरसे निकम्मे, रग रगमें दासभावसे पूर्ण, परभाग्योपजीवी, दस किस कामकी।

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्"

आदमीके लिये आजादी एक बेशकीमत मोती है। वह आजादी तब ही हासिल हो सकती है जब हम अनेक तरहकी फिकिर और चिन्तासे निर्द्वन्द हों और हमारी तबियतमें आत्मनिर्भरताने दखल कर लिया हो। इस दशामें बडीसे बडी चिन्ता और फिकिर हमें उतनी असह्य न मालूम होगी कि वह हमारी स्वच्छन्दताको जडसे उखाड सके। किसी वस्तुका जब बीज बना रहता है तो उसको फिर बढा लेना सहज है। आत्मनिर्भरताकी योग्यता सम्पादन किये बिना ही हम लोगोंके बाप मा लडकपनमें अपने लडकोंका व्याहकर यावज्जीवनके लिये उनकी स्वच्छन्दताका बीज नष्ट कर देते हैं। उपरान्त उनका शेष जीवन बोझ और अपाढ हो जाता है। इङ्गलैण्ड और अमेरिका जो इस समय उन्नतिके शिखरपर चढे हैं सो इसीलिये कि वहा गृहस्थी करना हर एक आदमीकी इच्छापर निर्भर है। वहा बाप माको कोई अधिकार नहीं रहता कि निरे नाबालिगका व्याह कर दें। यही सबब है कि उन देशोंमें प्राय सब ही बड़प्पनका दावा कर सकते हैं। हमारे यहा भी शकर, नानक, कबीर, कृष्णचैतन्य, बुद्धदेव, तथा हालमें स्वामी दयानन्द

जिनका बडप्पन हमलोग मुक्तकण्ठ हो स्वीकार करते हैं, और जिनका नाम लेते चित्त गद्गद हो जाता है, सबके-सब गृहस्थोंके बोझसे स्वच्छन्द थे। आत्मनिर्भरता इन महापुरुषोंमें पूरा प्रभाव रखती थी। किसीका मत है मुल्ककी तरक्की औरतोंकी तालीमसे होगी, कोई कहता है विधवाविवाह होनेसे भलाई है, कोई कहता है खाने पीनेकी कैद उठा दो जाय तो हिन्दू लोग स्वर्ग पहुँच इन्द्रका आसन छीन लें, कोई कहता है विलायत जानेसे तरक्की होगी, कोई कहता है फजूलखर्ची कम कर दी जाय तो मुल्क अभी तरक्कीकी सीढीपर लपकके चढ जाय। हम कहते हैं इन सब बातोंसे कुछ न होगा जबतक हमारा बाल्य-विवाह रूपी कोढ़ साफ न होगा। हम जानते हैं हमारा यह रोना झीखना केवल अरण्यरुदनमात्र है, फिर भी गला फाड फाड चिल्लाते रहेंगे। कदाचित् किसीकी तबियतपर कुछ असर पैदा हो जाय और आत्मनिर्भरता ऐसे श्रेष्ठ गुणको हमलोगोंके बीच भी प्रकट होनेका अवकाश मिले।

—बालकृष्ण भट्ट

१७ मिताचरण

जिस वर्ष वृष्टि नही होती अथवा बहुत ही स्वल्प होती है उस वर्ष अकाल पडनेकी सम्भावना हुआ करती है। योंही जब अतिवृष्टि होती है तब भी बहुतसे खेत बह जाते हैं बहुतसे सड जाते हैं इससे अन्नकी उत्पत्तिमें बाधा पडती है। यह प्राकृतिक नियम हमें सिखलाता है कि जो बात मर्यादाबद्ध नही होती वह कष्टका हेतु होती है। यदि हम परिश्रम करना छोड दें तो कुछ ही कालमें आलसी होकर और धन बल मान इत्यादि खोकर नाना जातिके रोग शोकादिके भाजन बन बैठेंगे अथवा अपनी शक्तिसे अधिक श्रम करें तौभी शरीर शिथिल एव मन खेदित होनेके कारण किसी कामके न रहेंगे, भोजन यदि स्वादिष्ट होनेसे

भूखसे अधिक खायँ तो आलस्य और अनपचके कारण भांति भांतिके कष्ट सहने पड़ेंगे तथा अत्यन्त थोड़ा भोजन करें तो भी निर्बलताजनित उपाधिसमूह झेलने पड़ेंगे। अत बुद्धिमानको चाहिये कि जो काम करे परिमाणके भीतर ही करे क्योंकि जीवनको सुविधासम्पन्न बनानेके लिये जैसे सभी बातोंका अभ्यास रखना आवश्यक है वैसे ही यह स्मरण रखना भी प्रयोजनीय है कि अति किसी बातकी अच्छी नहीं होती, परिणाममें उसके द्वारा दु ख ही होता है। जिन बातोंको सारा ससार एक स्वरसे उत्तम कहता है, उनकी प्राप्तिके लिये भी यदि परिमितताका त्याग कर दिया जाय तो क्लेश और हानि हुए बिना नहीं रहती। विद्याध्ययन अथवा धर्मके सचयमें जितना श्रम किया जाय उतने ही कल्याणकी वृद्धि होती है किन्तु साथ ही यह भी स्मर्तव्य है कि यदि हम महाधुरन्धर पण्डित अगणित सम्पत्तिसम्पन्न परम धार्मिक बननेकी धुनमें आकर आहार विहार आदिके नियमोंकी ओरसे ध्यान हटा लें तो थोड़े ही दिनोंमें स्वास्थ्यसे रहित होकर पढ़ने लिखनेके कामके न रहेंगे वा पढ़ा पढ़ाया निष्फल हो जायगा। कृषि वाणिज्यादिके लिये दौड़ने धूपनेकी शक्ति न रहेगी अथवा सचित धनका उपयोग दुष्कर हो जायगा। भलाई बुराईका यथेष्ट निर्णय न कर सकेंगे या जिन सत्कार्योंके करनेको जी छटपटायेगा वे हाथों पावोंसे ही कठिन हो जायँगे। क्योंकि जिस अङ्ग या पदार्थसे अत्यधिक काम लिया जाता है वा नहीं लिया जाता वह सामर्थ्यहीन हो जाता है और आवश्यकताके समय काम नहीं दे सकता, अत किसीकी दशा एक सी नहीं रहती। अतएव समय समयपर सभी कुछ करनेकी आवश्यकता पड़ती है तथा उसकी पूर्तिके उपयुक्त शक्तिके अभावसे यदि वह न हो सका तो बहुत कालतक क्लेश वा हानि अथवा अपकीर्ति सहनी पड़ती है। जो लोग सम्पत्तिकी दशामें धनका भोग या दान अनियमित रूपसे करते हैं उन्हें जब उदारता प्रदर्शनका अवसर पड़ता है,

उचित व्यय करनेके योग्य रुपया नहीं मिलता अथवा लोग खाने पहिनने देने दिलाने आदिमें कजूसी करते हैं। उनका ऐसी आवश्यकताके आ पडनेपर वैसे पैसेपर जी निकलता है। इन दोनों प्रकारके पुरुष ऐसी अवस्थामें जो कुछ करते हैं सन्तुष्ट भावसे नही करते। अत बुद्धिमानका कर्तव्य यही है कि जब जैसी ही आ पडे तब वैसे बन जानेके लिये सन्नद्ध रहे। और यह तभी हो सकता है जब मिताचरणके द्वारा शरीर एव अधिकृत वस्तुमात्रको रक्षित अथच कार्योपयुक्त रखा जाय। यद्यपि समय विशेपकी उपस्थितिमें जी खोलकर अपनी शक्तिसे कही अधिक साहस, धैर्य्य, उद्योग, उदारतादिका प्रदर्शन ही असाधारण पुरुषोंका लक्षण है। इतिहासमें वही लोग गौरवास्पद होते हैं जो काम पडनेपर अपने धर्म अथवा प्राणतकका मोह न करके कर्त्तव्यपालनका उदाहरण दिखा देते हैं। किन्तु ऐसा अवसर नित्य नही पडा करता। जीवनभरमें दोही एक बार वा, बहुत हुआ तो दस पाच बेर चित्त बाहर काम करनेका समय आता है और उसीमें दृढ रहना जन्मधारणकी सार्थकताका सम्पादन करना है। और ऐसे अवसरपर उचित आचरण वे ही दिखला सकते हैं जिनकी आन्तरिक और बाह्य सभी प्रकारकी पूजी सर्वथा सुस्थिर हो और शनै शनै बढती रहती हो। यह योग्यता जिनमें न हो वह साधारण जनसमुदायमें भी गणनीय नहीं है। तस्मात् इसकी प्राप्तिके लिये पाठकगणको चाहिये कि शरीरके सभी अवयवों और मनकी सभी शक्तियोंसे काम लेते रहा करें पर उतनाही जितनेमें अधिक थकावट न हो। अन्न वस्त्रादिमें व्यय भी इतना ही किया करें जितना सामर्थ्यके अन्तर्गत हो। दूसरोंके साथ व्यवहार वर्त्ताव भी इतना ही रखा करें जितना सर्वदा निबह सके। अपनी वाणी और वेष भी ऐसा ही रखा करें जैसा कुलकी मर्यादाके विरुद्ध और लोकसमुदायको अप्रिय न हो। बस ऐसा ध्यान

बना रखने और अभ्यास करते रहनेसे मिताचारी और सञ्जीवनाधिकारी होनेमें कोई संशय न रहेगा और आवश्यकताके समय तदनुकूल कार्यों की पूर्णकारिणी सामग्रीका अभाव न रहेगा।

—प्रतापनारायण मिश्र

१८ पोशाक

आरोग्य जैसे आहारपर निर्भर है वैसेही किसी हदतक पोशाकपर भी। गोरी लेडियां मनमानी शोभाके लिये ऐसी पोशाक पहनती हैं जिससे कमर पतली और पैर छोटे रहें। इसमे वे अनेक प्रकारकी बीमारियां भोगा करती हैं। चीनमें औरतोंके पैर हमारे यहाके बच्चोंके पैरसे भी छोटे कर दिये जाते हैं। इससे वहाकी औरतोंकी तन्दुरुस्तीमें बडा धक्का लगता है। इन दोनों बातोंसे पाठक समझ लेंगे कि आरोग्यका सम्बन्ध कुछ अशमें पोशाकसे अवश्य है। प्राय पोशाकका पसन्द करना हमारे हाथ नहीं रहता। हमें अपने बडे बूढोंकी पोशाक पहननी पडती है और आजकलकी दशाके अनुसार वैसा करना आवश्यक जान पडता है। पोशाकका मुख्य उद्देश्य भुलाकर लोग अब उसे अपने धर्म, देश और जातिकी सूचक मानने लगे हैं। इसके सिवा मजूर धनी और बाबू लोगोंकी पोशाक भिन्न होती है। इस दशामें आरोग्यकी दृष्टिसे पोशाकका विचार करना बहुत ही कठिन काम है, फिर भी विचार करनेसे कुछ लाभ ही होगा।

पोशाक शब्दमें जूते और जेवर इत्यादि भी शामिल समझने चाहिये।

पोशाकका मुख्य उद्देश्य क्या है? मनुष्य अपनी प्राकृतिक स्थितिमें कपडा नहीं पहनता था, स्त्री पुरुष केवल अपना गुप्त भाग ढक लेते बाकी शरीरका सब भाग खुला रखते थे। इससे उनका चमडा कठिन और मजबूत हो जाता था। ऐसे मनुष्य हवा

और पानीको खूब सह सकते थे, उन्हें यकायक सर्दी इत्यादि नहीं होती थी। हवाके प्रकरणमें विचार कर चुके हैं कि हम केवल नथुनोंसेही हवा नहीं लेते बल्कि चमडेपरके अनेक छेदों-द्वारा भी लेते हैं। कपडे पहनकर हम चमडेके इस बडे कामको रोकते हैं। ठढे देशके मनुष्य ज्यों ज्यों आलसी बनते गये त्यों त्यों उन्हें शरीर ढकनेकी जरूरत बढती गयी। वे ठढ न सह सके और पोशाकका रिवाज चल पडा। अन्तमें लोगोंने पोशाकको मनुष्यका आभूषणरूप मान लिया। फिर उससे देश जाति आदिकी पहचान होने लगी।

असलमें प्रकृतिने मनुष्यके शरीरपर चमडेकी बहुत ही योग्य पोशाक दी है। यह मानना कि शरीर नग्न दशामें बुरा मालूम होता है बिलकुल भ्रम है। अच्छेसे अच्छे चित्र तो नग्न दशामें ही दिखाई पडते हैं। पोशाकसे शरीरके साधारण अगोंको ढककर मानों हम दिखलाते हैं कि इनके दोष छिपानेके लिये हम यह कर रहे हैं, मानों हम प्रकृतिके कामोंमें दोष निकाल रहे हैं। हमारे पास ज्यों ज्यों पैसा अधिक होता जाता है त्यों त्यों हम अपनी टीमटाम बढाते जाते हैं। हर तरहसे आदमी अपनी सुन्दरता बढाता है। शीशेमें मुँह देख देख अकडता है वाह! मैं कैसा खूबसूरत हू। यदि ऐसी आदतोंसे हम सबकी दृष्टिमें फर्क न पडा हो तो हम तुरन्त समझ सकते हैं कि मनुष्यका अच्छेसे अच्छा रूप उसकी नग्न दशामें दिखाई देता है और उसीमें उसका आरोग्य भी है। एक पोशाक पहनी कि रूपमें उतनाही फर्क डाला। शायद केवल कपडोंसे सन्तोष न होनेपर स्त्री पुरुषोंने गहने पहनने शुरू कर दिये। बहुतेरे मर्द भी पैरमें कडे पहनते हैं, कानोंमें बालिया लटकाते हैं और हाथमें अँगूठी पहनते हैं। ये सब गन्दगीके घर हैं। यह समझना बहुत ही कठिन है कि इनके पहननेमें कौन सी शोभा फटी पडती है। इस विषयमें औरतोंने तो हद ही कर दी है।

ये पैरोंमें ऐसे भारी भारी कड़े, पाजेब पहनती हैं कि जिनसे पैर उठाना भी कठिन हो जाता है। बालियोंसे कान गुथे रहते हैं, नाकमें भारी नथ लटकी रहती है, और हाथोंमें तो जितने गहने हों उतने ही थोड़े। इस पहनावसे शरीरपर बड़ा मैल जमा हो जाता है। कान और नाकमें तो मैलकी हद ही नहीं रहती। हम इस मैली दशाको श्रृङ्गार समझकर खूब पैसे फूकते हैं। चोरोंके भयसे जान जोखिममें डालते हुए नहीं डरते। किसीने बहुत ठीक कहा है कि अभिमानसे पैदा हुई मूर्खताको हम तकलीफें झेलते हुए जो नजराना देते हैं वह बहुतही अधिक होता है। ऐसे उदाहरण बहुत लोगोंने अपनी आखों देखे होंगे कि कानमें फोड़ा होनेपर भी औरतोंने अपनी बालिया नहीं उतारने दी। हाथमें फोड़ा होकर हाथ पक गया फिर भी पहुँची कैसे उतरे? अँगुली पककर सूज आयी तब भी हीरा जड़ी अँगूठी मर्द और औरतें अपनी अँगुलीसे उतार डालना रूपमें फर्क आ जानेका कारण समझती हैं!

पोशाकके सम्बन्धमें अधिक सुधार मुश्किल है। फिर भी हम गहनों और अनावश्यक कपड़ोंको एकदम बिदा कर सकते हैं—रीति रवाजके लिये कुछ कपड़ोंको रखकर बाकीको अलग कर सकते हैं। पोशाक मनुष्यका आभूषण है, यह वहम जिन लोगोंके मनसे दूर हो गया है वे बहुत कुछ सुधार करके अपना आरोग्य ठीक रख सकते हैं।

आजकल यह हवा बह रही है कि युरोपकी पोशाक हमारे लिये बहुत अच्छी है, इस पोशाकसे हमारा रोब बढ़ जाता है और लोग हमारा सम्मान करने लगते हैं। इन सब बातोंपर विचार करनेका यह स्थल नहीं। यहां तो इतना ही कहना आवश्यक है कि युरोपकी पोशाक वहाके ठंढे भागोंके लिये भले ही योग्य हो, किन्तु वह भारतवर्षके लिये उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकती। हिन्दुस्तानके लिये चाहे वह-हिन्दू हो या,

मुसलमान हिन्दुस्तानहीकी पोशाक समुचित हो सकती है। हमारे कपडे खुले और ढीले ढाले होते हैं, इसलिये उनमें हवा आ जा सकती है, यही नहीं, अधिकतर सुफेद होते हैं जिससे सूर्यकी किरणें बिखर जाती हैं। काले रंगके कपडेमें सूर्यकी गर्मी अधिक मालूम होती है, इसका कारण यह है कि उसमें लगकर गरमीकी किरणें बिखरती नहीं बल्कि समा जाती हैं।

हम अपना सिर प्राय ढके रखते हैं और बाहर जाते समय तो अवश्य ही ढक लिया करते हैं। पगडी तो हमारी पहचान हो गयी है। फिर भी जहातक सुभीता हो, सिर खुले रखनेमें ही फायदा है। बाल बढाना और पटिया पाडना जगलीपनकी निशानी है। बढे हुए बालोंमें धूल मैल और लीखें पड जाती हैं। कहीं सिरमें फोडा हुआ तो उसका इलाज करना भी कठिन हो जाता है। सिरपर साहब लोगोंकेसे बाल बढाना पगडी बाधनेवालोंके लिये बेवकूफी है।

पैरोंके द्वारा भी हम बहुतेरे लोगोंके पजेमें फस जाते हैं। बूट इत्यादि पहननेवालोंके पैर नाजुक हो जाते हैं। उनसे पसीना निकलने लगता है और वह बहुत ही बदबू करता है। जिस मनुष्यको बासकी परख है वह मोजे और बूट पहननेवाले मनुष्यके पास बदबूके मारे उस समय खडा नहीं रह सकता जब वह अपने मोजे और बूट उतार रहा हो। हम जूतोंको पाद-त्राण या कटकारि कहते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हमें जब काटोंमें, ठढकमें अथवा धूपमें चलना पडे तभी जूते पहनने चाहिये और सो भी इस प्रकारके जिनसे केवल तलुवे ढकें, सारा पैर न ढक जाय। इस अभिप्रायको सेंडल जूते भली-भाति पूरा कर सकते हैं। जिनका सिर दुखता हो, जिनका शरीर कमजोर हो, जिनके पैरोंमें दर्द रहता हो और जिन्हें जोडे पहननेकी आदत हो, उनके लिये तो हमारी यही सलाह है कि वे नगे पैर चलनेका प्रयोग कर देखें इससे उन्हें

मालूम होगा कि पैर खुले रखने, जमीनपर नगे पैर चलने और उन्हें पसीना-रहित रखनेसे हम तत्काल कितना लाभ उठा सकते हैं।

—महात्मा गाधी

१६ रबड़

पाठशालाके छोटे छोटे लडकोंसे लेकर बूढ़ेतक रबडके नामसे अवश्य परिचित होंगे। पेंसिल या स्याहीसे लिखे हुएको मिटाने, बाइसिकिल, मोटरकार, घोडा गाडीके पहियोंमें लगाने, गेदको उछलनेयोग्य बनाने, बरसाती पानीसे बचने, मोजोंको कसा रखनेके लिये रबडका प्रयोग किसी न किसी रूपमें बहुतसे लोग करने लग गये हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें रबडका महत्व बढा हुआ है। इसलिये रबडका जीवनचरित प्रत्येक व्यक्तिको जानना उचित और आवश्यक समझना चाहिये।

रबड कहा मिलता है

रबड कई प्रकारके वृक्षोंके दूधसे बनाया जाता है। यह दूध वायुमें रहनेसे लचीला हो जाता है। इसके वृक्ष भारतवर्ष अफ्रीका और दक्षिणी अमेरिकामें पाये जाते हैं। कोई कोई वृक्ष तीससे पचास फुटतक ऊचे होते हैं और कोइ लताकी जातिके होते हैं। लता जातिके अफ्रीकाके कुछ भागोंमें पाये जाते हैं। आसाम, जावा, पेनाग और रगूनमें जो रबड बनता है वह भारतीय रबड-वृक्षसे निकलता है। दक्षिणी अमेरिकामें रबड ऐसे पौधोंसे निकलता है जो रेंडकी जातिके होते हैं।

कैसे निकाला जाता है

सूखी ऋतुके आरम्भमें मनुष्य उन जगलोंमें जाते हैं जिनमें रबडके पेड खडे होते हैं और जिन वृक्षोंका दूध रबड देनेके योग्य

समझा जाता है उनके चारों ओर मिट्टीके पक्के प्याले रख देते हैं। यह प्याले एक ओर चपटे होते हैं। ऐसे १५ प्यालोंका रस मिलाकर एक बोतलके बराबर होता है। मनुष्य दाहिने हाथमें कुल्हाडी लेकर जितनी ऊंचाईतक पहुँच सकता है गहरा और ऊपरकी ओर ढालू होता हुआ एक खत तनेमें लगाता है इससे छाल कट जाती है और लकडीमें भी एक इंचके लगभग गहरा खत हो जाता है। इसकी चौडाई भी एक इंच होती है।

खत लग चुकनेपर वह एक प्याला लेता है और गीली मिट्टी लगाकर उसको तनेमें खतके नीचे चिपका देता है। इसी प्यालेमें स्वच्छ दूधकी नाईं रस भरने लगता है। चार पांच इंच दूरीपर और उसी ऊंचाईपर दूसरा खत लगाया जाता है और उसके नीचे प्याला चिपका दिया जाता है। इसी प्रकार उसी ऊंचाई-पर प्यालोंकी एक पंक्ति लगा दी जाती है। यह ऊंचाई पृथ्वीसे ६ फुटके लगभग होती है। एक पेडसे दूसरे पेड और दूसरेसे तीसरेमें इसी प्रकार खत लगाकर प्याले चिपका दिये जाते हैं। इन खतोंसे तीन चारघंटेतक दूध बहा करता है। यह निश्चित नहीं रहता कि किस खतसे कितना दूध निकलेगा। हां, यदि पेड बडा हो और पहले बहुत खत न लगाये गये हों तो बहुतसे प्याले आधे भर जाते हैं और कुछ पूरे भर जाते हैं।

दूसरे दिन फिर खत किये जाते हैं। पहले खतोंकी पांतिसे दूसरे दिनके खतोंकी पांति सात आठ इंच नीचे होती है। इस प्रकार प्रतिदिन नये खतोंकी पांति सात आठ इंच नीचे होते होते पृथ्वीतक पहुँच जाती है तब खतका लगाना बन्द कर देते हैं। जो रस इन प्यालोंमें इकट्ठा होता है वह एक बडे बर्तनमें उडेल लिया जाता है जिसको बटोरनेवाला अपने हाथमें लिये रहता है।

दूधको बाहर कैसे भेजते हैं

दूध एकत्र करके ढाल देते हैं साचा लकडीकी बडी करछीकी तरह होता है। यह चपटा होता है जिसमें रबड तहकी तह एक पर एक जमाया जाता है। एक तंग मुँहवाले बर्तनमें जिसका पेंदा खुला रहता है लकडीकी आंचसे बनाते हैं और साचेपर चिकनी मिट्टी रगड देते हैं जिससे दूध चिपकने नहीं पाता। तब उसको धुएमें गरम करते हैं। कर्मचारी एक हाथमें साचेको थामता है और दूसरे हाथसे दोचार तीन प्यालोंका दूध उसपर उडेल देता है। तुरन्त ही वह साँचेको आगके बर्तनके मुँहपर रखकर शीघ्रता के साथ घुमाता है जिसमें धुआ चारों ओर बराबर लगे। साचेके दूसरे ओर भी ऐसा ही किया जाता है। धुआ लगनेपर दूध कुछ पीला और ठोस होता है। जब एक तहपर दूसरी तह और इसी तरह कई जमा चुकते हैं तब तक तहनेपर ठोस होनेके लिये रख देते हैं, ठोस होनेपर साचेके किनारोंपर तराश देते हैं और साचेको निकाल लेते हैं। इस प्रकार चार पाच इंच मोटी तह हो जाती है। अच्छी तरह सूखनेपर यह बाजार भेज दिया जाता है। ऐसी दशामें सब तहें साफ साफ दिखाई पडती हैं। साचेको खुरचनेसे जो कुछ मिलता है और प्यालोंमें जो कुछ जमा रहता है वह भी इकट्ठा करके बाजार भेज दिया जाता है। इसको नीची श्रेणीका रबड कहते हैं।

शुद्ध कैसे किया जाता है।

जंगलोंमें जमाकर जो रबड भेजा जाता है उसमें मिट्टी, बालू पत्तियां इत्यादि मिली रहती हैं, इसलिये बिना शुद्ध किये यह कामका नहीं होता। इसलिये कई घटेतक इसको पानीमें उबालते हैं। आगमें इसको नहीं गलाते क्योंकि यह आग पकड लेता है। पानीमें उबालनेसे रबड नरम पड जाता है। जो भाग नीचे बैठ जाता है उसको अलग कर देते हैं क्योंकि इसमें बालू

मिट्टी इत्यादि मिली होती है और जो उतराया रहता है उसमें पत्ती और घर मिले रहते हैं। तब इसको मशीनद्वारा धोते हैं। इसके पश्चात् रबडको ऐसे कमरोंमें सुखाते हैं जिनको भापके नलोंद्वारा गरम रखा जाता है। सूर्यकी किरणें नहीं पडने पातीं। इन किरणोंसे बचानेके लिये खिडकियां पीली वा सफेद रँग दी जाती हैं। सूखनेपर रबडको बटोरकर रख देते हैं। धुले हुए रबडको मसलनेवाली मशीनमें रखा जाता है। बेलनोंको घुमानेसे रबड उनके बीचमें दबकर छोटे छोटे छिद्रोंमेंसे होकर निकलता है। मसल चुकनेपर रबड उस मशीनमें रखा जाता है जहां सांचेमें थक्का बँध जाता है। इन थक्कोंको खूब दबाकर ऐसी जगहमें रखते हैं जहां बर्फसे भी ज्यादा ठंढक रखी जाती है। इससे थक्के कडे पड जाते हैं और तब सांचे निकाल दिये जाते हैं। यह थक्के बर्फमेंसे तभी निकाले जाते हैं जब इनका काम पडता है। कुछ थक्के वर्गाकार और कुछ बेलनाकार होते हैं।

जब रबडकी चद्दरोंकी आवश्यकता होती है। तब यह थक्के भिन्न भिन्न मोटाईके काटे जाते हैं। काटते समय रबडको ठंढे पानीसे लगातार भिगोते रहते हैं। काट चुकनेपर चद्दरोंको सूखनेके लिये लटका देते हैं।

इन्हीं चद्दरोंसे रबडके फीते काटे जाते हैं। यह फीते कुछ देरतक तानकर फैलाये जाते हैं और इस समय इनको ठंढा भी रखते हैं। गरम पानीमें रखनेसे यह अपने आकारके दृढ हो जाते हैं। यह रीति कई बार करनेसे फीतेकी दृढता पांच वा छ गुना बढायी जा सकती है।

यदि फीते बहुत पतले हों तो उनको रबडका सूत कहते हैं जो लचीले कपडोंमें लगता है।

रबड़से कौन कौन काम निकलते हैं।

पेन्सिलके लिखे हुए अक्षर रबडसे मिट जाते हैं। इससे

इसका नाम अँगरेजीमें रबर पडा जिसका अर्थ है घिसनेवाला। यह कहा जा चुका है कि रूई ऊनी और रेशमी मोजों और दस्तानोंको लचीला करनेके लिये इसके डोरे प्रयोग किये जाते हैं। रबडमें गन्धक मिला दिया जाय तो नाम गन्धकी रबड पड जाता है जिससे स्याहीके अक्षरोंको मिटानेवाली लचीली पट्टिया, किवाडोंकी कमानी, गैस ले जानेवाली नलिया, गेंद इत्यादि बनते हैं। अलकतरेसे मिलाकर कघे, घडीकी जजीर, कलम और बहुतसी चीजें बनती हैं। जिससे यह सब चीजें बनती हैं उसे वल्कनाइट कहते हैं जो आबनूसकी लकडीके रगका होता है परन्तु वास्तवमें वह रबड और अलकतरेके योगसे बनता है।

रबडको घोलकर लाख मिला देनेसे गोंदकी नाई जोडनेका भी काम लिया जाता है जिसको नाव बनानेवाले बहुधा प्रयोग करते हैं। नफ्थामें घोलकर ऊनी कपडोंपर फैला देनेसे ऊनी कपडोंमें पानी नहीं सोखता। ऐसे ही कपडे बरसाती कपडे कहे जाते हैं क्योंकि बरसातका पानी ऊपर ही ऊपर बह जाता है। विद्युत समाचार पहुचानेवाले तार भी इसमें लपेटे जाते हैं जिससे बिजली इधर उधर नहीं बहने पाती।

रबडके रासायनिक गुण

यह गरम या ठढे पानीमें नहीं घुलता परन्तु ताडपीन और नफ्थामें घुल जाता है। यह आग पकड लेता है जिसकी लौसे धुआ बहुत होता है और गन्ध बडी तीव्र होती है।

भौतिक गुण

इसका लचीलापन हल्की गरमी पहुचानेसे बढ जाता है। गरम गरम यह ताना जाय और तनावके रहते हुए ठंढा किया

जाय तो लचीलापन चला जाता है और रबड बना ही रह जाता है, गरम करनेसे फिर लचने लगता है। इसी गुणके कारण यह लचीले कपडों, गेंद और गैसकी नलियोंके बनानेमें काम आता है।

गरम पानीमें या आगके सामने रखनेसे यह मुलायम पड जाता है। बहुत तेज आंचपर पिघलने लगता है। ताजे कटे हुए किनारे तनिक सी गरमी और दबावसे जुड जाते हैं।

—महावीर प्रसाद

२० अभ्रक और उसका व्यापार

यह बडे सन्तोषका विषय है कि इस बीसवीं शताब्दीमें भी भारतवर्ष अभ्रकके व्यापारमें आज ससारभरके सब देशोंसे बढा है, और उसके लाभका अधिकाश दिनोंदिन इसीके हिस्से आता जाता है।

इसका विशेष महत्व हमको उस समय मालूम होता है जब हम जानते हैं कि इस औद्योगिक क्षेत्रमें कैनाडा और सयुक्त देश अमेरिकावाले हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं और उनके उन्नत वैज्ञानिक और शिल्पीय ज्ञानके सामने हमने अपना पांव जमा रखा है। साथ ही जब हम यह स्मरण करते हैं कि वर्तमान समयमें अभ्रककी उपयोगिता बढ रही है, नित नयी नयी सैकडों प्रकारकी चीजें इससे बनती हैं और ऐसी अनेक जगहोंपर इसकी आवश्यकता पडती है जिसमें आगे कमी होनेकी कोइ सम्भावना नहीं है, यहा-तक कि युरोपीय युद्धमें भी इसलिये कि शत्रु अभ्रकसे लाभ न उठाने पावें भारत सरकारका विशेष विज्ञप्तिद्वारा अभ्रककी रफ्तनी—बाहर जाना—रोकना सिद्ध करता है कि यह हमारे धनप्राप्तिका बडे महत्वका सूत्र है और इससे आगे आनेवाले औद्योगिक प्रयासमें हमको अच्छा सहारा मिलनेवाला है।

इसीलिये अभ्रककी चर्चा इस स्थानमें अनुचित नहीं जान पड़ती।

उत्पत्ति

प्राय सभी तरहके आग्नेय चट्टानोंमें अभ्रक मिलता है क्योंकि अभ्रक उन चट्टानोंका आदिम और अत्यावश्यक अंग है। कई प्रकारके शिलकेत नामक खनिजोंमें जो परिवर्त्तन पृथ्वीकी धधकती ज्वालासे किसी समय हुए थे, उन परिवर्त्तनोंका अन्तिम रूप अभ्रक है। साथ ही वायुके प्रभावसे शिल्केतों एवं अभ्रकके भग्न तथा भूगर्भके निरन्तर होनेवाली पारिवर्त्तिक क्रियाओंसे नया अभ्रक बनता ही रहता है। बहकर एकत्र होकर जमे हुए चट्टानोंके नीचेवाले अंशमें भी पाया जाता है।

विदेशोंमें स्वीडन, नारवे, सेवेरिया, पेरू तथा चीनमें भी अभ्रक मिलता है।

भारतीय खानियोंसे मस्कोवैट जाति निकलती है और इसके दोही प्रधान केन्द्र हैं। पहला बिहार उडीसा प्रान्तका हजारीबाग जिला और दूसरा मद्रासहातेका नेलोर जिला। बिहारका साधारणत कुछ गुलाबी लिये होता है और नेलोरवालेमें थोडा हरापन होता है। नेलोरके इनिफर्नो खानिसे निकली हुई "चादरें" दस या पन्द्रह फीट चौडी होती हैं और कभी कभी ३०+२४ इंचके चौखूटे टुकडे बिना खराश या निशानके भी पाये गये हैं। इसी लिये नेलोरवाला अभ्रक बिहारवालेसे बढिया समझा जाता है।

उपयोग

अभ्रकमें कई महत्त्वके गुण हैं। यह पारदर्शक है अर्थात् इसके आरपार दीखता है। गरमी और आंचको सहता है। सरदी गर्मी एकाएकी घट बढ जानेसे जैसे काच चटख या टूट जाता है यह नहीं टूटता या चटखता। यह बातें देख, अब इसे लोग

काचकी जगह काममें लाते हैं। इसका व्यवहार खिडकी, अगीठी, लालटेन, सन्दूकका मुँह, लम्पकी चिमनी और गैसबत्ती इत्यादि कई चीजोंमें करने लगे हैं। किसी समय रूसी युद्धके जहाजोंमें अभ्रककी झिलमिली लगी होती थी। इसीलिये उसे मसकोवी शीशा कहते थे। यह सजावटके काममें भी बहुत आता है। भारतमें तो बहुत पुराने समयसे झाड, फानूस, आतिशबाजी, कुमकुमे, खिलौने और कपडेकी छपाईमें इससे काम लिया जाता था। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय ओषधियोंमें भी इसका प्रयोग होता आया है। दीवालपर लगनेवाले फूलवर कागजकी तैयारीमें, थियेटरके परदेमें और कई प्रकारके रग और कागजके बनानेमें अभ्रकका बारीक चूर्ण डाला जाता है।

इसका चूर्ण मशीनके पुर्जो में जहा तेल नही दिया जा सकता चिकनई लानेके लिये लगाया जाता है। कई कृमिनाशक ओषधिया तथा नैट्रोग्लिसरीन नामके विस्फोटकको यह सोख लेता है अत इस काममें उपयोगी है। इसकी साफ चमकीली सुथरी चादरोंपर चित्रकारीका काम होता है। विशेषत हमारे देशकी यह पुरानी कला है। अभ्रक खडोंपर लालटेनद्वारा दिखलाने वाले चित्र बनते हैं, छायाचित्र या फोटोग्राफीकी झिल्लिया या परदोंके लिये चौखट भी बनता है। प्राचीन ऐतिहासिक चित्र और पुस्तककी प्रतिलिपियोंको सुरक्षित रखनेके लिये इसके तह दिये जाते हैं। अजायबखानोंमें छोटे जीवोंको स्पिरिटमें डालकर सहेजनेके पहले अबरखहीपर उन्हें मढते हैं। पर आजकल इसका सबसे अधिक व्यवहार बिजलीके कल कारखानोंमें है।

बिजलीके दौडने और फैलनेमें अभ्रक रुकावट डालता है इसीलिये यह अवरोधक या इनसुलेटरका काम देता है। इसके चिकने लचीले परदे डैनमोके चुम्बकत्व रक्षक बनते हैं। और भी

बाजेमें दिये जाते हैं। अभ्रकमें पोटासियम होनेके कारण इसका खाद भी बनता है। निदान, अभ्रकके अनेकानेक उपयोग हैं जिनका विस्तार लेखकी सीमाको अतिक्रम कर जायगा।

खुदाई तय्यारी और मोल

और खानोंकी तरह अभ्रककी खानोंमें भी यहा अँगरेजोंने ही अपना इजारा कर लिया था, पर उनसे यह काम बहुत दिनतक नहीं चल सका। वे हारकर बैठ गये। यहातक कि दक्खिनकी जितनी बडी कम्पनिया हैं वे कुछ दिन पहले तो विदेशियोंके हाथमें रहीं पर जब उन्हें घाटेपर घाटा होने लगा, वे छोडकर चले गये और कम्पनिया हमारे देशी भाइयोंके हाथ आयीं। वे तबसे बडी सफलतापूर्वक चलने लगीं। इससे हमारे दक्खिनी भाइयोंके धैर्य्य व्यवहारकुशलता और औद्योगिक साहसका प्रमाण मिलता है। पर यही बातें उत्तर भारतके कारखानोंके विषयमें नहीं कही जा सकतीं। यहाकी खुदाईका ढग बिल्कुल पुराना दकयानूसी चला आ रहा है, जिससे मालका एक बडा हिस्सा बरबाद जाता है। यहा खान बहुत करके खुली और उनकी सुरगें बेतरह टेढी और तिरछी होती हैं। इससे पहिले तो बहुतसा अभ्रक खराब जाता है और दूसरे मालके साथ मिली हुई मिट्टी रेत या अन्य द्रव्यको बाहर खींचकर लानेका परिश्रम व्यर्थ होता है। "बेलुम" के आस पास जो खानें मैंने देखी हैं, दूरतक फैली हुई पहाड़ी कतारोंके किनारे हैं जिनके ऊपर साल और महुएकी घनी झाडिया हैं। उन खानोंमें काम करनेवाले भी दरिद्र रजवर, मुसहर और अन्य जगली जातिया होती हैं। ये मजदूर अपने भाई स्त्री और बच्चोंको एक मण्डली बनाकर खानके भीतर काम करते हैं।

बहुधा अभ्रक अलग अलग धारी धारीमें पाया जाता है जिसे वहाके लोग "कजरा" कहते हैं। इसलिये अधिक लाभ

कांचकी जगह काममें लाते हैं। इसका व्यवहार खिडकी, अगीठी, लालटेन, तन्दूरका मुँह, लम्पकी चिमनी और गैसबत्ती इत्यादि कई चीजोंमें करने लगे हैं। किसी समय रूसी युद्धके जहाजोंमें अभ्रककी झिलमिली लगी होती थी। इसीलिये उसे मसकोवी शीशा कहते थे। यह सजावटके काममें भी बहुत आता है। भारतमें तो बहुत पुराने समयसे झाड, फानूस, आतिशबाजी, कुमकुमे, खिलौने और कपडेकी छपाईमें इससे काम लिया जाता था। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदीय ओषधियोंमें भी इसका प्रयोग होता आया है। दीवालपर लगनेवाले फुलवर कागजकी तैयारीमें, थियेटरके परदेमें और कई प्रकारके रग और कागजके बनानेमें अभ्रकका बारीक चूर्ण डाला जाता है।

इसका चूर्ण मशीनके पुर्जो में जहा तेल नही दिया जा सकता चिकनई लानेके लिये लगाया जाता है। कई कृमिनाशक ओषधिया तथा नैट्रोग्लिसरीन नामके विस्फोटकको यह सोख लेता है अत इस काममें उपयोगी है। इसकी साफ चमकीली सुथरी चादरोंपर चित्रकारीका काम होता है। विशेषत हमारे देशकी यह पुरानी कला है। अभ्रक खडोंपर लालटेनद्वारा दिखलाने वाले चित्र बनते हैं, छायाचित्र वा फोटोग्राफीकी झिल्लिया वा परदोंके लिये चौखट भी बनता है। प्राचीन ऐतिहासिक चित्र और पुस्तककी प्रतिलिपियोंको सुरक्षित रखनेके लिये इसके तह दिये जाते हैं। अजायबखानोंमें छोटे जीवोंको स्पिरिटमें डालकर सहेजनेके पहले अबरखहीपर उन्हें मढते हैं। पर आजकल इसका सबसे अधिक व्यवहार बिजलीके कल कार-खानोंमें है।

बिजलीके दौडने और फैलनेमें अभ्रक रुकावट डालता है इसीलिये यह अवरोधक वा इनसुलेटरका काम देता है। इसके चिकने लचीले परदे डैनमोके चुम्बकत्व रक्षक बनते हैं। और भी

बाजेमें दिये जाते हैं। अभ्रकमें पोटासियम होनेके कारण इसका खाद भी बनता है। निदान, अभ्रकके अनेकानेक उपयोग हैं जिनका विस्तार लेखकी सीमाको अतिक्रम कर जायगा।

खुदाई तय्यारी और मोल

और खानोंकी तरह अभ्रककी खानोंमें भी यहा अँगरेजोंने ही अपना इजारा कर लिया था, पर उनसे यह काम बहुत दिनतक नहीं चल सका। वे हारकर बैठ गये। यहातक कि दक्खिनकी जितनी बडी कम्पनिया हैं वे कुछ दिन पहले तो विदेशियोंके हाथमें रहीं पर जब उन्हें घाटेपर घाटा होने लगा, वे छोडकर चले गये और कम्पनिया हमारे देशी भाइयोंके हाथ आयीं। वे तबसे बडी सफलतापूर्वक चलने लगीं। इससे हमारे दक्खिनी भाइयोंके धैर्य्य व्यवहारकुशलता और औद्योगिक साहसका प्रमाण मिलता है। पर यही बातें उत्तर भारतके कारखानोंके विषयमें नहीं कही जा सकतीं। यहाकी खुदाईका ढग बिल्कुल पुराना दकयानूसी चला आ रहा है, जिससे मालका एक बडा हिस्सा बरबाद जाता है। यहा खान बहुत करके खुली और उनकी सुरगें बेतरह टेढी और तिरछी होती हैं। इससे पहिले तो बहुतसा अभ्रक खराब जाता है और दूसरे मालके साथ मिली हुई मिट्टी रेत या अन्य द्रव्यको बाहर खींचकर लानेका परिश्रम व्यर्थ होता है। "बेलुम" के आस पास जो खानें मैंने देखी हैं, दूरतक फैली हुई पहाडी कतारोंके किनारे हैं जिनके ऊपर साल और महुएकी घनी झाडिया हैं। उन खानोंमें काम करनेवाले भी दरिद्र रजवर, मुसहर और अन्य जगली जातिया होती हैं। ये मजदूर अपने भाई स्त्री और बच्चोंकी एक मण्डली बनाकर खानके भीतर काम करते हैं।

बहुधा अभ्रक अलग अलग धारी धारीमें पाया जाता है जिसे वहाके लोग "कजरा" कहते हैं। इसलिये अधिक लाभ

और सुभीता उस ढंगकी खुदाईमें होता है जो लोहे तांबे और अन्य धातुओंका खानमें देखा जाता है। अर्थात् जिसमें खडी सुरगें होती हैं कैंचिया काट होता है और जिसकी खुदाई एक-बारगी उसी तहमें बराबर होती है, जहातक अबरखकी धारीका एक सूत गया हो। उस दशामें यह ऊपर ही ऊपर निकाला जा सकता है और कूडा मिट्टी इत्यादि उन्ही गड्ढोंके भीतर भरनेमें काम आ सकता है।

तैयारीमें अभ्रककी गड्डिया जहासे फटी होती हैं वहींसे चीरी जाती हैं। तब जिस नापकी चादरोंकी जरूरत हुई उसमेंसे एक बडीसी तेज छुरीसे जिसे "हँसुला" कहते हैं तराश ली जाती है और जिसमें दाग वा निशान होता है वह अलग कर दी जाती हैं। फिर अच्छी चादरोंमें भी सफाई सफाई आदि के विचारसे बढिया घटिया माल अलग कर दिया जाता है। बचे हुए टुकडे और बुरादेसे भी विलायतमें एक प्रकारका मैक-नाट द्रव्य बनता है।

मालके बढिया घटिया होनेपर दाममे बहुत अन्तर पड जाता है। सब प्रकारकी मिली हुई चादरोंका औसत मोल युद्धके पहले ४) रुपया सेर उतरता था लेकिन बडी नापकी चादरोंकी कीमत कभी कभी ६०) रुपया सेरतक पहुँच जाती थी। युरोपीय युद्धसे दाम गिर गया था और कारखानोंको बहुत घाटा हो रहा था तब भी उन्होंने काम नहीं रोका था और खुदाईमें सुदिनकी आशापर खर्च लगाते जाते थे।

—गोपाल नारायण सेनसिंह

२१ कबीर साहब

संयुक्त प्रान्तमें शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जो कबीर साहबको न जानता होगा। कबीर साहबके भजन, मन्दिरोंमें और सत्सगके अवसरोंपर गाये जाते हैं। उनकी साखिया प्राय कहावतोंका काम दिया करती हैं।

कबीर साहब एक पथके प्रवर्त्तक थे, जिसे कबीरपथ कहते हैं। कबीरपथियोंमें निम्न श्रेणीके लोग अधिकाश पाये जाते हैं। उनमेंसे कुछ तो साधू हैं जो गावोंमें कुटी बनाकर रहते हैं और कुछ गृहस्थ हैं। कबीरपथी साधू सिरपर नोकदार पीले रगकी टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे? कहा और किस समयमे उत्पन्न हुए? उनका असली नाम क्या था? बचपनमें वे कौन धर्माव-लम्बी थे? उनका विवाह हुआ था या नहीं? और वे कितने समयतक जीवित रहे? इन बातोंमें बडा मतभेद है। कबीर साहबकी जीवनी लिखनेवाले भिन्न भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमें सत्यका अश कितना है, इसका पता लगाना सहज नही है। "कबीर कसौटी"में कबीर साहबका जन्म सवत १४५५ वि०में और मरण १५७५ वि०में होना लिखा है। कबीरपथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्षकी बतलाते हैं। उनके कथनानुसार कबीर साहबका जन्म १२०५ वि०मे और मरण १५०५ वि०में हुआ है। इनमेंसे किसकी बात सत्य है इसका निर्णय करना बडी खोजका काम है। कबीरपथके विद्वानोंकी रायमें कबीर साहबका जन्म सवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहबने अपनेको जुलाहा लिखा है। एक जगह वे कहते हैं—

तू ब्राह्मण मैं काशीका जुलहा बूझहु मोर गियाना
(आदि

इससे अब इस बातमें तो कुछ सदेह रह ही नहीं जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वे जन्मके जुलाहे नहीं थे, यह कहावतोंसे मालूम होता है।

कहा जाता है कि सवत् १४१५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमाको एक ब्राह्मणकी विधवा कन्याके पेटसे एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जावश उसने बालकको काशीके लहर तालाबके किनारे फेंक दिया। सयोगसे नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमाके साथ उसी राहसे आ रहा था। उसने उस अनाथ बच्चेको घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नामसे विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपनसे ही बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुधबुध हो गयी तब वे तिलक लगाकर राम राम करते थे। एक जुलाहेके घरमें रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असंभव सा प्रतीत होता है। परन्तु सगतिका प्रभाव बड़ा विचित्र होता है। वह असभवको भी सभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानन्दके शिष्य थे। स्वामी रामानन्द शेष रात्रिमें गगास्नानके लिये मणिकर्णिका घाटपर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाटकी सीढियोंपर जाकर सो रहे। अँधेरेमें स्वामीजीका पैर उनके ऊपर पड गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजीने कहा—"राम राम कह, राम राम कह!" कबीर साहबने उसीको गुरुमत्र मान लिया। उसी दिनसे उन्होंने काशीमें अपनेको स्वामी रामानन्दका शिष्य प्रसिद्ध किया। यवनके घरमें पले होनेपर भी कबीर साहबकी प्रवृत्ति हिन्दूधर्मकी तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवनका निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वे स्वय स्वीकार करते हैं—

हम घर सूत तनहिं नित ताना। हम घर सूत तनहिं नित ताना।

कबीर साहबने विवाह किया था या नहीं, इस विषयमें भी

बड़ा मतभेद है। कबीरपथके विद्वान् कहते हैं कि लोई नामकी स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होंने उससे विवाह नहीं किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषयमें भी विचित्र बातें सुनी जाती हैं। "बूडा वस कबीरका उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत सा प्रसिद्ध हो रहा है इससे पता चलता है कि कबीरने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीरका पुत्र था। कमाल भी कविता करता था। परन्तु उन्होंने कबीर साहबके सिद्धान्तोंके खडन करनेहीमें अपनी सारी उम्र विता दी। इसीसे "बूडा वस कबीरका उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील और बड़े सदाचारी थे। एक दिनकी बात है कि उनके यहा बीस पचीस भूखे फकीर आये। कबीर साहबके पास उस दिन कुछ खानेको नहीं था इसलिये वे बहुत घबराये। लोईने कहा—यदि आज्ञा हो तो मैं एक साहूकारके बेटेसे कुछ रुपया लाऊ क्योंकि वह मुझपर मोहित है, मैं पहुची नहीं कि उसने रुपये दिये नहीं। कबीर साहबने कहा—जाओ ले आओ। लोई साहूकारके बेटेके पास गयी और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकारके बेटेने तत्काल धन दे दिया। जब अन्तमें उसने अपना मनोरथ प्रकट किया तब लोईने रातमें मिलनेका वादा किया।

दिन खाने खिलानेमें बीत गया। रात हुई, चारों ओर अँधेरा छा गया, सयोगसे उस दिन पानी बरस रहा था। लोईने कबीर साहबसे सब वृत्तान्त कह दिया था, इससे कबीर साहबको चैन नहीं थी, वे सोचते थे कि जिसकी बात गयी, उसका सब गया। उन्होंने हवा पानीकी कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़कर स्त्रीको कधेपर बिठाकर साहूकारके घर पहुँचे। आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गयी। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैरमें कीचड़ ही लगी थी, यह देखकर

रके लडकेने इसका कारण पूछा। लोईने सब सच सच कह दिया। यह सुनकर साहूकारके बेटेकी कुवृत्ति बदल गयी, वह लोईके पैरपर गिर पडा और कहा—तुम मेरी मा हो। इतना कहकर वह बाहर आया और कबीर साहबके पैरसे लिपट गया। उसी दिनसे वह उनका सच्चा सेवक बन गया।

कबीर साहबके जीवनचरित्रमें ऐसी बहुतसी कथाए हैं जिनसे उनकी सच्चरित्रता प्रकट होती है।

कबीर साहब पढे लिखे न थे। सतसगी थे। सतसगसे हो उन्होंने हिन्दू धर्मकी गूढ गूढ बातें जान ली थीं। उनके हृदयमें हिन्दू मुसलमान किसीके लिये द्वेष न था, वे सत्यके बडे पक्षपाती थे। जहा उन्हें सत्यके विरुद्ध कुछ दिखाई पडा, वहा उन्होंने उसका खडन करनेमें जरा भी हिचकिचाहट नहीं दिखलायी।

कबीर साहबने अपना अधिकार हिन्दू मुसलमान दोनोंपर जमाया। आजकल भी हिन्दू मुसलमान दोनों प्रकारके कबीरपथी मिलते हैं। परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनोंका कबीरमतसे बैर हो गया। हिन्दूधर्मके नेता एक अहिन्दूके मुखसे हिन्दूधर्मका प्रचार देखकर भडके और मुसलमान कबीर साहबके हिन्दू आचार्यका शिष्य होने तथा हिन्दूधर्मका प्रचार करनेके कारण कट्टर विरोधी हो गये।। इस विरोधके कारण उनको बडी बडी कठिनाइया भोगनी पडी। परन्तु उनके हृदयमें जो सत्यका दीपक जल रहा था वह किसीके बुझाये न बुझा।

कबीर साहबने स्वय कोई पुस्तक नही लिखी। वे साखो और भजन बनाकर कहा करते थे, और उनके चेले उसे कठस्थ कर लेते थे, पीछेसे वह सग्रह कर लिया गया। कबीरपथके अधिकाश उत्तम उत्तम ग्रथ उनके शिष्योंके रचे हुए कहे जाते हैं।

"खास ग्रन्थ"में निम्नलिखित पुस्तकें हैं।

१—सुखनिधान २—गोरखनाथकी गोष्ठी ३—कबीरपाँजी ४—बलखकी रमैनी, ५—आनन्द रामसागर ६—रामानन्दकी गोष्ठी ७—शब्दावली ८—मंगल ९—बसन्त १०—होली ११—रेखता १२—झूलन १३—कहरा १४—हिन्दोल १५—बारहमासा १६—चाँचर १७—चौंतीसी १८—अलिफनामा १९—रमैनी २०—साखी २१—बीजक।

कबीरपंथियोंमें बीजकका बड़ा आदर है। बीजक दो हैं—एक तो बड़ा जो स्वयं कबीर साहबका काशिराजसे कहा हुआ बतलाया जाता है और दूसरे बीजकको कबीरके एक शिष्य भग्गूदासने संग्रह किया है। दोनोंमें बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहबका उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझमें लोगोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यों तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा सीधा अर्थ लगा ही लेते हैं परन्तु खींच तानकर लगाये हुए ऐसे अर्थों में कुछ विशेषता नहीं रहती।

कबीर साहब मूर्त्तिपूजाके कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वरका अवतार धारण करना भी वे नहीं मानते थे, परन्तु अपनेको उन्होंने स्वयं सत्यलोकवासी प्रभुका दूत बतलाया है। वे कहते हैं—

काशीमें हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताये।
समरथका परवाना लाये हंस उबारन आये॥

(शब्दावली)

लोगोंका ऐसा कथन है कि मगहरमें प्राण त्याग करनेसे मुक्ति नहीं मिलती। भला सत्यान्वेषक कबीर इस बातको कैसे मान सकते थे, उन्होंने लोगोंका यह भ्रम मिटानेके लिये ही मगहरमें जाकर शरीर छोड़ा। इस विषयमें उन्होंने कहा है—जो कबीर काशी मरे तो रामहि कौन निहोरा।

* * * *

जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहबकी कवितामें बडी शिक्षा भरी है। एक एक पदसे उनकी सत्यनिष्ठा प्रकट होती है। उन्होंने जो कहा है प्राय सभी एकसे एक बढकर है। बातें तो छोटी हैं, परन्तु उनमें अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

—रामनरेश त्रिपाठी।

२२ तुलसीदास

हिन्दी भाषाके अपूर्वभूत महाकवि गोस्वामी तुलसीदासका जन्म सवत् १५८९ वि० में राजापुरमें हुआ। इनके पिताका नाम आत्माराम दुबे और माताका नाम हुलसी था। इनका पहला नाम रामबोला था। ये सरयूपारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म दरिद्र कुटुम्बमें हुआ था, जैसा कि इन्होंने कवितावलीमें "जायो कुल मगन" आदि स्पष्ट ही लिखा है। इनके गुरुका नाम नरहरिदासजी था। रामायणके प्रारभमें "बदउँ गुरुपदकज, कृपासिधु नररूप हरि" इस सोरठेके "नररूप हरि" पदसे, लोग गुरुका नाम नरहरि निकालते हैं। इनका विवाह दीनबन्धु पाठककी कन्या रत्नावलीसे हुआ था। स्त्रीपर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गयी। इनसे पत्नीवियोग न सहा गया। वे ससुराल जाकर स्त्रीसे मिले। स्त्रीको लज्जा आयी। उसने ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपुको दौरे आयहु साथ
धिक धिक ऐसे प्रेमको कहा कहौं मैं नाथ।
अस्थि-चरममय देह मम तामे जैसी प्रीति
तैसी जो श्रीराममह होति न तौ भवभीति।

यह बात गोसाईं जीको ऐसी लगी कि ये वहासे उसी समय काशी चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारीको क्या मालूम

था कि उसकी साधारण बातका ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करनेको कहा, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदासके प्रेमकी प्रौढता प्रकट करती है। इनके हृदयमें प्रेमका समुद्र लहरें मार रहा था, प्रेमकी अटूट धारा जो क्षणभर पहले स्त्रीकी ओर बह रही थी, उसीको दूसरे ही क्षणमें इन्होंने श्रीरामकी ओर फेर दिया, जो इनके जीवनके अन्तिम दमतक बडे वेगसे बहती रही। उस प्रेमकी धाराने तुलसीदासको अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी सी घटनासे इनके जीवनका प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोडनेके पीछे एक बार स्त्रीने यह दोहा इनके पास लिख भेजा।

> कटिकी खीनी कनक सी रहत सखिन सग सोय।
> मोंहि फटेको डर नहीं अनत कटे डर होय॥

इनके उत्तरमें गोसाईंजीने लिखा—

> कटे एक रघुनाथ सग बाधि जटा सिर केस।
> हम तो चाखा प्रेमरस पतिनीके उपदेस॥

वृद्धावस्थामें एक दिन तुलसीदास चित्रकूटसे लौटते हुए विना जाने अपने ससुरके घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो उन्हें पहचाना नहीं, अतिथि सत्कारके लिये चौका आदि लगा दिया। पीछे बातचीत होनेपर उसने पहचाना कि ये मेरे पति हैं। उसकी इच्छा हुई कि मैं भी पतिके साथ रहूं। रातभर आगा पीछा सोचकर उसने सवेरे अपनेको तुलसीदासके सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनायी। परन्तु गोसाईंजीने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंटका प्रभाव दोनों ओर कैसा पडा होगा, यह अनुमान करनेपर

बड़ा करुणाजनक जान पड़ता है। गोसाईं जी और उनकी स्त्रीके अपनी युवावस्थाकी एक दिनकी वह घटना याद आयी होगी जब उन दोनोंका वियोग हुआ था। गोसाईं जी काशी और अयोध्यामें बहुत रहा करते थे परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथजी और सोरों (शूकरक्षेत्रमें) भी भ्रमण किया करते थे। काशीजीमें इनके कई स्थान प्रसिद्ध हैं, जहा ये रहते थे। अन्य साधु सन्तोंकी तरह इनके माहात्म्यकी भी बहुत सी कथाएं लोकमें प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हनुमानजीकी कृपासे इनको श्री रामचन्द्रजीका दर्शन हुआ था।

काशीमें टोडरमल्ल नामके एक जमींदारसे गोसाईं जीका बड़ा प्रेम था। उनके मरनेपर इन्होंने ये दोहे कहे थे—

महतो चारो गावको मनको बडो महीप।
तुलसी या कलिकालमे अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेहको सिर धरि भारी भार।
टोडर कांधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गये तुलसी भये असोच।
जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि सकोच॥

अकबरके प्रसिद्ध वजीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईं जीका बड़ा प्रेम था। आमेरके राजा मानसिंह भी इनका बड़ा आदर करते थे। कहते हैं कि व्रजभाषाके प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजीके सगे भाई थे। तुलसीदासजीसे सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजीसे भी भेंट हुई थी, और मीराबाईके साथ जो पत्रव्यवहार हुआ था। इन बातोंसे प्रकट

होता है कि तुलसीदासजीकी कीर्ति उनके जीवनकालमें ही चारों ओर फैल गयी थी।

तुलसीदासजीने इतने ग्रन्थ बनाये

१—रामचरित मानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामज्ञा, ६—विनयपत्रिका, ७—बरवै रामायण, ८—रामलला नहछू, ९—वैराग्यसंदीपनी, १०—कृष्ण गीतावली, ११—पार्वती मंगल, १२—राम सतसई, १३—रामशलाका, १४—कड़खा रामायण, १५—संकट मोचन, १६—छन्दावली, १७—हनुमानबाहुक, १८—छप्पय रामायण, १९—झूलना रामायण, २०—कुंडलिया रामायण, २१—जानकी मंगल।

इनमें कई ग्रन्थ नहीं मिलते। तुलसीदासजीके ग्रन्थोंमें रामचरित मानस सबसे बड़ा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। भारतमें अबतक इसकी करोड़ों प्रतियां छप चुकी हैं। यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रन्थ है कि गरीबकी झोंपड़ीसे लेकर राजाके महलतक इसकी पहुँच है। इस एक ग्रन्थने ही तुलसीदासजीको तब तकके लिये अमर कर दिया, जबतक पृथ्वीपर हिन्दू जाति और हिन्दी भाषाका अस्तित्व है। कौन कह सकता था कि एक गरीबके घरमें उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रतारित युवक इस असार संसारमें अनन्त कालके लिये अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर जायेगा।

रामचरित मानसके समान भारतमें और किसी ग्रन्थका प्रचार नहीं है।

सम्वत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमीको तुलसीदासने असी और गंगाके संगमपर शरीर छोड़ा। उस समयका यह दोहा प्रसिद्ध है—

सवत सोरह सो असी असी गगके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर ॥

मृत्युके समय गोसाईंजीने यह दोहा पढा था—

रामनाम जस बरनिकै भयो चहत अब मोन।
तुलसीके मुख दीजिये अब ही तुलसी सौन ॥

—रामनरेश त्रिपाठी

२३ आनरेबिल लाला धड़ामदासजी

कौन्सिल आफ स्टेटकी मेम्बरीके लिये सेठ धडामदासजी खडे होनेको तो हो गये, मगर बादको जो मुसीबतें उन्हें झेलनी पडीं वे सभीको मालूम हैं। हजारों अडचनें आयीं, लोगोंने नाउम्मेद किया, रात रात भर बिना झपकी लिये घडीकी टिक्-टिक्पर ध्यान लगा रहा, मगर आखिरको सरकारके 'कारण्ट प्रेक्टिसेज एक्ट्, पास कर देनेपर भी ताऊजीने (जिनका पहले रूईके सट्टेमें बम्बईमें दिवाला निकल चुका था और जो आजकल अपने भतीजेका कोठीका काम सभालते हैं) भीतर ही भीतर रुपयेकी वह रेलपेल मचायी और ऐसे ऐसे ढगसे जुगत लगायी कि धडामदासजीको बडी कौन्सिलकी कुरसी मयस्सर हो ही गयी और दुश्मन भी जल भुनकर खाक हो गये। मेम्बरी हासिल हो जानेके बाद दोस्तों और मिलनेवालोंकी दावत हुई जिसमे जात-बिरादरीमें नाचकी मनाही होनेपर भी मशहूर तवायफ अल्ला-निकालीका गाना हुआ। अमीर आदमीका मामला था, इसलिये बिरादरीकी पचायत भी खिसियानपटकी हँसी हँसकर रह गयी। अगर कोई गरीब ऐसा करता तो फिर देखता मजा! यही नहीं, कई पचोंने तो इतजामके मामलेमें बडी सरगरमीसे अपने हाथ पैरोंको हिलाया डुलाया। लड्डू, कचौडी और रायतेकी करके कई दिनोंतक लोगोंके मुँहमें पानी आया किया, और

रसभरीके बारेमें तो बस कुछ न पूछिये, कलम हाथसे छुटी जाती है।

अँगरेजोंको भी दावत हुई। लालाजी परम वैष्णव थे और 'गोपालसहस्रनाम'के पाठके मारे पड़ोसियोंको आरामसे सोने न देते थे, अँगरेजोंकी खातिरदारीमें कमी करना आप अधर्ममें दाखिल समझते थे, इसलिये अँग्रेजी होटलसे शराब और केकके साथ दूसरी चीजें गोमासकी बनी हुई भी काफी तादादमें मँगवायी गयीं। एक नम्बरकी भगेलू पल्टनका बैण्ड भी अपनी सोरठ अलाप रहा था। अँगरेजोंने खूब छककर खाया, और फिर उनमेंसे एकने एक छोटीसी स्पीच दी जिसमें लालाजीकी तारीफमें कुछ ऐसी बातें भी कही गयीं जिनको लाला जानते थे कि झूठी हैं। लालाके अलावा कुछ और लोगोंको भी उन बातोंके झूठी होनेका हाल मालूम था, शायद इसीलिये उनको सुनकर लालाने गरदन झुका ली थी, मगर आमलोग समझते कि लाला अपनी तारीफ सुननेमें शरमाते हैं। सब अँगरेजोंने उस स्पीचकी ताईद की। इसके बाद उन्होंने कुरसियोंपरसे उठकर और 'वेल लाला वेल लाला' कह कहकर लालाजीसे हाथ मिलाया। लालाजीकी सातों पीढ़िया तर गयीं।

लालाको अब यह धुन सवार हुई कि कौन्सिलमें मैं भी कोई तजवीज पेश करू। कई दोस्तोंके अलावा ताऊजीसे भी सलाह ली गयी मगर कोई बात ध्यानमें न बैठी। एक दिन कई आदमी लालाको बैठकमें बैठे बातें कर रहे थे, और बातें भी एकाध विषयपर नहीं, दुनियामें जितने विषय हो सकते हैं सभीपर एक साथ और अन्धाधुन्ध रायजनी की जा रही थी। लाला भी अपने कानोंको दुरुस्त करके और आखोंको पैनी कर हर एक बातको गौरसे सुनते और अपने मनको खुफिया पुलिसका हेड कानस्टेबिल बनाकर उसकी तहतक भेजते थे क्योंकि उन्हें कौन्सिलमें एक नयी तजवीज पेश करके दुनियापर अपनी

कतका सिक्का जमाना था और अपने उन दुश्मनोंको जलाना था जिन्होंने चुनावके दिनोंमें उनकी नालायकीके ढोल पीटनेकी बेहूदा हरकत की थी। कमरेके एक कोनेमें मुनीमजी चादरमें लिपटे हुए ऐसे अलग पडे थे मानों किसी निजी और जरूरी कामके बारेमें यमराजसे काना-फूँसी कर रहे हों। तलाश करनेपर मालूम हुआ कि उनकी डाढ़में दर्द है। उसी वक्त एक शख्स अपने घरसे थोडासा मजन ले आया जिसके लगाते ही मुनीमजीके मसूडोंमेसे बादीका पानी निकलना तो एक तरफ, उनका सारा पेट ही साफ हो गया। खैर बैठक बरखास्त हुई और सब लोग अपने अपने घर गये।

कौन्सिलकी अगामी बैठकमें पेश करनेके लिये एक तजवीज सेठजीने भी डरते डरते भेज दी थी। मगर जब कौन्सिलके लिये दिल्ली पहुँचे और सबसे मिले-जुले तब करीब करीब सभी अँगरेज और हिन्दुस्तानी मेम्बर इनके पीछे पड गये कि अपनी तजवीज वापिस ले लीजिये। उस दिन कौन्सिलका वक्त दूसरे कई कामोंमें पूरा हो गया और इनकी तजवीज पेश न होने पायी।

डेरेसे लौटकर बूट जूतेके फीते खोलते हुए इन्होंने ताऊजीसे (जिन्हें ये अपने साथ दिल्ली ले गये थे) कहा—"मेरी तजवीज ऐसी तगड़ी रही कि उसके मारे सब काँप गये। यों कहैं हैं के वापस ले लो। तुम्हारी क्या राय है?" ताऊजीने जवाब दिया—"वापस न लेनेसे सायद जे बदमाश मैम्बर लोग नाराज हो जायँ और कलहसे सब कुरसियाँ आप ही घेर लें, तुझे बैठनेको न दें, इससे वापस ही ले ले। जमाना बुरा है।

दूसरे दिन तजवीज वापिस ले ली गयी। लालाजीके शब्दोंमें तजवीज यों थी—"ये कौन्सिल लाट साहबसे सिपारस करती है कि वो एक हुक्म निकाल दें कि जो लोग दातके लिये मजन बनानेका पेशा करने हैं वो उसमें सेर पीछे कमसे कम तोले भर [illegible] जरूर डालें।"

—बद्रीनाथ भट्ट

२४ कर्मयोग संसार और निष्कामकर्म

एक ब्रह्मसमाजी—महाराज, क्या यह बात सच है कि सर्व सग परित्याग किये बिना मनुष्यको ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हो सकती ?

महाराज—नहीं, नहीं। तुम जैसे हो वैसे ही बने रहो। यह संसार सुख और दु:खका मिश्रण है। यद्यपि तुम लोग इस संसारमें बद्ध हो तथापि इस बातकी ओर ध्यान रखो कि तुम्हारा मन सदा ईश्वरकी भक्तिमें लीन रहे, तुम सदा उसकी कृपा प्राप्त करनेका यत्न करते रहो। यदि ऐसा न करोगे तो सद्गति न होगी। एक हाथसे दुनियाके सब कामकाज करो और दूसरे हाथसे प्रभुके चरणोंको दृढतासे पकडे रहो। जिस समय कोई भी काम काज न हो उस समय दोनों हाथोंसे प्रभुकी सेवामें लगे रहो।

स्थितिकी शक्ति

देखिये सब बातें केवल मनहीपर अवलम्बित होती हैं। यदि तुम्हारा मन मुक्त हो तो तुम भी मुक्त हो जाओगे। मनका रंग पानीके समान है जो रंग उसमें दिया जायगा, वही उसका रूप हो जायगा। उसमें लाल रंग डालो वह लाल देख पडेगा, पीला रंग डालो, पीला हो जायगा। मन स्वयं निर्गुण है। केवल स्थितिके कारण ही उसमें गुण या अवगुण देख पडते हैं। देखिये अँगरेजी लिखा-पढा आदमी आप ही आप "सिट् फिट् एट् मेट्" बोला करता है। संस्कृत जाननेवाला पंडित "घटपटादि" कहा करता है। यह सब अभ्यास, आदत या स्थितिका परिणाम है। यदि मनको कुसंगति लग जाय तो उसका परिणाम हमारे आचार विचार और उच्चारपर भी प्रकट होने लगता है। इसके बदले यदि मनको अच्छी संगतिमें भक्तजनोंके समाजमें लगा

दिया जाय तो वह ईश्वरचिन्तनमें रममाण हो जाता है और फिर ईश्वरकी कथाओंके अतिरिक्त उसको कुछ नहीं सुहाता।

साराश यह है कि सब बातें मनहीपर अवलम्बित हैं। वह सचमुच बहुरूपी है। जैसा देश हो वैसा ही वह वेश बना लेता है। देखिये, मनुष्यके एक ओर स्त्री और दूसरी ओर कन्या है। दोनोंके शरीरोंपर वह प्रेमभावसे अपना हाथ धरता है अथवा दोनोंको प्रेमभावसे आलिगन देता है, परन्तु स्त्रीविषयक प्रेमभाव और कन्याविषयक प्रेमभावमें जमीन आसमानका अन्तर होता है। यद्यपि भाव दो प्रकारके और भिन्न भिन्न हैं तथापि मन एक ही है।

—रामकृष्ण परमहस

२५ एक शिक्षाप्रद पत्र

चिरजीव बाबू नवलकिशोर!

आजकलके अदब कायदे, रीत-रस्म मुझे मालूम नहीं। इसी कारणसे तुम्हारे साथ पहले पहल बातचीत अथवा चिट्ठी पत्री करनेमें कुछ डरसा मालूम होता है। पहले हम बातचीतमें प्रथम बापका नाम पूछा करते थे पर सुनता हू कि आजकल बापका नाम पूछनेका दस्तूर नहीं है। सौभाग्यसे तुम्हारे बापका नाम मुझसे छिपा नहीं है। क्योंकि मैंने ही उनका नामकरण किया था। उसका नाम अच्छा तो नही रखा गया, पर गोवर्द्धन नाम क्यों रखा गया इसका पता अब मिला है। देवताओंको यह मालूम था कि तुम्हारे वर्द्धन करने अर्थात् पालन पोषण कर बडा करनेका भार उसीके माथे पडेगा। मालूम होता है इसीसे जब न्यायरत्नजीने तुम्हारे पिताका नाम तुमसे पूछा तो तुम्हारे बदनमें आग लग गयी। अच्छा अब तुम अपने पिताका एक अच्छा सा नाम रख लो, मैं अपना रखा हुआ 'गोवर्द्धन' नाम फेर लेता हू।

सच बात यह है कि तुम जानते हो, पुराने समयमें हम नामके विषयमें बहुत नहीं सोचते थे। हो सकता है यह हमारी असभ्यताका परिचायक हो, पर हम समझते थे कि नाम आदमीको बडा नहीं करता बल्कि आदमी ही नामको बडा बनाता है। बुरा काम करनेसे ही आदमीकी निन्दा होती है और भला काम करनेसे ही प्रशंसा होती है। पिता केवल एक नाम रख सकता है। उस नामको भला या बुरा बनाना लडकेहीके हाथमें है। जरा सोचो तो प्राचीन कालके बडे बडे नाम सुननेमें बहुत मधुर नही हैं—युधिष्ठिर भीष्म द्रोण भरद्वाज शाण्डिल्य जन्मेजय वैशम्पायन इत्यादि। परन्तु ये सब नाम अक्षयवटकी भांति आजतक भारत वर्षके हृदयपर अटल रूपसे विराजमान हैं। आजकलके उपन्यासोंमें ललित, नलिन, मोहन प्रभृति कितने ही मीठे मीठे नाम आविर्भूत हो रहे हैं, उन्हें आजकलकी पाठक पिपीलिकाएं घडी दो घडीमें ही साफ कर देती हैं। सुबहका नाम शामतक भी नहीं रहता। खैर जो हो, हम नामका बहुत खयाल नही किया करते थे। तुम कहते हो यह हमारी भूल है। बाबू, इसके लिये विशेष चिन्ता न करना, हम अब शीघ्र ही मरेंगे इसमें सन्देह नहीं, हमारे साथ ही पुराने समाजके सारे दोष भी जडसे मिट जायँगे।

पहले ही कह चुका हू कि आजकलकी रीतरस्म मुझे मालूम नही। पर मैं देखता हू कि आजकल तो अदब कायदा कुछ है ही नहीं, यह सब हमारे ही समयमें था। आजकल तो बापको प्रणाम करनेमें लोगोंको लाज लगती है, बन्धुबान्धवसे मिलनेमें संकोच होता है, किन्तु बडोंके सामने तकिया लगाये, ताश फेंकनेमें शर्म नहीं आती। रेलगाडीमें जिस बेंचपर पाँच आदमी बैठे हैं उसपर दोनों पैर चढा देनेमें जी नही हिचकता। हां, यह हो सकता है कि आजकल अदब कायदेकी आवश्यकता ही नहीं है, अब तो सहृदयताका प्रादुर्भाव हुआ है। इसी सहृदयतासे अब कोई आदमी अपने पडोसीकी खैर खबर नहीं रखता है, दु खके समय

कोई किसीकी सहायता नहीं करता, इसीसे नाचरगमें रुपये उडाये जाते हैं किन्तु दस अनाथोंका पालन नहीं किया जाता इसीसे मा बाप दु:खसे दिन काटते हैं और बेटा अलग चैन करता है, इसीसे अपनी तो बहुत सामान्य आवश्यकताके लिये भी बडी बडी फिक्रें की जाती हैं परन्तु परिवारके लोगोंको बडीसे बडी जरूरत होनेपर भी उत्तर दिया जाता है "रुपया नहीं है।" यही है आजकलकी सहृदयता! हृदयके दु:खसे मैंने बहुत सी बातें कह डालीं। मैंने कालेजमें नहीं पढा है, इसलिये मुझे यह सब कहनेका कोई अधिकार नहीं। तो भी जब तुम मेरी निन्दा करनेमें कुछ उठा नहीं रखते तब मैं भी तुम्हारे विषयमें जो दो एक बात कहूं उनपर जरा कान दो।

चिट्ठी लिखने बैठते ही मेरे मनमें पहला प्रश्न यही उठा कि कैसे आरम्भ करूं। एक बार मनमें हुआ कि "माइ डियर नाती" लिखूं पर यह सहा नहीं गया, पीछे सोचा हिन्दीमें लिखूं "मेरे प्रिय नाती" यह भी बूढेके इस सरईके कलमसे न निकला। झट लिख चला। "परमशुभाशीर्वादराशय सन्तु"। लिखा तो सही पर पीछे पढकर मैंने एक सांस ली और सोचने लगा कि लडके तो आजकल हमें प्रणाम करते ही नही, तो क्या अब हमको भी आशीर्वाद देना छोड देना चाहिये। भाइ, हम तो यही चाहते हैं कि तुम्हारा मंगल हो। हमारा जो होना था सो हो गया। तुम हमको प्रणाम करो या न करो इसमें हमारा हानि-लाभ कुछ नहीं है, तुम्हारा ही है। भक्ति करनेमें जिन्हें लज्जा आती है उनका कभी मंगल नहीं होता। बडोंके निकट नम्र होकर मनुष्य बडा होना सीखता है, केवल सिर ऊंचा करने हीसे कोई बड़ा नही हो जाता है। जो सोचता है कि पृथ्वीमें मुझसे कोई बडा नहीं है, मैं ही सबसे ज्येष्ठ हूं, मैंही सबसे श्रेष्ठ हूं वह वास्तवमें सबसे छोटा है, उसका हृदय इतना क्षुद्र है कि वह अपनेसे बड़ी वस्तुकी कल्पनातक नहीं कर सकता। तुम कहोगे कि "तुम मेरे पिता-

मह हो, इतने हीसे तुम मुझसे बडे हो गये यह कोई बात नहीं।" पर क्या मैं तुमसे बडा नहीं हू ? तुम्हारे पिता मेरे स्नेहसे पले हैं, मैं तुमसे बडा नहीं तो क्या ? मैं तुम्हें प्यार कर सकता हू इसलिये मैं तुमसे बडा हू, हृदयसे मैं तुम्हारा मगल चाहता हू इसीसे मैं तुमसे बडा हू। माना तुमने मुझसे दो चार अगरेजी किताबें अधिक पढी हैं, पर इससे क्या होता जाता है। यदि तुम १८००० वेब्स्टर डिक्शनरियोंके ढेरपर खडे होगे तब भी तुम्हें मेरे हृदयके नीचे ही रहना पडेगा, तब भी मेरे हृदयस्रोतसे आशीर्वाद तुम्हारे माथेपर बरसता ही रहेगा। पुस्तकोंके पर्वतपर चढकर तुम मुझे नीची दृष्टिसे देख सकते हो, अपनी असम्पूर्णताके कारण मुझे तुच्छ समझ सकते हो, पर मुझे स्नेहकी दृष्टिसे कदापि नहीं देख सकते, जो मनुष्य बिना सकोचके सिर झुकाकर प्रेमका आशीर्वाद ग्रहण करता है वह धन्य है, उसका हृदय उर्वरा खेतकी भाति फलफूलसे शोभित होता है और यदि मनुष्य बालूके ढेरकी तरह सिर ऊचा कर प्रेमाशीर्वादकी उपेक्षा करता है तो वह उसकी शून्यता शुष्कता और श्रीहीनता है, उसका मरुभूमि तुल्य मस्तक मध्याह्न कालके सूर्यकी ज्योतिसे जलता रहेगा। खैर जो हो मैं तुम्हें सौ बार "परमशुभाशीर्वादराशय सन्तु" लिखूगा तुम चिट्ठी पढा या न पढो।

तुम भी जब मेरे नाम चिट्ठी लिखो, प्रणामपूर्वक आरम्भ करना। तुम कह सकते हो कि "यदि मुझे भक्ति न हो तो मैं क्यों प्रणाम करने लगा। मैं इन सब असत्य आचार व्यवहारोंसे सम्बन्ध नहीं रखता" पर यदि यही सच है तो तुम सारे ससारको "माई डियर" क्यों लिखते हो ? मैं बूढा, तुम्हारा दादा आज तीन महीनेसे खासीकी बीमारीसे मर रहा हू और तुमने एकबार भी मेरी खोज नहीं की, पर समस्त ससारके आदमी तुम्हारे इतने प्रिय हो गये कि तुम्हें बिना "माई डियर" लिखे चैन नहीं पडता। तो "माई डियर" लिखना भी एक दस्तूरमात्र नहीं है ?

अन्तर इतना ही है कि एक है अंगरेजी दस्तूर और दूसरा हिन्दी। तब यदि दस्तूरके ही अनुसार चलना पड़ा तो क्यों हिन्दुस्तानीके लिये हिन्दी दस्तूर अच्छा नहीं है? तुम कह सकते हो कि "हिन्दी या अंगरेजी किसी दस्तूरके अनुसार मैं न चलूगा, मैं केवल अपने हृदयका अनुयायी हू।" यदि यही तुम्हारा मत हो तो तुम जंगलमें जाकर रहो, मनुष्यसमाजमें रहनेका प्रयोजन नहीं। प्रत्येक मनुष्यका कुछ कर्त्तव्य है और उसी कर्त्तव्यकी शृंखलासे समाज बंधी हुई है। यदि मैं अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह न करू तो तुम भी अच्छी तरह नहीं कर सकते। दादाके कई कर्त्तव्य हैं। और पोतेके भी कई कर्त्तव्य हैं। तुम यदि मेरी वश्यता स्वीकार करके मैं जो कहू वही करो तो मैं भी तुम्हारे लिये जो करना उचित है भली भांति कर सकता हू। पर यदि तुम कहो कि "मेरे मनमें भक्तिका उदय तो होता ही नहीं तब दादाकी बातोंपर क्यों कान दूँ" तो उससे तुम्हारा ही काम बिगड़ता है और साथ ही मेरे कर्त्तव्यपालनमें भी व्याघात पहुँचता है। तुम्हें देख तुम्हारे छोटे भाई भी मेरी बातें न सुनेंगे और दादाका काम मुझसे कुछ भी करते न बनेगा। इसी कर्त्तव्यपाशमें बांध रखनेके लिये प्रत्येक व्यक्तिको अपने अपने कर्त्तव्यका सर्वदा स्मरण दिलाते रहनेको समाजमें बहुतसे नियम दस्तूर रखे गये हैं। सिपाहियोंको जिस तरह बहुतसे नियमोंसे बद्ध रहना पड़ता है नहीं तो वे युद्धके लिये प्रस्तुत नहीं हो सकते, उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको हजारों रीतरस्मोंके बन्धनसे बँधा रहना पड़ता है, नहीं तो वह समाजके कार्य पालनके लिये प्रस्तुत नहीं हो सकता। अपने जिन बड़ोंको तुम सदा प्रणाम करते हो, जिनके लिये चिट्ठीपत्री तथा सम्भाषणमें आदर भक्ति दिखलाते हो, जिनको देखकर तुम खड़े हो जाते हो, उनको तुम इच्छा करनेपर भी हठात् अवमानना नहीं कर सकते। हजारों दस्तूरोंके पालन करनेसे तुम्हारी एक ऐसी शिक्षा हो जाती है

कि बड़ोंका आदर करना तुम्हारे लिये सहज ही हो जाता है और उनका आदर न करना तुम्हारी शक्तिसे बाहर हो जाता है। हम अपने पुराने दस्तूरोंको छोड़कर इसी शिक्षासे वंचित हो रहे हैं। भक्ति और प्रेमका बन्धन टूटता जा रहा है। पारिवारिक सम्बन्ध शिथिल हो रहा है। समाज उच्छृखल हो गया है। तुम दादाको बिना प्रणाम किये ही चिट्ठी लिखना आरम्भ करते हो, यह तुमको एक बहुत सामान्य बात मालूम होती होगी, पर इसे तुम जितना सामान्य समझते हो उतना नहीं है। कितने ही दस्तूर हमारे हृदयसे ऐसे सलग्न हैं कि यह कहना कठिन है कि उनका कितना अश दस्तूर है और कितना हृदयका कार्य है। हम स्वाभाविक भक्तिसे क्यों प्रणाम करते हैं? प्रणाम करना भी तो एक दस्तूर ही है। ऐसे भो देश हैं जहा लोग भक्ति सहित प्रणाम करनेके बदले कुछ और करते हैं। हम बड़ोंके सामने प्रणाम किये ही बिना क्यों नहीं जा खड़े होते? प्रणाम यथार्थमें क्या है? भक्तिका वाह्य लक्षणस्वरूप एक प्रकारका अगव्यापार हमारे देशमें बहुत दिनोंसे चला आता है। जिसपर हमारी भक्ति होती है, उसके प्रति स्वभावत हमें अपनी हार्दिक भक्ति दिखलानेकी इच्छा होती है। प्रणाम करना केवल उसी भक्ति दिखानेका एक उपाय है। यदि मैं किसी भक्तिभाजन सज्जनके पास जाकर प्रणामके बदले भक्तिपूर्वक तीन करताली बजाऊ तो जिन्हें मैं अपनी भक्ति दिखाना चाहता हू वे मेरा भाव कुछ नहीं समझेंगे,वे इससे उल्टे अपना अपमान समझ सकते हैं। यदि भक्ति दिखलानेके लिये पहलेसे ताली बजानेका ही नियम रहता तो निस्सन्देह प्रणाम करना ही दोषका विषय होता। अतएव दस्तूरको छोड़कर हम अपने हृदयका भाव प्रकाश नहीं कर सकते, प्रत्युत हृदयका अभाव ही प्रकट करते हैं।

इसलिये मुझे प्रणामपूर्वक चिट्ठी लिखना, भक्ति हो या न हो। देखनेमें तो अच्छा लगेगा। तुम्हें देख और भी दस आदमी अपने

दादाओंको भद्रतापूर्वक चिट्ठी लिखना सीखेंगे और क्रमश बड़ोंकी भक्ति करना सीखेंगे।

आशीर्वादिक
श्री पष्ठी चरणदेव शर्मा
—बद्रीनाथ वर्म्मा

२६ शासन

अब हम दूसरे प्रश्नपर विचार करते हैं। मनुष्य समाजमें शान्ति रखने और उसके स्वत्वोंकी रक्षा करनेका उपाय क्या है?

हम कह चुके हैं कि मनुष्य समाजका आपसमें धूप छाहका सा सम्बन्ध है। एकके विना दूसरा रह ही नहीं सकता। जहाँ मनुष्य है वहा समाज है, जहा समाज है वहा मनुष्य है। परन्तु समाजका अस्तित्व कायम रखनेके लिये कुछ खास नियमोंका होना जरूरी है। कोई जनसमुदाय बिना किसी व्यवस्थामें बद्ध हुए काम नही कर सकता। उस व्यवस्थाका नाम "शासन" अथवा "गवर्नमेण्ट" है।

चोरोंके एक गरोहको लीजिये। वह भी अपने सरदारके अधीन रहता है, वह भी उसकी आज्ञा पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता है। एक चोर दूसरे चोरके मालकी रक्षा करता है और एक दूसरेके हिस्सेका ध्यान रखता है। चोरोंके उस समुदायके लिये वही गवर्नमेण्ट है। यदि उनमें कोई सरदार न हो, और यदि वे एक दूसरेका माल चुराने लगें तो चोरोंका वह गरोह एक दिन भी इकट्ठे काम न कर सके। जो जगली लोग समुद्रतट या जगलमें रहते हैं उनमें कोई लिखा कानून या नियमावली नहीं होती। तथापि उनके यहा भी किसी न किसी तरहके दस्तूर या रीत रिवाज होते हैं। उनमें बडा बूढा पचके तौरपर होता है जिसका कहना सब लोग मानते हैं या सबसे बहादुर और मजबूत आदमी सरदारके तौरपर समझा जाता है।

गवर्नमेंण्टका होना आवश्यक है चाहे वह असभ्य ढंगकी ही क्यों न हो। गवर्नमेण्टका सभ्य या असभ्य होना समाजके सभ्य या असभ्य होनेपर अवलम्बित है। पर समाजके लिये गवर्नमेण्टका होना ऐसा ही आवश्यक है जैसे कि मनुष्यके लिये समाजका। सभ्यताका इतिहास लिखते हुए युरोपका विख्यात लेखक गिजो कहता है—

कोई समाज एक सप्ताह नहीं एक घंटा भी बिना गवर्नमेण्टके नहीं रह सकता। यदि गवर्नमेण्ट न हो तो दगा और मारपीटका अकटक राज्य होगा। जिसका जो जी चाहेगा, करेगा। किसीको एक पल भी आराम न मिलेगा। इसलिये मनुष्य, समाज और शासन यह तीनों एक साथ रहते हैं। जैसा मनुष्य होगा वैसा समाज, जैसा समाज होगा वैसा ही शासन। यदि समाजकी अवस्था अच्छी न होगी तो शासनका ढग भी भद्दा होगा। कहनेका मतलब यह है कि मनुष्य समाजमें शक्ति रखने और सब सभ्योंके स्वत्वोंकी रक्षा करनेका उपाय "शासन" है। शासनका ढग कैसा ही क्यों न हो पर उसके बिना समाजका काम नहीं चल सकता।

शासनका तात्पर्य नियमोंका पालन करना है। जो नियम समाजने बनाये हों, शासन करनेवालोंका कर्त्तव्य है कि वे देखें कि लोग उनके मुताबिक चलते हैं या नहीं। इसलिये "शासन" समाजके प्राण हैं। शासनसे अभिप्राय सब लोगोंको मुट्ठीमें रखना है। यदि ऐसा न हो तो वह शासन "शासन" नहीं। शासनको यह शक्ति समाजसे प्राप्त होती है। यदि कोई आज्ञा उल्लंघन करे तो समाजकी सहायतासे शासनकर्त्ता उसको दण्ड दे सकता है।

मनुष्य समाजके हमने दो उद्देश्य—अधिकार और कर्त्तव्य-बतलाये हैं। शासनके भी दो उद्देश्य हैं—न्याय और उन्नति यह भी हम कह चुके हैं कि शासन समाजका प्राण है। इससे स्पष्ट

है कि शासनका विषय मनुष्यके लिये कितना उपयोगी और जरूरी है। शासनके अच्छे या बुरे होनेपर ही हमारी उन्नति या अवनति और न्याय या अन्याय अवलम्बित है तो क्या हम विनीत भावसे अपने पाठकोंसे पूछ सकते हैं कि आपमेंसे कितनोंने इस विषयकी ओर ध्यान दिया है?

शासनप्रणालीपर विचार करते हुए हेटस लिखता है—

शासनप्रणालीके अध्ययनकी अपेक्षा थोडे ही ऐसे शास्त्र हैं जिनका अध्ययन मनुष्य समाजको अधिक उन्नत कर सकता है। शासकोंके कर्त्तव्य, अधिकार और विशेष करके उनकी शक्तिकी सीमा निश्चित करना बहुत जरूरी है जिसमें उसके बाहर जानेपर समाज शासकोंके काममें दस्तन्दाजी कर सके।

शासनप्रणालीके तत्व समझाना और उनपर भाष्य रचना राजनीति-विज्ञानका काम है। शासनके कई ढग हैं, उनके भिन्न भिन्न रूप हैं। प्रत्येकके गुण दोष बतलाना तथा समाजको ठीक ठीक मार्गपर ले जाना इस विज्ञानका उद्देश्य है। राजनीति विज्ञानका विषय बहुत गभीर और विस्तृत है, अतएव हम इसपर विस्तारपूर्वक लिख नहीं सकते। परन्तु बहुत आवश्यक और मोटी मोटी बातोंका उल्लेख हम सरल भाषामें करनेका यत्न करेंगे।

शासनकी भिन्न भिन्न प्रणालियां

शासनका पहला प्रकार प्रधान पुरुष मूलक तरीकेसे होता है। इसका नमूना आप अपने घरोंमें देखिये। मान लीजिये कि घरमें सात आदमी हैं—चार बालक एक बालिका माता और पिता। पिता उस घरमें शासन करता है। यदि बालक आपसमें लडते झगडते या दगा फसाद करते हैं तो वह उनको दण्ड देता है। यदि दो चार परिवार इकट्ठे रहते हैं तो उनमें कोई बडा बूढा या स्त्री शासक होता है जिसका कहना सब मानते हैं। परिवार बढ जानेपर जो जबरदस्त है, जिसकी भुजामें बल है, जिसने मारपीटमें नामवरी प्राप्त की है, उसका ठेंगा सबके

सिरपर होता है। शासनका यह दूसरा प्रकार है। इसी प्रकारके लोग धीरे धीरे अधिक जनसख्यापर शासन करनेके कारण सरदार, शाह, आदि नामोंसे इतिहासमें विख्यात हुए हैं। नादिरशाह, तैमूर, रणजीतसिंह इसी सिक्केके पुरुष थे। ऐसे पुरुष असभ्य देशों और असभ्य जातियोंमें समय समयपर उत्पन्न होते रहे हैं। उन्होंने अपनी ही भुजाके बलसे राज्य पाया था।

शासनका तीसरा प्रकार पैत्रिकाधिकारसे प्राप्त होता है। जिनके पिता या सम्बन्धी राजा, महाराजा नव्वाब आदि थे वे उस वंशमें उत्पन्न होनेके कारण, राज्यके अधिकारी होते हैं। तैमूर लुटेरा था, उसने अपने शारीरिक बलसे ही राज्य पाया था। बस फिर क्या था, उसका वंश परपरासे राज्य करने लगा। हुमायू, अकबर, जहागीर, शाहजहा आदि इसी कारणसे अपने पूर्वजोंके राज्यके अधिकारी बने। भारतवर्षके राजा, महाराजा, जाम, नव्वाब आदि इसी चक्रमें हैं। समाजमें इस प्रकारके शासनको एक राजाका शासन कहते हैं। पिता, सरदार, शाह केवल इस शासनके रूपान्तर हैं। एक राज्याधीन शासनके दो भेद हैं—सीमारहित एकाधिपत्य और सीमाविहित एकाधिपत्य। वर्त्तमानकालमें भारतवर्ष उनमेंसे पहले प्रकार अर्थात् सीमारहित एकाधिपत्यके शासनका घर हो रहा है। इस शासनके गुणदोष सुनिये—

पहले आप अपने घरोंमें पिताहीको लीजिये, जो घरके दूसरे लोगोंपर हुकूमत करता है। पिता अपनी कन्याके लिये जो वर पसन्द करता है उसीके साथ उसका विवाह कर देता है। कन्याके अधिकार क्या हैं? वह काने, अन्धे, कुरूप पतिको चाहती है या नहीं, इस बातका वह विचार भी नहीं करता। कोई तो यहातक अन्धेर करते हैं कि अपनी लडकियोंको अपनी जायदाद समझकर भेड बकरियोंकी तरह विवाहमण्डीमें

बेंच डालते हैं। बेचारी अबला कन्याए, इसीसे सारी उम्र दु खसे काटती है। वही पिता पुत्रके साथ भी इच्छानुसार वर्ताव करता है। उसके अधिकारोंका भी वह कम विचार करता है। हजारों बालक बालिकाए भारतमें पिताके कठोर शासनके कारण दु ख पाती हैं।

पतिके रूपमें होकर वही पिता अपनी स्त्रीको मारता है, पीटता है और उसपर अत्याचार करता है। पत्नी अर्द्धाङ्गिनी है, इसका उसे स्वप्नमें भी ज्ञान नही। वह मद्य पीता है जुआ खेलता है, चोरी करता है, यह सब करता हुआ भी वह घरमें पूरी हुकूमत दिखाता है। इस भारतभूमिमे लाखों घर सीमारहित एकाधिपत्यके दृश्य हो रहे हैं, जहा और किसीकी नहीं तो निरपराध अबलाओंकी आहें तो जरूर ही "न्याय" की पुकार कर रही हैं।

इसी उदाहरणको अधिक बढा करके देखो दृश्य और भी भयानक देख पडेगा। देशी रियासतोंको भिन्न भिन्न समाजोंकी स्थितिमें समझ लीजिये और वहाँके राजे महाराजे और नव्वाब आदिको उन समाजोंके शासक की। ये शासक अपनी प्रजापर पूरी हुकूमत रखते हैं। यद्यपि इस समय उनके ऊपर भी एक दूसरी जाति शासकोंकी तरह है, तथापि देशो रियासतें प्राय उस अन्याय और अत्याचारके नमूने हैं जो सीमारहित एकाधिपत्यके फल हैं। देशी रियासतोंमें वहाके शासकोंकी अपेक्षा अधिक योग्य पुरुष भले ही क्यों न हों, पर वे समाजके शासक नहीं वन सकते। खुशामदी लोगोंकी दाल वहा खूब गलती है। रिशवतके बाजार गरम रहते हैं। ईमानदार आदमियोंको कोई नहीं पूछता। "चोर उचक्का चौधरी" वाली कहावत वहा देखनेमें आती है।

मुसलमान बादशाहोंका शासन इसी ढगका था। महाराष्ट्र देशमें भी शासनकी यही प्रथा थी अलाउद्दीन, औरंगजेब, हैदरअली, टीपू आदिके शासन इस प्रणालीके अच्छे चित्र हैं। पजाबकी सिक्खाशाही भी इसीका उदाहरण है। ऐसे शासनमें प्रजा

अनार्थोकी भांति रहती है। शासकके खिलाफ कोई दाद फरियाद नहीं हो सकती। वह जो चाहे करे। चाहे मारे चाहे लूटे। एक मनुष्यके हाथमें सैकडों प्राणी भेड बकरियोंकी तरह होते हैं यद्यपि काम चलानेके लिये ऐसे शासकोंको भी अपने अधीन अधिकारी रखने पड़ते हैं, परन्तु वे उसके हुक्मके बन्दे होते हैं। उसकी आज्ञाका उल्लंघन वे नहीं कर सकते।

यहां यह प्रश्न होता है कि क्यों लाखों, करोडों आदमी अपने आपको एक पुरुषके हाथमें दे देते हैं? शासन असलमें इसीलिये होता है कि शासितजनोंपर कोई अन्याय न होने पावे तथा जिससे समाजकी उन्नति हो, परन्तु यह बात नहीं होती। शासक स्वार्थान्ध होकर जो चाहता है करता है फिर क्यों समाजके अन्य अन्य सब सभ्य अपनी सारी शक्तियों और अधिकारोंको एक ही व्यक्तिके हाथमें दे देते हैं? इसका उत्तर समाजकी मूर्खताके सिवा और कुछ नहीं। कई देशोंमें और अभाग्यवश भारतवर्षमें भी राजा और शासक ईश्वरके अंश माने जाते हैं। उनकी आज्ञाका पालन धर्म समझा जाता है। फिर उसकी आज्ञा चाहे पागलपनहीका नमूना क्यों न हो।

यह विश्वास अनेक आपदाओंकी जड है। राजा ईश्वररूप नहीं, कोई कोई राजे तो साधारण योग्यता भी नहीं रखते, वे अनेक दुर्गुणोंकी खान होते हैं। राजा, बादशाह, शाह, सरदार आदि खाली पदवियां हैं और कुछ नहीं। असलमें शासक समाजके सेवक हैं, उनका परम धर्म समाजकी सेवा करना है, समाजकी उन्नतिमें अपनी उन्नति, अवनतिमें अपनी अवनति समझना उनका काम है।

यहां यह पूछा जा सकता है कि औरंगजेब जैसे शासकको तो हिन्दू लोग भी ईश्वररूप नहीं समझते थे, मगर वे करते क्या? कोई ढंग ऐसा न था जिससे वे उसे दूर करके अच्छे राज्यकी स्थापना करते। इसके उत्तरमें हम कहेंगे

अच्छे राज्यकी स्थापनाका ज्ञान नहीं था। वे अधिकसे अधिक करते तो कोई हिन्दू महाराजाको उसकी जगह बिठला देते। परन्तु ऐसा करना बीमारीका इलाज थोडा ही होता। कई हिन्दू शासक तो मुसलमानोंसे भी गये गुजरे थे। असलमें शासनकी यह परिपाटी ही खराब है। किसी देशकी, किसी जातिकी उन्नति इस प्रणालीसे हो नहीं सकती। निस्सीम एकाधिपत्यहीके कारण चीन असभ्य था। इसी कारण रूसमें रुधिरकी नदिया बहती हैं। टर्की इसी बीमारीमें मुब्तिला रहा। एक राज्याधीन शासन-प्रणालीका दूसरा अग सीमाविहित एकाधिपत्य है। इसमें केवल इतनी विशेषता है कि राजा या शासकको प्रजाके ऊपर पूरा अधिकार नहीं होता। यदि शासक अन्याय करें तो उसे रोकनेके लिये एक राजसभा नियत रहती है। वह राजाको सत्परामर्श देती है। यदि फिर भी वह न माने तो प्रजा उसे राज-गद्दीसे उतारनेकी कोशिश करती है। शासनकी यह प्रथा इ गलि-स्तानमें मुद्दतसे चली आती है, इस प्रथामें भी बहुत सी खरा-बिया हैं, जो इ गलिस्तानके इतिहाससे प्रकट हैं। शासनका एक ढग ईश्वर कर्तृक राज्यव्यवस्था है। इसके मुताबिक ईश्वर शासक, धार्मिक ग्रन्थ कानून और पुजारी या ब्राह्मण उस कानून के उपदेष्टा समझे जाते हैं। तिब्बत यद्यपि चीनके अधीन रहा है, परन्तु शासनकी यह प्रथा वहा प्रचलित है। लामा गुरु तिब्ब-तवालोंका शासक है। लोग उसको बुद्धका प्रतिनिधि समझते हैं और उसकी आज्ञाका पालन परम धर्म समझते हैं। भारतवर्षमें भी अबतक उसकी छाया पायी जाती है। बहुत लोग पुजारियोंको ईश्वरका प्रतिनिधि मानकर उनकी आज्ञा ईश्वरादेश समझते हैं।

यह प्रथा भी खराब और हानिकारिणी है। पुजारियोंके इशारेसे ही समाजमें "अन्धेर नगरी बेबूझ राजा" वाला दृश्य दिखाई दे सकता है। ईश्वरके नामसे वे जैसा चाहें कानून बना सकते हैं, कोई रोकनेवाला नहीं। यदि वे चाहें कि अमुक पेशोंके

लोगोंको विद्याका अधिकार नहीं, तो वे वैसा कर सकते हैं। क्योंकि लोग उनको ईश्वरका दूत समझते हैं। ऐसी शासन-प्रणालीके कारण उन्नतिमाताके दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं, न्याय महाराज तो वहासे कोसों दूर भागते हैं।

धनिकशासनके भी उदाहरण इतिहासमें मिलते हैं। उसके अनुसार धनाढ्य और अच्छे खानदानी लोग राज्यके कारोबारका प्रबन्ध करते हैं। वेनिसमें ऐसी ही प्रणाली प्रचलित थी। यह प्रणाली चिरजीवी नहीं रहती। ईर्षा द्वेषमें फँसे हुए धनाढ्य लोग एक दूसरेके खिलाफ साजिशें करके अपना रुतबा बढ़ाना चाहते हैं। परिणाममें पारस्परिक धड़ेबन्दी युद्ध और अन्तको राज्यका नाश हो जाता है।

असलमें हमने शासनके मुख्य दो ही प्रकारोंका उल्लेख किया है—पहला एक राज्याधीन शासन अर्थात् एक ही पुरुषके हाथमें सब अधिकारका होना, दूसरा धनिकशासन अर्थात् थोड़ेहीसे उच्च कुलके लोगोंके हाथमें राज्यकी बागडोरका रहना। शासनके मुख्य भेदोंमें तीसरा भेद प्रजापालित शासन प्रथा है। इसके अनुसार शासनका कुल अधिकार सर्वसाधारणके हाथमें होता है। ग्रीसकी राजधानी ऐथेन्समें यही प्रणाली जारी थी। सारे शहरके लोग एक जगह इकट्ठे होकर सभा करते थे। जो कानून बनाना होता था, या जिस बातका फैसला करना होता था उस-पर विचार करते थे। भिन्न भिन्न काम करनेके लिये कमेटियां बनाकर उनके अधिकारी चुनते थे और शहरका कुल प्रबन्ध खुद ही करते थे। इस प्रथामें कोई राजा नव्वाब या सरदार नहीं होता था। सबके अधिकार बराबर होते थे। समाजमें शान्ति रखना और सब तरहकी उन्नति करना यही दो उद्देश्य प्रधान समझे जाते थे, और इन्हीं उद्देश्योंकी सफलताके लिये सब लोग मिलकर कोशिश करते थे।

पर शासनका यह तरीका छोटे शहरों और छोटी बस्तियोंमें

ही चल सकता है, बड़े देशोंमें नहीं। कुछ कुछ इसी प्रणालीके अनुसार हमारे देशके भिन्न भिन्न भागोंमें पहले पचायतें हुआ करती थीं और अब भी कहीं कहीं होती हैं। इन पचायतोंमें आपसके झगडोंका फैसला तथा और दूसरी जरूरी बातोंका तस्फिया होता है। प्रजापालित शासनप्रणाली अथवा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्य सभ्य समाजके लिये है। इसके बिना वह समाजके न्याय अन्यायको नही समझ सकता और न अपनी सम्मति ही दे सकता है, हमारे यहा जो पचायतें आजकल होती हैं उनमें अधिकाश "अन्धेनैवनीयमाना यथान्धा" वाला नजारा देखनेमें आता है।

पचको सर्वहितकारी नियमोंका ज्ञान नही होता। कोई धनके मदसे पच बना हुआ है, कोई जातिमदसे, कोई खुशामदसे, कोई चन्दादानके मदसे। शासन-प्रणालीका विषय बडेही महत्वका है। यह वह विषय है जिसपर भारतवासियोंका ही नहीं, बल्कि मनुष्यमात्रका सुख अवलम्बित है। शासनकी ही खराबीसे भारतके रत्नरचित मन्दिर धूलमें मिल गये, पजाबके वीर सिक्खोंका राज्य नष्टभ्रष्ट हो गया, मुसलमानोंकी बादशाही नामावशेष भावको प्राप्त हो गयी। जो खराबिया आजकल भारतमें देख पडती हैं प्राय उन सबका इलाज अच्छो शासन प्रणाली है। भारतवासियोंके लिये इस विषयके अध्ययनकी इस समय इतनी अधिक आवश्यकता है जितनी किसीके अध्ययनकी नहीं। कुछ कालके लिये व्याकरणकी वितण्डाको छोडिये, न्यायकी फक्किकाओंको भूल जाइये, आध्यात्मिक विषयोंका मनन कम कर दीजिये। आंख उठाकर चारों ओर देखिये। वेदान्त बूझनेकी इस समय जरूरत नहीं।

—स्वामी सत्यदेव

२७ चमड़ेका व्यवसाय

भारतवर्षमें हर साल सब मिलाकर कोई १२से १६ करोड रुपयेतकका चमडा बाहर जाता है। और उससे अधिक नहीं तो उतने ही दामका चमडा देशमें ही खर्च हो जाता है। इस तरह कोई २५—३० करोड रुपयेका चमडा हरसाल यहा पैदा होता है। अस्ट्रेलिया, अरजेनटाइन (दक्षिण अमेरिका) जैसे कुछ देशोंको छोडकर जहा पशुपालनका बहुत बडा व्यवसाय होता है, विरला ही कोई देश होगा जो इतने मूल्यका चमडा इस तरह विदेश भेजता होगा। भारतवर्षमें एक तो दरिद्रताके कारण सब कोई जूते नही पहन सकते और दूसरे, धार्मिक विचारोंके कारण उतने व्यवहारोपयोगी द्रव्य नहीं बना सकते जितने कि पश्चिमीय देशोंमें बनते हैं। तीसरे, दरिद्रताके कारण लोग पशुओंके खिलाने पिलानेका पूरा प्रबन्ध नही कर सकते। इससे भी हरसाल विशेषकर दुर्भिक्ष या अनावृष्टिके समयमें हजारों लाखों पशु या तो भूखों मर जाते हैं या कसाइयोंके हाथ बेंचे जाते हैं। इधर कुछ दिनोंसे सारी दुनियामें चमडेकी माग बढ गयी है और उनका दाम बढ रहा है। इन सब कारणोंसे यहासे चमडेकी रपतनी भी बढती जा रही है।

व्यापारियोंने चमडेके दो विभाग किये हैं एक तो गाय, बैल, भैंस इत्यादि बडे पशुओंके चमडे, जिनको 'हाइड' कहते हैं। और दूसरे भेड, बकरी, बछडे इत्यादि छोटे जानवरोंके चमडे जिन्हें 'स्किन' कहते हैं। यहासे जो चमडे बाहर भेजे जाते हैं उनकी दो श्रेणिया होती हैं, एक तो सिर्फ नमक मिलाकर सुखाइ हुई खालें, छोटी या बडी, और दूसरे तैयार किये हुए चमडे, बडे या छोटे।

बढिया चमडा तैयार करनेके अच्छे कारखाने नहीं रहनेके कारण 'खालों'की रपतनी ही यहासे अधिक होती है। फल-

कच्चेसे सिर्फ नमक मिलाकर सुखाई हुई खाल (बडी और छोटी) बाहर जाती है। बम्बईसे खालके साथ साथ थोडे तैयार चमडे (बडे और छोटे) भी बाहर जाते हैं। भारतवर्षमें चमडा तैयार करनेके कारखाने (टैनरी) अधिकाश मद्रास हातेमें पाये जाते हैं। इस कारण मद्रासससे जितने बडे चमडे बाहर जाते हैं वे सब तैयार किये हुए होते हैं, तथा छोटे छोटे चमडेका भी दो तिहाई अश तैयार किया हुआ होता है। स० १९५५ तक तो मद्राससे सूखी खाल बाहर जाती ही नहीं थी, पर अब धीरे धीरे छोटी सूखी खालोंकी रफ्तनी चढ़ने लगी है, क्योंकि बाहर वाले दाम अधिक देते हैं। कराची और बर्मासे भी सूखी खाल (बडी और छोटी) ही भेजी जाती है।

लडाईके पहले जर्मनी बडी बडी सूखी खालोंका सबसे बडा खरीदार था। ४८ प्रतिशत माल वहीं जाता था। उसके बाद आस्ट्रिया हगरीका नम्बर था जो अधिक माल खरीदता था। इसके बाद स्पेन, इटली, अमेरिका इत्यादि देशोंका नम्बर था। जिस तरह जर्मनी गाय बैलकी खाल सबसे अधिक लेता था, उसी तरह आस्ट्रिया हगरी भैंसकी खाल अधिक खरीदता था इसके लिये अमेरिका आस्ट्रिया दोनोंमें चढाऊपरी लगी रहती थी। छोटी छोटी सूखी खालोंका बडा खरीदार अमेरिका था। उसके बाद फ्रान्स, इगलैंड, हालैंड और जर्मनीका नम्बर था। इगलैंड बहुत कम सूखी खाल (बडी या छोटी) खरीदता था। वह अधिकतर बना बनाया चमडा ही लेता था। अमेरिका तथा जर्मनीवाले थोडे खर्चमें अच्छा चमडा तैयार करनेकी हिकमत जानते हैं। इसी कारण सूखी खाल यहासे ले जाते हैं। खालकी तिजारतको एक प्रकारसे जर्मनीने अपनी मुट्ठीमें कर लिया था, उसका खरीदना और बाहर भेजना बिलकुल उनके अधिकारमें था। दाम भी वे लोग सुविधाजनक ही रखते थे। युरोपकी कुल बिक्री जर्मनी (ब्रीमैन, हेम्बर्ग)के व्यापारियोंके

हाथ थी। खाल रफतनी करनेके लिये जर्मनीकी बहुतसी आढतें शहरों और कस्बोंमें खुली थीं। बडे छोटे दोनों प्रकारके तैयार चमडोंकी सबसे अधिक माग विलायतसे आती थी। युनाइटेड किंगडमके बाद अमेरिका जापानका नम्बर था। लडाई छिडनेके कारण जर्मनी आस्ट्रियाके बाजार बन्द हो जानेसे बडी बडी सूखी खालोंका बाजार एक दम मन्दा हो गया। चमडा कहीं निष्पक्ष राज्योंसे होकर शत्रुदलको न मिल जाय, इसको रोकनेका पूरा प्रबन्ध किया गया था। तैयार चमडोंकी रफतनी तो सरकारने अपने हाथमें ले ली थी, क्योंकि लडाईके सामानमें यह भी शामिल था। पर सूखी खालको सरकार नहीं खरीदती थी, क्योंकि विलायतमें इन सूखे मरे चमडोंके तैयार करनेके कारखाने नहीं थे। धीरे धीरे सूखी खालोंकी भी रफतनी बढने लगी। जब इटलीने लडाईमें ब्रिटेनका साथ दिया, तब वहा भी चमडोंकी जरूरत हुई। जहा १९७०में कुल पाच लाख सूखी बडी खालें कलकत्ते और कराचीसे इटली रवाना की गयी थीं, वहा १९७८में करीब ४० लाख बडी बडी खालें भेजी गयीं, यह खालें कोई दो करोड जोडे बूटके उपरले भागके लिये काफी थीं। यद्यपि १९७१में इटली-की रफतनी कम हो गयी, पर तोभी शान्तिके समयसे कई गुनी अधिक ही रही। अमेरिका (सयुक्त राज्य) ने भी छोटी बडी सूखी खालोंकी माग बढायी। छोटी छोटी खालोंकी तो ६० प्रतिशत अमेरिकासे ही माग आती है। लडाईके जमानेमें जर्मनी, आस्ट्रियाकी घटी अमेरिकाने पूरी कर दी है। अब सूखी खालोंका सबसे बडा खरीदार अमेरिका ही हो गया है। लडाई-के पहले अमेरिका हर दर सैकडे ११ बडी खाल और ७७ छोटी खाल लेता था। पर आजकल तो क्रमश हर दर सैकडे ५१ और ६७ माग धीरे धीरे बढ रही है। यहाके व्यापारी कह रहे हैं कि यदि सरकार इस बातपर भरोसा दिलावे ~ ७- '

खतम होनेपर जर्मनी आस्ट्रियनोंको बेरोकटोक खाल खरीदनेकी इजाजत न मिलेगी तो इंगलैंडमें भी मरे चमड़ेको तैयार करनेके लिये कारखाने खोले जावें तथा इस व्यापारको इन देशोंके चगुलसे बचाया जावे।

चमड़ेका देशी व्यवसाय

देशी छोटी छोटी खालें बहुत ही अच्छी होती हैं। उनसे ऊंचे दर्जेका चमडा तैयार हो सकता है। पर यहाकी बडी खालोंसे बढिया चमडा तैयार करना मुश्किल है। देशमें जो चमडे खर्च होते हैं प्राय बहुत ही मामूली दर्जेके होते हैं, तथा उनको तैयार करनेकी देहाती तरकीब भी ऐसी भद्दी है कि अच्छी खाल भी खराब हो जाती है। हर जगह हर देहातमें चमार रहते हैं जो चमडा भी तैयार करते हैं तथा जूते वगैरह भी बनाते हैं। देहातोंमें मसालोंसे भरे कच्चे चमडे गाछोंसे लटकते हुए प्राय॰ नजर आते हैं। कही कहीं मोचियोंके यहा नादोंमें भी चूनेके पानीमें डूबे हुए चमडे पाये जायँगे। देशी चमार बहुतसी बढिया खाल तैयार करते समय खराब कर देते हैं, उनसे केवल भद्दे चमडे तैयार करते हैं। अनुमान किया जाता है, कि इस तरह करोडोंका माल हर साल खराब कर दिया जाता है। यदि देशमे अच्छी "टेनरियां" खुलें या देशी चमारोंको चमडा तैयार करनेकी शिक्षा दी जाये तो देशका बहुत सा धन बरबाद होनेसे बच जाये। हर साल देहातोंमें करोडोंके लागतके देशी जूते, चपोडे, साज, मशक, मोट इत्यादि सामान बनाये जाते हैं तथा व्यवहारमें आते हैं। यदि यह सब चीजे अच्छे टिकाऊ मजबूत चमडेकी बनें तो इन चीजोंकी उम्र भी बढ जाये, तथा किसानोंको उनसे अधिक लाभ उठानेका मौका भी मिले और उतने कीमतकी सालाना बचत भी हो। पर पढेलिखोंका ध्यान इधर नहीं आ सकता, क्योंकि चमडेका

व्यवसाय निकृष्ट समझा जाता है, चमारसे छू जानेसे छूत लग जाती है, लोग पतित हो जाते हैं। ऐसी अवस्था जबतक बनी रहेगी, तबतक यह व्यवसाय अपढ या इतर धर्मावलम्बियोंके हाथमें ही रहेगा।

इधर कुछ दिनोंसे अंगरेजी ढगकी टैनरी और चमडेके कारखाने खुलने लगे हैं। कानपुरमें टैनरी और चमडेका सामा बनानेका एक बहुत बडा अड्डा है। बम्बईमें भी नये ढगके चम. तैयार किये जाते हैं और कानपुरसे घटिया नहीं होते। उस तरह आगरा, दिल्ली, इत्यादि कई शहरोंमें भी इन देशी तैयार चमडोंसे अँगरेजी ढगके जूते, बूट, ट्रक इत्यादि सामान बनानेके कई कारखाने हैं, जहा मशीनों तथा हाथोंसे काम होता है। कानपुर, बम्बई, मैसूरमें भी यह सब सामान तैयार होता है। यह सब नये ढगके कारखाने फौजी विभागकी कृपाके फल हैं। फौजी विभागमें हर साल लाखोंकी लागतके बूट, साज इत्यादि इन कारखानोंसे खरीदे जाते हैं और उनको देखादेखी अन्य विभागवाले भी बहुत सा चमडेका माल इन कारखानोंसे लेने लगे हैं। फल यह हुआ है, कि कानपुर, बम्बई आदिमें चमडेके कई बडे बडे कारखाने चल निकले हैं। इधर स्वदेशी आन्दोलनने भी अँगरेजी जूता बनानेवाले कारखानोंकी बडी सहायता की है। यह सस्ते अँगरेजी जूते लोगोंको खूब पसन्द आये हैं। ज्यों ज्यों इन सस्ते जूतोंका प्रचार बढता गया, त्यों त्यों देशी कारखानोंकी जड मजबूत होती गयी और दिल्ली, आगरा और कानपुरका जूतेका व्यापार बहुत दृढ हो गया। लडाईके कारण जबसे विलायती तैयार चमडों तथा जूतोंका आना कम हो गया है, तबसे इन लोगोंने और भी उन्नति कर ली है। इधर सरकारने लाखों जोडे बूट साज वगैरह कानपुर, बम्बईसे खरीदे हैं। दक्षिण भारतमें विशेष कर मद्रासमें पहलेसे ही अच्छा चमडा तैयार होता था। अब इधर उन 'लोगोंने 'क्रोमलेदर' नामका

बहुत बढ़िया चमडा तैयार करना शुरू कर दिया है। यह हलका, चिकना, मुलायम, मजबूत और खूबसूरत होता है। इसके बने 'तल्ले' और 'उपरले' मुलायम तथा टिकाऊ होते हैं। पानीमें भीगनेपर भी यह मुलायम ही रहता है तथा बिगड़ता भी नहीं। इससे मद्रास प्रान्तमें चमडा तैयार करनेके साथ साथ चमडेका सामान जूता साज़ इत्यादिका भी रोजगार बढ रहा है। मैसूरका चमडेका कारखाना बहुत बढ़िया समझा जाता है।

यद्यपि भारतवर्षसे चमडों और खालोंकी रपतनी बढ़ती जाती है, पर देशमें चमडा तैयार करनेके हुनरकी वैसी तरक्की नहीं हो रही है। हरसाल लाखोंके विलायती जूते तो बाहरसे आते ही हैं। १९७०-७१में प्राय ८० लाख रुपयेके जूते आये। इनके अतिरिक्त भी कोई २५।३० लाखका बढ़िया चमडेका सामान प्रति वर्ष आया करता है। इसमें किताबकी जिल्द बाधनेके बढ़िया चमडे, मशीन चलानेवाले बेल्टोंके चमडे, तथा चमडेकी "फैन्सी" चीजें शामिल हैं। यद्यपि यह सब यकायक हिन्दुस्तानमें नहीं बनने लगेंगे, पर इसमें सदेह नहीं कि प्रयत्न करते ही यहा भी बढियासे बढिया चमडा तैयार हो सकेगा। पर उसका पूरा उद्योग होना चाहिये। लडाईने चमडेके व्यापारको बहुत सहायता दी है, अभी सरकारने इलाहाबाद जैसी जगहोंमें "टैनिंग" सिखानेके लिये स्कूल खोले हैं। यदि हमलोग अच्छी तरह टैनिंग करना न सीखेंगे तो सदा कच्चा माल ही भेजते रहेंगे। कई साल हुए विलायती 'सुसाइटी आफ आर्ट्स'ने किताबोंकी जिल्दके लिये चमडेको जाच करनेको कमेटी बिठायी थी। उस कमेटीने कहा था, कि हिन्दुस्तानसे जो छोटे छोटे चमडे तरवरके छालसे तैयार किये हुए आते हैं, उनमें ज्यादे दिनतक ठहरनेको शक्ति नहीं होती। कुछ ही दिनोंमें कीडे लग जाते हैं। इसका फल यह हुआ कि देशी तैयार किये हुए छोटे चमडोंकी रपतनी कम हो गयी। यही अज्ञानता-

का फल है। 'एक बात और है जिसकी ओर सरकारने लोगोंका ध्यान आकर्षित किया है। यह घरेलू पशुओंको दागनेकी चाल बहुत प्रचलित है। इससे चमडे खराब हो जाते हैं। जहा-तक हो सके इसको रोकना चाहिये क्योंकि इससे उनका मूल्य घट जाता है। इस एक प्रथासे शायद एक करोडका चमडा हर साल खराब हो जाता है। १९७२ में ४० बडे बडे चमडेके कार-खाने और टैनरिया थी, जिनमें ६७८७ मजदूर काम करते थे। युक्तप्रान्त, मद्रास और बम्बईमें अधिकाश कारखाने हैं।

—राधाकृष्ण झा

२८ राजाका भूमिपर अधिकार

(१) मीनल देवी

मीनलदेवी गुजरातके राजाधिराज करण सोलखीकी रानी और सिद्धराज जयसिहकी मा थी। बाल्कोडासे तीन बरसकी उमरमें बापके जीतेजी अनहिलपुरपट्टनके राजसिहासनपर जयसिह जा बैठा और करणने ज्योतिषियोंसे उसका शुभ मुहूर्तमें सिहा-सनपर बैठना और आगेको बडा प्रतापी राजा होना सुना तो उनके वास्ते वह सिहासन छोड दिया और मीनलदेवीको उसके बडे होनेतक उसके नामसे राज्य करनेका अधिकार देकर अपने लिये दूसरा राज्यसिहासन कर्णावती नाम नगरीमें बना लिया। उस दिनसे मीनलदेवी अपने बेटेका सरक्षण और पाटणका राज्यशासन करने लगी। उसने कई मदिर, तालाब, बावडी और अन्नदानके स्थान गुजरातमें बनाये जो आज भी कुछ गिरे पडे दिखाई देते हैं। उसका एक तालाब धोलकेमें भी है जिसको अब मीनल कहते हैं। मीनलदेवी जब इस तालाबको बनवाती थी तो एक वेश्याका घर उसके घेरेमें आता था। मीनलदेवीने उसको बुलाकर कहा कि तू अपना घर हमको दे दे और मोल सो ले ले।

वेश्या—क्यों ?

मीनलदेवी—मुझे जरूरत है।

वेश्या—आपको जरूरत हो, पर मुझे तो जरूरत नहीं है।

मीनलदेवी—अभी तो मुँहमागे दाम देती हू, फिर इतना मोल नहीं मिलेगा।

वेश्या—मत मिले। यहा वेंचना किसको है, मोलका तो वह सोच करे जिसको वेंचना हो।

मीनलदेवी—वेंचनेमें क्या हरज है, और न वेंचे तो इसके बदले दूसरा मकान ले ले।

वेश्या—क्यों ले लू ? भला जिस घरमें मैं जन्मी, बडी हुई, और खाई खेली, अब मरती हुई उसको तो वेंच दूं और दूसरे घरमें जाकर मरू यह कहाका न्याय है ?

मीनलदेवी—अच्छा जो मोल और बदला नहीं लेती है तो वैसेही दे दे।

वेश्या—क्यों दे दू ? आप कुछ मुहताज नहीं हैं, महारानी हैं। सारा देश आपके अधीन है फिर मुझ गरीबिनका घर क्यों छुडाती हो ?

वेश्या—मैं यों घर नहीं छुडाती, तेरी राजी खुशीसे लेती हू।

वेश्या—मैं तो देनेको राजी नहीं हू। जबरदस्ती लेती हो, तो वह घर पडा है ले लो।

मीनलदेवी—जबरदस्ती लेती तो तुझे क्यों बुलाती और मोलकी बात क्यों करती ?

वेश्या—मैं आपकी न्यायनीति देखकर ही तो इतना वाद विवाद करती हू।

मीनलदेवी—न्यायकी ही बात तो में भी करती हू।

वेश्या—यह तो न्याय नहीं है कि एक गरीबिनका घर यों ले लिया जाय।

मीनलदेवी—मैं यहा बस्तीके फायदेके लिये एक तालाब

बनवाती हू। तेरा घर उसके नापमें आता है, जो तू नहीं देगी तो तालाबका एक किनारा बाका रह जायगा।

वेश्या—बाका रहनेका आपने भला सोच किया, इसका बाका रहना ही पीढियोंतक आपकी न्याय नीतिकी याद लोगों-को दिलाता रहेगा।

मीनलदेवी—यह कैसे?

वेश्या—बाका रहनेके साथ यह बात भी जगतमें विख्यात हो जावेगी कि वहा वेश्याका घर था उसने नही दिया और रानीने भी अन्याय करके नहीं लिया और यह न्याय आपका प्रमाण हो जायगा। पिछले राजाओंमेंसे जब कोई किसीपर अन्याय करेगा तो वह आपके न्यायकी दुहाई देकर अन्याय न करने देगा।

मीनलदेवीने गद्गद होकर कहा कि मेरे तालाबका एक किनारा क्या, चाहे चारों किनारे भलहो बाके रह जायँ, परन्तु यह कोइ न कहे कि अन्यायसे प्रजाकी जमीन ले लेकर, इन कोनोंको सीधा किया गया है। यह कहकर कर्मचारियोंसे कहा कि इस-का घर छोड दो और पालके टेढी होनेका सोच मत करो।

(२) राजा चन्द्रापीड

काश्मीरके महाराजाधिराज चन्द्रापीड बडे न्यायी थे। वे जब त्रिभुवन स्वामीका मदिर बनवाने लगे थे तब एक दिन वहाके कर्मचारीने आकर निवेदन किया कि पृथ्वीनाथ मन्दिरकी सीधमें एक चमारकी झोंपडी आती है जिसपर वह सिलावटोंको सूत नहीं रखने देता और हुक्म नहीं मानता।

महाराज—(झिडक कर) तुम लोगोंको धिक्कार है, तुमने उससे बिना ही पूछे मदिरकी नींव क्यों रख दी। अब वहा मदिर बनाना बन्द कर दो और दूसरी जगह ढूढो जहा किसीकी मिल-कियत न हो। दूसरोंकी जमीन छीनकर मन्दिर बनानेसे हमको पुण्य तो क्या होगा, उल्टा हमारे प्रजापालनके धर्ममें कलङ्क लग

ावेगा। जब हमीं यों अन्याय करने लगेंगे तब दूसरे लोगोंको
ायपर कैसे चला सकेंगे और उनसे सदाचार या सद्व्यव-
ारकी क्या आशा रखेंगे ?

चमारने जब यह बात सुनी तो उसने राजाके यहा अपना
कील भेजा। उसने हाजिर होकर अर्ज की, मेरे मुवक्किलने यह
कहलाया है कि दरबारमें आने योग्य ता मैं नहीं, अछूत हू, पर
ाहरके आगनमें हो मुझे दर्शन मिलें तो मैं आकर कुछ अर्ज करू।
महाराजने दूसरे दिन उसे बुलाकर पूछा कि क्या तुम्हीं हमारे
ुण्यको रोकते हो ? जो ऐसा ही है तो अपने घरके बदले और
सुन्दर घर या मनचाहा धन ले लो।

चमार—(महाराजाके न्याय और शील स्वभावको अपने
मनमें माप तोलकर) हे राजन्! जो मैं कहता हू उसे आप
अभिमान छोडकर सुनें। जब न तो मैं ही कुत्तेसे कम हू और न
आप राजा युधिष्ठिरसे बढकर हैं तो फिर मेरी और आपकी
बातचीत हानेसे यह दरबारी लोग क्यों बुरा मान रहे और खफा
हो रहे हैं। सुनिये, इस असार ससारमें मनुष्यका नाशवान
शरीर ममतासे ठहरा हुआ है, जो यह न हो तो किसीका काम ही
न चले। देखिये, जैसे आपको अपने अलङ्कारोंसे सजे हुए शरी-
रका अहंकार है वैसे ही हम गरीबोंको भो अपने नगे धडगे शरी-
रोंका है। आपको बडे बडे महलोंवाली अपनी राजधानी जैसी
प्यारी है वैसे ही मुझे भी अपनी यह बुरी सुरी झोंपडी अच्छी
लगती है, जिसको खिडकी घडेके घेरेसे सजायी गयी है और जो
जन्म-दिनसे माताके समान मेरे दुखसुखकी साथिन रही है।
फिर मैं उसे कैसे गिरने दू या गिराते देखू ? घर छिन जानेसे
आदमीको जो दु ख होता है उसको स्वर्गसे गिराया हुआ पुरुष
या राज्यसे निकाला हुआ राजा ही जान सकता है। हा, यों जो
आप मेरे घर चलकर मागें तो मुझे यह झोंपडी आपको दे ही देनी
पडेगी क्योंकि आपका हुक्म मानना मेरा धर्म है।

यह सुनकर महाराजा उस चमारके घर गये और उससे वह झोंपडी मागी, उसने हाथ जोडकर कहा कि जैसे पहले धर्मने कुत्तेके रूपमें राजा युधिष्ठिरकी परीक्षा ली थी वैसे ही आज मुझ अछूतने भी आपके धर्मकी यह जाच की है। आपका भला हो, और इसी तरह आप धर्म और न्यायसे राज करते रहें, परमेश्वरसे मेरी यही प्रार्थना है। चमारने यह कह अपनी झोंपडी महाराजा चन्द्रापीडको भेंट कर दी और महाराजाने कर्मचारियोंको मन्दिर पूरा करनेकी आज्ञा दे दी।

—देवीप्रसाद (मुंसिफ)

२६ महात्मा गांधी

जिस अनुपम पुरुषने जगतको अपने जीवनसे यह दिखा दिया कि आत्माकी तेज धारके सामने पैनीसे पैनी तलवार भोथल है, तपस्याके सामने आजकलके महादुर्धर्ष और भयङ्कर विज्ञानकी आच ठढी हो जाती है, त्यागके सामने दुनियाके भोगविलास फीके और नीरस हो जाते हैं, सत्यके सामने मायानटीके भारे परदे फट जाते हैं, जिस महात्माने अपने व्यवहारसे हमारे पहलेके



ऋषियोंकी इन धारणाओंको जीवनकी कसौटीपर कसकर परखाया, वही महात्मा मोहनदास गांधी १६२५ विक्रमीके १६

आश्विनको काठियावाड़में दीवान कर्मचन्दजीके घरमें सबसे छोटा पुत्र होकर इस ससारमें बावन बरस हुए आया।

महात्माजीकी शिक्षा आरम्भमें धर्मात्मा मातापिताकी देख-रेखमें हुई फिर बारिस्टरी आपने विलायत जाकर पढ़ी।

सवत् १९४९ में "मिस्टर गाधी, बारिस्टर-अट-ला" को दक्खिनी अफ्रिकाका एक पेचदार मुकद्दमा मिला। इसकी पैरवीके लिये अफ्रिका जाना पडा। ज्योंही जहाजसे उतरकर दरबनमें कदम रखा, त्योंही इनका माथा ठनका। यह लडनके बारिस्टर, बम्बईके मान्य अडवाकेट, दीवानके लडके, ऊचे हिन्दूवंशके बड़े इज्ज़तदार आदमी थे, जिनका बराबरीका आदर विलायतके बड़े लोग भी करते थे, जो लडनमें मेहमान समझे जाते थे, जिन्हें अँगरेज़ी रिआयाके सभी स्वत्वाधिकार, सभी हक हासिल थे, उन्हीं मिस्टर गाधीको वहाके लोग चमार और डोमसे भी नीच समझकर बरताव करने लगे। जब वहाके वकीलोंमें गिने जानेके लिये उन्होंने प्रार्थना की तब वहाके वकील समाजने घोर विरोध किया कि "काला कुली" हमारे समाजमें न मिलने पावे। बारे वहाकी सबसे ऊची अदालतने उन्हें वकील स्वीकार कर लिया और मिस्टर गाधीके विजयकी नींव पडी।

गाधीजीने इस तरह शुरूमें ही देखा कि भारतकी सन्तानोंकी दशा दक्षिण अफ्रिकामें अत्यन्त गिरी हुई है। परदेशमें उन्हें बडी नफरतकी निगाहसे देखा जाता है। नेटालके रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंने सवत् १९५०में गाधीजीसे बडा आग्रह किया कि आप इस देशमें रह जायँ और आगे आनेवाले राजनीतिक झगडोंमें सहायता दें। गाधीजीने परदेशमें दुःख उठानेवाले भाइयोंकी पुकार सुनी और वहीं ठहर गये। उन्होंने वहा "नेटाल इडियन काग्रेस" (नेटाल भारतीय-राष्ट्रसभा) नामकी सस्था स्थापित की और कई बरस उसके मन्त्री रहे। मन्त्रीकी हैसियतसे आपने अनेक आवेदनपत्र भेजे और नेटालकी पार्लिमेंटने जब एशिया-

वालोंको निकालनेका कानून बनाया तब आपने उसका इस प्रकार सगठित विरोध कराया कि वह कानून रद्द कर दिया गया। इसी प्रकारके एक और कानूनके रद्द करनेकी कोशिश की पर उसमें इतनी ही सफलता हुई कि सरकारने वादा किया कि जातिभेद इस कानूनमें न रखा जायगा।

सवत् १९५२में आप इसलिये भारतवर्ष लौट आये कि भारतकी जनताके सामने अफ्रिकामें उनकी दुर्दशाकी कथा सुनावें। आपने भारतमें आकर अनेक व्याख्यान दिये और पुस्तिकाएं छपवायी जिनका टूटा फूटा और बिगाडा हुआ समाचार रायटरवालोंने अफ्रिका पहुचाया जिसपर अफ्रिकाके गोरे इनसे बहुत सख्त नाराज हुए।

दक्खिनी अफ्रिकामें बहुत दिनोंसे गोरोंने अपना राज कर रखा है। पहले वहाके रहनेवालोंको बहकाकर और फँसाकर अमेरिकामें गुलाम बनाकर बेंचना इनका काम था, पर जबसे गुलामोंकी बिक्री अमेरिकामें उठा दी गयी तबसे यह लोग अफ्रिकामें बसकर अपने खेतों और खानोंमें और कल कारखानोंमें वहाके असली रहनेवालोंसे काम लेने लगे। अपनी कूटनीतिसे, चालाकी और धूर्त्ततासे गोरोंने वहा अपना राज कर लिया और जो अफ्रिकावासी इनकी गुलामी और कुलीगीरीमें रहे उन्हें रखकर बाकीको छलबलसे अलग कर दिया। परन्तु यह गोरे परिश्रमी न थे। बिना मजूरोंके इनका काम चल नहीं सकता था। कोई साठ बरस हुए कि इन्होंने हमारे देशमें अपने आरकाटी भेजे जिन्होंने बहकाकर हमारे देशके हजारो गरीबोंको अफ्रिकामें कुलीगीरी करनेको पहुँचाया। यही कुली जो पीछे घर न लौट सके वहीं परदेशमें बस गये और अपने पसीनेकी कमाइसे दिन काटने लगे। यह लोग मेहनती थे, शौकीन न थे, थोडीही पूजीमें इन्होंने रोजगार किये और धन पैदा करके घर लिये। खेत खरीदे। यह बातें देखकर गोरोंसे न रहा गया। राज्य

सामने लाशें उठायीं और घायलोंकी चिकित्सा की। इसमें हिन्दुस्तानियोंने जैसी वीरता दिखलायी उससे गोरे दग रह गये। अँगरेज सरकारने महात्माजीको सारजंट मेजर बनाया और तमगा दिया। पर असलमें यह इहसानमदी न थी बल्कि नेताको एक तरहका घूस था। इस सेवाका इनाम भारतवासियोंपर और अधिक जुलुमके रूपमें मिला।

बोअर-युद्ध खतम होनेपर महात्माजी भारत लौटे। इधर दक्षिण अफ्रीकामें मैदान खाली पाकर वहाकी सरकारने एशियावालोंके लिये एक खास मुहकमा बनाया। उसका नाम "एशियाटिक डिपार्टमेंट" रखा। मतलब यह था कि "कालों" के लिये अलग कानून बनाये जायँ और उनकी राहमें कठिनाइयां पैदा की जायँ। जब गाधीजी भारतसे लौटे, इन्होंने इसको दूर करनेके लिये आन्दोलन आरम्भ किया। सरकारको चेतावनी दी गयी, प्रतिनिधि भेजे गये, पर कौन सुननेवाला था।

संवत् १९६० में गाधीजीने एक छापाखाना मोल लिया और "इंडियन ओपिनियन" नामक पत्र निकाला, जिससे यह हलचल धूमसे चला। १९६१में जोहासवर्गकी भारतीय बस्तीमें प्लेगने जोर पकडा। गाधीजीने निडर होकर देशवाशियोंकी सेवा की।

इसके बाद ही नेटालमें सौ बीघा जमीन लेकर गाधीजीने "फीनिक्स सेटलमेंट" नामक आश्रम स्थापित किया। यहा वह भारतीय रहने लगे जिन्होंने गरीबीका बाना लिया था, जिन्होंने सच्चाईकी राहपर चलनेकी ठान ली थी। उधर गोरोंके अनुचित व्यवहारमें किसी तरह भी कमी नहीं आती थी। वह भारतीयोंकी राहमें रोडे अटकाते ही जाते थे। सवत् १९६३ में जब जुलूजातिने अगरेजोंसे लडाई छेडी तब भी महात्माजी और हिन्दुस्तानियोंने अगरेजोंकी न्यायबुद्धिपर विश्वास करके उनकी मदद की, उनके घायलोंकी जान बचायी और अपनी जानकी परवाह न की। इसका इनाम भारतवासियोंको एक अपमानजनक क़ानूनके

रूपमें मिला। उसने प्रत्येक भारतीयको कुली बनाया। सब भारतवासियोंसे रजिस्टरमें नाम लिखानेको कहा गया। साथ ही साथ कैदियोंकी तरह हिन्दुस्तानियोंसे यह भी कहा गया कि वह अपने अँगूठेकी छाप दें। इस कानूनके पास होते ही बडी खलबल मची। गांधीजी अधिकारियोंसे मिले। विलायत भी गये। पर यह सब व्यर्थ हुआ। लोगोंने ठान लिया कि मर जायँगे, मिट जायँगे, पर ऐसे अन्यायी कानूनके सामने माथा न नवावेंगे। स० १९६४ में सत्याग्रहकी लडाई छिडी। यह एक मारकेका दिन था कि गांधीजीने लोगोंमें एक नया बल डाल दिया। लोगोंने ठान लिया कि वैरीके पशुबलको आत्मबलसे जीतेंगे। बेडिया पहननेको तय्यार हो गये, मृत्युका सामना करनेकी हिम्मत आ गयी। ठान लिया कि चाहे कुछ भी हो अँगूठेकी छाप न देंगे।

सरकारी अफसरोंने दौरा शुरू किया। पर सौमें पचानवे हिन्दुस्तानियोंने बिलकुल इनकार किया। फल यह हुआ कि सत्याग्रही चोर जेलोंमें ठूसे जाने लगे। वह चुपचाप बिना कुछ कहे सत्यके लिये जेलमें चले गये। इस लडाईमें स्त्रियोंने जो वीरता दिखलायी उसपर अचम्भा होता है। कोई भी धर्मपथसे नहीं हटा। महात्माजी भी पकडे गये, कैदकी सजा हुई। जेलके कपडे पहनाये गये। कैदियोंका गन्दा खाना दिया गया। जंगली असभ्य मैले काफिरोंके साथ रहना पडा। घृणितसे घृणित काम लिया गया, नित्य पाखानातक उठाना पडता था। पर महात्माजीने सब खुशीसे सह लिया ... जील

भी पढायी। ... नको

... पनी

यह सब हुआ, पर सरकारने अपने वचन नहीं निबाहे। तीन महीने पीछे भी कानून मनसूख नहीं किया। गाधीजीने सत्याग्रह फिर छेडा और लोग फिर अपने सिद्धान्तोंके लिये लडनेको खडे हो गये। लगभग दो हजार हिन्दुस्तानी अपनी मानरक्षाके लिये जेलमें डाले गये। महात्माजी फिर पकडे गये और उनको दो महीनेकी कडी सजा मिली।

जेलसे छूटनेपर गाधीजी फिर देशबन्धुओंके कष्ट दूर करनेमें लगे। मिस्टर पोलकको भारत भेजा और आप विलायत गये। फल यह हुआ कि स० १९६८ के अन्तमें भारत सरकारने शतबधी मजदूरीकी रीतिको तोडना मजूर किया। इसके पीछे गाधीजीके बुलानेपर मान० गोखले भी दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। दक्षिनी अफ्रीकाके मत्रियोंने उन्हें बहकाया कि ४५) का कर उठा लिया जायगा और हिन्दुस्तानियोंके सब कष्ट दूर हो जायँगे। तीन अठवारे रहकर मान० गोखले भारत लौटे। पर हमारे कष्ट ज्योंके त्यों रहे। इस बीच सरकारने एक राक्षसी कानून और बना डाला जिससे हमारे विवाह बेकायदे ठहराये गये। इससे हमारी बडी बेइज्जती हुई। स्त्रियोंमें बडा जोश फैल गया। वे सत्याग्रहकी लडाईमें शामिल हो गयीं। श्रीमती गाधीने भी जेल जाना मजूर किया। चौदह स्त्रियोंके साथ उनको तीन मासकी कडी कैद हुई।

यह हलचल चारों ओर फैली और मजदूरोंकी एक बडी हडताल हो गयी। सब चारों ओरसे आकर न्यूकासल नगरमें जुट गये। गाधीजी चार हजार भारतवासियोंको लेकर ट्रासवालकी सीमापर पहुँचे। स्त्रिया छोटे बच्चे जवान और बूढे अपनी इज्जतके लिये उस "फौज"में शामिल थे। गाधीजी उस स्वाधीनताकी "फौज"के नेता थे। उनके धीरज और साहसके बलसे सब भारतवासी ट्रान्सवालमें घुस पडे। हिन्दुस्तानियोंका दल बढता गया। गाधीजी पकडे गये, उनको पन्द्रह महीनेकी सजा हुई। गाधीजीके साथी पकडकर नेटाल लाये गये। उनमेंसे पोलक

और फैलनबैक भी जेलमें डाले गये। चारों ओर पूरी हडताल हो गयी। पचीस हजार आदमियोंने गोरोंका काम छोड दिया। हडतालियोंको दबानेके लिये उनसे बडी बेरहमीका बरताव किया गया। बहुतेरे गोलीसे मार डाले गये।

भारतमें यह खबर पहुँचते ही चारों ओर जोश फैल गया। बडी बडी सभाएं हुईं। एन्डूरूज और पियरसन साहब तुरन्त जाचके लिये दक्षिण अफ्रीका पहुँचे। भारत सरकारने भी हमदर्दी दिखायी। असाढ १६७१ में दक्षिण अफ्रीकाकी सरकारने इंडियनरिलीफ ऐक्ट पास कर दिया। ४५)का कर तोड दिया गया। और हिन्दू मुसल्मानोंके विवाह नियमित समझे गये। सत्याग्रहकी पूरी जीत हुई।

अपने देशमें जिस जातिकी इज्जत नहीं, बाहर उसकी इज्जतकी रक्षा कौन कर सकता है? जो हिन्दुस्तानमें अपनी बादशाहत होती तो बाहर गये हुए अपने भाइयोंकी बेइज्जतीके जवाबमें हम कमसे कम उस देशसे असहयोग कर सकते थे। पर जिस पराधीनताकी दशामें हम हैं उस दशामें होते हुए भी एक वकीलने पराये देशमें जाकर अपने चरित्रबलसे अपने देशकी लाज रखी, मुर्दा कुलियोंमें जान डाल दी, उन्हें निश्चय करा दिया कि अपनी इज्जतके लिये प्राण दे देना अच्छा है पर गुलामी मजूर करना अच्छा नहीं।

महात्मा गांधीने जेलमें रहकर तपस्या की। उन्होंने जेलमें ही अपनी ध्यानशक्ति और धारणा बढायी। अच्छेसे अच्छे विचार जेलके एकांतमें पके पोढे हो गये। कडेसे कडे दुःख उठानेकी शक्ति जेलमें ही दृढ हो गयी। राजनीतिक आन्दोलनके साथ ही साथ आत्मसंयम और योगबलका अभ्यास बराबर बढता और दृढ होता गया। सोना ज्यों ज्यों तपाया गया कुन्दन ही निकलता आया।

महात्माजीका बहुत बडा काम अपने देशमें ही होना था

जिसके लिये दीन भारत बडी मुद्दतसे टकटकी बाधे अपने सुपूतकी ओर आशा लगाये देख रहा था। महात्माजीने दक्षिण अफ्रीकामें बैठे ही भारतकी दशापर बहुत कुछ विचार किया। इसका पता वहींसे निकलनेवाले आपके इ डियन ओपीनियनके उन गुजराती भाषाके लेखोंसे चलता है जो पीछेसे "हिन्द स्वराज्य"के नामसे पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। बम्बई सरकारने इस पुस्तकका प्रचार रोकना चाहा था पर रुक न सका। महात्माजीने इसका अँगरेजी तरजुमा करके अँगरेजोंको भी बता दिया कि देख लो इसमें यह है।

आपने अपने सिद्धान्तोंके फैलाने और सिखानेके लिये अहमदाबादमें एक सत्याग्रहाश्रम खोला, जहा पुराने ढगसे नयी शिक्षा दी जाती है और बालकोंको त्याग सेवा परोपकार सहनशीलता आदि गुण सिखाये जाते हैं। आपने सारे भारतके लिये एक ही भाषा होनेकी जरूरतपर ध्यान दिया। आपकी मददसे इधर पाच-सात बरसोंमें हिन्दीका बहुत जोर बँध गया है। आपहीके किये आज मद्रासमें भी हिन्दीका प्रचार हो रहा है। महात्माजीको इसीलिये हिन्दीभाषियोंने अपने साहित्य-सम्मेलनके आठवें अधिवेशनका सभापति बनाया था।

चम्पारन और खेड़ा

विहारके चम्पारन जिलेमें सैकडों बरससे अँगरेज निलहोंका अधिकार चला आया है। उनके अत्याचारसे सारा जिला पिसता आता था। कोई उनके ऊपर बीतते हुए दु खोंका देखनेवाला न था। न नेताओंको फुरसत थी, न सरकारको। अन्तमें लोगोंने महात्माजीकी शरण ली। सारा चम्पारन उथल-पुथल हो गया। निलहे गोरे घबरा उठे। जो सरकार युगोंसे कानोंमें तेल डाले पडी थी, उसे एक कमीशन बैठाना ही पडा, जिसमें महात्माजी भी रखे गये। उसमें अकेले वेही ऐसे गैर-

सरकारी मेम्बर थे, जो सच्चे लोकहितके भावसे भरे थे इसकी जाचोंसे चम्पारनकी प्रजाके बहुतसे दुःख दूर हो गये। कमीशनोंके इतिहासमें यह भी एक अनोखो बात है।

इसके बाद आपने गुजरातमें खेडेकी सहायतापर कमर बाधी। अकाल होते हुए भी सरकार मालगुजारी लेनेपर ही तुली थी। महात्माजीने सत्याग्रहका उपदेश दिया। किसानोंने माल असबाब जब्त होने और जेल जानेका भी डर न किया और मालगुजारी बन्द कर दी। गाय बैल जगह जमीन छिन जाने और सजा पानेपर भी लोग सत्याग्रह-व्रतसे न डिगे। लाचार हो सरकारको प्रजाके इच्छानुसार अकालके समयतक मालगुजारीकी वसूली रोक देनी पडी। यह सबसे भारी जीत थी। इससे महात्माजीपर सबकी श्रद्धा बढ गयी।

महासमर और डायरशाही

सवत् १९७१ में युरोपकी लडाई छिडी। जब भारतपर भी हमला होनेका डर हुआ, सरकारने हिन्दके नेताओं और राजा-महाराजाओंको एक सभा दिल्लीमें की और सहायताकी अपील की। इसमें महात्माजी भी बुलाये गये। पर पहले दिन यह कहकर आप सभासे उठकर चले आये, कि भारतके वृद्ध नेता लोकमान्य तिलकको न बुलाकर सरकारने बडी भूल की है, उसके विरोधमें मैं इस सभाको त्यागता हू, किन्तु दूसरे दिन बडे लाटके समझानेपर आये और सहायतापर तैयार हुए। आपने कहा कि जो लडाई करना नहीं जानता उसे स्वराज्य पानेका कोई अधिकार नहीं है। साथ ही इस समय देशके कल्याणके लिये सरकारकी मदद करना हमारा कर्तव्य है। जहा और नेता केवल सरकारकी तारीफमें स्पीचें ही झाडकर रह गये, वहा गाधीजीने बेशुमार रंगरूट देकर सरकारकी बडी मदद की। वे समझते थे कि मैं यह मदद न्यायके पक्षमें कर रहा हू।

लड़ाई बन्द होते ही सरकारका रंग बदलने लगा। एक स्वरसे विरोध होनेपर भी देशके राजनीतिक आन्दोलनको सदाके लिये नष्ट करनेका ब्रह्मास्त्र—रौलट ऐक्टके रूपमें—तैयार किया गया। इससे सारे भारतपर राजद्रोह लगता था और पुलीसके हाथमें भलेमानसोंको सतानेका पूरा अख्तियार मिलता था। छठी अप्रैल १९१९ ईस्वीको इसी अत्याचारी कानूनके विरोधमें महात्माजीने सारे देशमें हड़ताल और उपवासकी आज्ञा दी जिसमें यह बात सारा संसार जान जाय कि भारतवर्ष इस कानूनसे अपनी आत्माका कितना बड़ा अपमान समझता है। सरकारने इस हड़तालको रोकनेकी भरपूर कोशिश की, यहांतक कि दिल्ली पंजाब और कलकत्तेमें गोलियां चल गयीं। कितने ही खून हुए। १३ अप्रैलको जलियानवाला बागमें जनरल डायरने शान्त जनताको अपने गोली बारूदसे लगातार दस मिनिटतक भूना। पंजाब भरमें भांति भांतिके जुल्म हुए जिनकी तहकीकात कांग्रेसने की। महात्माजी इस जांच-कमिटीके सभापति थे। इस कमिटीने जो 'ब्यौरा छपवाया है उससे पंजाबके हाकिमोंके ब्रिटिश न्यायकी पूरी पोल खुल जाती है और स्वराज्यकी आवश्यकता' सोलह आना सिद्ध हो जाती है। महात्माजीकी ही आज्ञासे छठी और तेरहवीं अप्रैलको हरसाल उपवास और हड़ताल हुआ करती है।

पंजाबके हत्याकाण्डपर महात्माजीने सत्याग्रहका काम रोक दिया था। इसपर पीछेसे जो हंटर-कमेटी बैठी थी उसे सारा दोष सत्याग्रहके सर मढ़ देनेका और ब्रिटिश अत्याचारियोंके काले कामोंपर सफेदी करनेका अच्छा मौका मिल गया। इस कमेटीका पक्ष विलायतके पार्लिमेंटतकने लिया जिससे लोगोंका ब्रिटिश न्यायपर रहासहा विश्वास भी मिट गया। उधर युरोपकी सन्धिने रूमको मित्रराज्योंमें बांट लिया, मुसलमानोंके प्राय सभी देश हड़प लिये जिससे खिलाफत आन्दोलन भी उठ खड़ा हुआ। इस खिलाफत आन्दोलनके नेता भी गांधीजी ही हुए।

असहयोगकी शान्तिपूर्ण लड़ाई

जब पंजाबमें इतने बड़े हत्याकाडों और बेइज्जतियोंपर भी भारत और विलायत दोनोंकी सरकारोंने न्याय न किया, बल्कि अगरेजोंने जनरल डायरको खून करनेपर चन्दा करके इनाम दिया और जब रूमके मामलेमें प्रधान मत्री लायड जार्ज अपने किये हुए वादे भी तोड़ बैठे, तब लाचार हो गांधीजीने असहयोग प्रस्ताव देशके सामने रखा। महात्माजीने उन सभी देशभक्तोंसे जिनके जी पंजाबके हत्याकाड और तुर्कोंके निपटारेसे दु खी हुए सरकारसे असहयोग करनेकी अपील की। सितम्बर १९२०में इण्डियन नेशनल-कांग्रेसने एक विशेष अधिवेशन कर इसे बहु-मतसे स्वीकार कर लिया। यह प्रस्ताव सच्चे और झूठे नेताओंकी पहचान करानेवाला है और प्रत्येक देश-भक्तिका दम भरने वालोंको सबसे अधिक त्याग करनेको कहता है। देश त्यागके लिये तैयार हो गया, उपाधिधारियोंने उपाधिया छोड़ीं, वकीलोंने वकालत बन्द की, डाक्टरोंने डाक्टरी छोड़ी। सरकारी नौकरोंने नौकरिया त्याग दीं। सरकारी कचहरियोंमें मामले मुकदमे घट गये। पंचायतें होने लगीं, राष्ट्रीय स्कूल खुलने लगे। विद्यार्थियोंमें हलचल सा मच गया, वे धड़ाधड़ स्कूल कालिज छोड़ने लगे। कई राष्ट्रीय विद्यालय और विद्यापीठ स्थापित हुए और हो रहे हैं। सरकारने भी दमन जारी कर रखा है, लोगोंको धड़ाधड़ जेल भेज रही है तो भी लोग नहीं मानते, हँसते जेल जाते हैं और उनकी जगह तुरन्त दूसरे आगे बढ़ते हैं। नागपुरमें जो कांग्रेस हुई उसमें एक स्वरसे सारे हिन्दुस्तानने बिना किसी विरोधके असहयोग सिद्धान्तको मान लिया। कई म्युनिसि-पल्टियोंने जहा बड़े लाटका स्वागत करनेसे इनकार किया था वहा धूमधामसे महात्माजीका स्वागत किया और सरकारी सहायता लेना बन्द कर दिया। यह काम जारी है। निदान महात्मा-

जीके नेतृत्वमें स्वराज्यकी गाडो वडी शान्तिसे आगे वढो जा रही है।

डायरशाही कलकत्ता रायबरेली आदि अनेक स्थानोंमें दुहरायी गयी। असहयोगकी राहमें रोडे डाले गये पर आत्मबलकी गाडीकी चालमें रुकावट न आयी।

महात्माजीका व्यापक प्रभाव

आज भारतवर्षमें ऐसी बात हो रही है जिसकी कोई आशा नहीं करता था। गाव गावमें, कोने कोनेमें, महात्माजीका संदेशा विजलीकी तरह पहुँच चुका है। वच्चा वच्चा उत्थानवाला वाग और महात्मा गाधीको याद करता है। गावके लोग तो "महात्माजी" "गाधी वावा" "गाधी महाराज" "गधारी वावा" आदि नामोंसे महात्माजीको पूजते हैं, मन्नतें मानते हैं, ईश्वरका अवतार समझते हैं। सैकडों चमत्कार महात्माजीके नामपर नित्य सुननेमें आते हैं। महात्माजोके दर्शनोंको सभी तरसते हैं। चरण छूनेको वडा भाग समझते हैं। पर महात्माजी वारम्वार कहते हैं कि "भाई मैं साधु वैरागी नहीं हू, सिद्ध नहीं हू, साधारण गृहस्थ हू, वाल वच्चोंवाला हू, राजनीतिको धार्मिक दायरेके अन्दर रखना चाहता हू। मुझे साधु न समझो, मेरे चरण मत छुओ।" इतनी दुहाईपर भी श्रद्धा नहीं घटती और इस वारेमें लोग उनकी कम सुनते हैं। कर्नल वेजवुडका कहना है कि महात्माजी जग हाथ उठाकर असीस दें तो लाखों जानें उनपर निछावर हों, पर महात्माजी ऐसे शुद्ध और सच्चे हैं कि इस श्रद्धा और विश्वासपर भी अपनी साधुता किसी तरहपर सावित नहीं करना चाहते।

महात्माजोके सुधारके तरीके वडे विचित्र हैं और साथ ही अत्यन्त प्रभावशाली हैं। चम्पारनमें एक तालावके पास ही लोग शौच करके गन्दा कर देते थे। पासके रहनेवालोंकी यह गन्दी आदत छुडानी थी। महात्माजी एक दिन चार वजे तडके उठकर

टोकरी फावडा लेकर तालाबके पास गये। वहां एक गहरा गड्ढा खोदकर तय्यार किया। जब लोग तालाबके पास गन्दा करके उठते, महात्माजी फावडा लेकर साफ करनेको पहुँच जाते। बैठनेवाले अत्यन्त लज्जित हो गये। बात मशहूर हो गयी। अब तालाब कभी गन्दा नहीं किया जाता।

आज महात्माजी भारतवर्षके सच्चे हाकिम और बिना मुकुट सिहासनके राजा हैं। राजनीतिके नाते राम और कृष्णके पीछे महात्माजी ही एक ऐसे पुरुष हुए हैं जिसने सबके हृदयमें जगह कर ली हो। सरकार अपने मतलबसे चाहे असहयोग आन्दोलनको कितनी ही गालिया दे ले पर महात्मा गाधोकी सचाईपर उनके घोर शत्रु भी आक्षेप नहीं करते। उनका रूप शान्ति और दयाकी मूर्त्ति है। उनका रहनसहन हदसे ज्यादा सादा है। इन सब बातोंपर भी आज जहा जहा वह पधारते हैं लाखों आदमी उनका प्रेम और भक्तिसे स्वागत करते हैं, वह इज्जत करते हैं जो बादशाहोंको नसीब नही हुई। दिल्लीमें जब बादशाहके चचा कनाटके ड्यूक पहुँचे, मातमसराका समाँ था, सारे नगरमें हडताल थी, शहर उजाड था। दो दिन पीछे महात्माजी पहुँचे तो चादनीचौकमें लोगोंने कमखाबके थानोंसे सडकोंकी सजावट की। दूकानें आरास्ता थी, लाखों आदमियोंने स्वागत किया, मालूम होता था कि भारतके सच्चे राजा आज पधारे हैं।

महात्माजीके उपदेश

*महात्माजीका जीवन एक जीता जागता उपदेश है। ससार-*के उपदेश करनेवाले प्राय कहते ज्यादा हैं, करते कम हैं, पर महात्माजी करते ज्यादा हैं, कहते कम हैं। कितने ही देशके नेता हो गये और हैं जिनको इज्जत लोग दूरसे ही करते हैं, परन्तु जब उनके पास रहनेका अवसर आता है तो उनका आदर पास आनेवालोंकी निगाहमें घट जाता है। महात्माजीसे जितनी ही

नजदीकी होती है उतना ही उनके प्रति आदर बढता है। उतना ही हृदयमें पवित्र भावोंका उदय होता है, जान पडता है कि हम पवित्र वायुमण्डलमें आ गये। कोई समय था कि बारिस्टरकी वेषभूषा थी, वही रोबदाब था, वही शान थी, वही दौलत और दबदबा था। आज आप एक दीन किसानके वेषमें रहते हैं। कपडे अत्यन्त सादे खद्दरके, परन्तु साफ सुथरे, भाव भी अत्यन्त सीधा सादा, परन्तु दया और करुणासे भरा। बात खरी सच्ची और सीधी। भोजन अत्यन्त सादा। रोटी दूध, फल आदि। आहार विहार युक्त। ब्रह्मचर्य्य अहिंसा अद्रोह यह तो मानों जीवनके मूल मंत्र हैं। देश और जातिके विविध प्रश्नोंपर बराबर विचार। प्राचीन और भारतीय रीतिनीतिकी पूरी भक्ति। पाश्चात्य रीतिनीतिका भरसक बहिष्कार। वकालत और डाक्टरीसे आपको केवल जबानी विरोध नहीं है। आपको बारिस्टरी छोडे मुद्दत हुई। आपकी रायमें डाक्टरीसे देशको लाभके बदले हानि अधिक हो रही है। खानेपीने आहारविहारमें आदमी अपने मनको बसमें नहीं रखता, बेपरवाईसे जो जी चाहता है कर डालता है, क्योंकि उसे भरोसा रहता है कि हम दवा इलाज करके अच्छे हो जायँगे। सीधी सादी जिंदगी संयमसे बितानेवाला सदा सुखी रहता है। आत्माके ऊपर रोगी शरीरका बोझा नहीं रहता।

धर्म, नीति, अचारके सम्बन्धमें महात्माजीके सैकडों लेख, सैकडों व्याख्यान हैं। आपके वाक्योंमें शब्दबाहुल्य नहीं होता। वक्ताओंकी तरह नमक मिर्च मसालेकी यहां जरूरत नहीं। जितनी बातें कही जाती हैं, वह पहले अच्छी तरह विचार ली जाती हैं, फिर व्यवहारकी कसौटीपर कसकर परख ली जाती हैं कि सची और खरी हैं। यही बात है कि इनके लिये दिलतक सीधी राह होती है। साथ ही, वह बड़े बडे दम्भी जो अपने वचन और कर्मको एक समान नहीं रखते,

जिनके स्वभावमें असत्यकी निर्वलता है, जो अनीश्वरवादी हैं, अज्ञानी हैं, स्वार्थी हैं, जो देशके सच्चे भक्त नहीं हैं, उनके हृदयका कपाट इन वचनोंके लिये बन्द रहता है। परन्तु वह भी महात्माजीके वाक्योंकी सत्यता और शुद्धताकी गवाही देते हैं।

आजकल जितने बड़े बड़े नेता हैं सभी महात्माजीको अपना अगुआ मानते हैं, कांग्रेसका प्रेसिडेंट चाहे जो हो परन्तु देशकी बागडोर इस समय महात्माजीके हाथमें है। परन्तु कोई ऐसा न समझे कि उस जर्ज्जर और दुर्बल शरीरको जिसका आज मोहनदास नाम है कैद करके अथवा नष्ट करके कोई देशके इस भारी आन्दोलनको रोक सकेगा, आज गांधी किसी देह या अस्थिपंजरका नाम नहीं रहा। आज गांधी साढ़े तीन हाथके हड्डी चमड़ेमें बँधे प्राणीका नाम नहीं है। आज गांधी उस दिगदिगन्त व्यापी आदर्शका नाम है जिसका मन्दिर हर भारतीयका हृदय है, जिसका रूप विराट् भारतका रूप है, जिसका नाम स्वाधीनताका आत्मसंयमका महामन्त्र है, जिसकी सहज लीला सारे भारतमें एकताका प्रचार है। जिसका ध्यान बन्धनसे छुड़ानेवाला है, जिसकी धारणा पूर्ण स्वराज्य है।

महात्मा मोहनदास सरीखे असहयोगेश्वर जहां हों और भारत सरीखा कर्मयोगी तीरन्दाज जहां हो वहां विजयका डंका अवश्य ही बजेगा, धर्म्मका रथ आगे बढ़ता चलेगा, लक्ष्मी चेरी हो साथ रहेगी।

३० कल कारखाने

पाठक—आप पच्छांहीं सभ्यताको निकाल बाहर करनेकी बात कहते हैं तब तो आप यह भी कहेंगे कि हमें कलकारखानोंकी बिलकुल ही जरूरत नहीं ?

सम्पादक—यह प्रश्न उठाकर आपने मेरे घावको हरा कर दिया है। जब मैंने श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्तकी

आर्थिक इतिहास" पढी मुझे रुलाई आ गयी। फिर जब उसका विचार करता हू तो मेरा दिल भर आता है। इन कलकारखानोंकी बाढने ही तो हिन्दुस्तानको चौपट किया। मचेस्टरने हमलोगोंको जो हानि पहुँचायी है। उसका हद हिसाब नहीं है। हिन्दुस्तानकी कारीगरीका प्राय नाश हो गया, यह मंचेस्टरकी ही करतूत है।

पर मैं भूलता हू। मचेस्टरको दोष कैसे दिया जाय? हमलोग वहाके कपडे पहनने लगे तो मचेस्टर बनाने लगा। जब मैंने बगालकी बहादुरीका वर्णन पढा तो मुझे आनन्द हुआ। बगालमें कपडेकी मिलें न थी तभी लोगोंने फिर असली धधा पकड लिया। बगाल बम्बईकी मिलोंको बढावा देता है यह ठीक है, पर बगाल कलकारखानोंको एकदम त्याग देता तो और भी अच्छा था।

कलोने युरोपको उजाडना आरभ कर दिया है और उसकी हवा हिन्दुस्तानमें भी बह रही है। कलें आजकलकी सभ्यताकी मुख्य निशानी हैं और महापाप हैं, यह तो मैं अच्छी तरह देख रहा हू।

बम्बईकी मिलोंमें जो मजदूर काम करते हैं वे गुलाम हो गये हैं। उनमें जो स्त्रिया काम करती हैं उनकी दशा देखकर सबका कलेजा थर्रा जायगा। मिलोंके न रहनेसे वे औरत कुछ भूखों नहीं मरती थीं। यह कलोंकी आधी तेज हो गयी तो सारा देश विपदके समुद्रमें पड जायगा। हिन्दुस्तानको बडी दीन दशा हो जायगी।

मेरी बात मुश्किल सी जान पडेगी, पर यह कहना मेरा फर्ज है कि हिन्दुस्तानमें मिलें बढानेकी अपेक्षा आज भी मचेस्टरको दाम देकर उसका मडा हुआ कपडा काममें लाना अच्छा है क्योंकि उसके कपड काममें लानेसे केवल पैसेही जायँगे। अपने हिन्दुस्तानमें मचेस्टर बनानेसे अपना पैसा हिन्दुस्तानमें ही रहेगा, पर वह अपनी जान ले लेगा, खून निकाल लेगा, क्योंकि

अपने चरित्रका नाश कर देगा। मिलमें काम करनेवालोंके चरित्रका पता उनसे पूछिये जिन्होंने उसमेंसे पैसे इकट्ठे किये हैं, उनका चरित्र दूसरे पैसेवालोंसे अच्छा होनेकी सभावना नहीं है। अमेरिकाके * राकफेलरसे भारतीय राकफेलर अच्छा होगा, यह समझना भूल है। गरीब हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो सकेगा पर चरित्र खोकर पैसेदार बना हुआ हिन्दुस्तान कभी स्वाधीन न हो सकेगा।

मुझे तो मालूम होता है कि हमें यह मानना पड़ेगा कि अँगरेजी राज्यको टिका रखनेवाले ये धनी ही हैं। उनका स्वार्थ अँगरेजोंके यहा रहनेमें ही है। पैसा आदमीको रक बना देता है। इसके जाडकी दूसरी वस्तु तो दुनियामें विषय है। ये दोनों ही विषय जहरीले हैं। इसका जहर सापके जहरसे भी घातक है। साप काटता है तो यह शरीर लेकर ही छोड देता है, पैसे या विषयका जहर चढता है तब देह, जीव, मन सब देकर भी पिण्ड नहीं छूटता। देशमें मिलें बढनेसे खुश होनेकी कोई बात नहीं है।

पाठक–तो क्या मिलें बन्दकर दी जाय?

सम्पादक—कठिन बात है। जमी हुई जडको उखाडना कठिन होता है। इससे पहलेहीसे काम शुरू न करना अधिक बुद्धिमानी समझी जाती है। मिल मालिकोंकी ओर घृणासे देखने की जरूरत नहीं। उनपर दया करनी चाहिये। यह सम्भव नहीं कि वे एकाएक मिलें छोड दें पर हम उनसे प्रार्थना कर सकते हैं कि वे हिम्मत न बढावें। वे भलाईके रास्ते पड जायँ तो धीरे धीरे अपना काम घटाते चले जायँ। वे खुद ही पुराने पवित्र चरखे घर घर खडे कर सकते हैं। लोगोंका बनाया हुआ कपडा लेकर बेच सकते हैं।

---

* इससे बड़ा धनी संसारमें शायद ही कोई हो। इसका जन्म संवत् १८९६ में हुआ था। इसने अनुचित रूपसे बहुत धन कमाया है। पर इसने कई बड़ी बड़ी संस्थाओंको दान देकर बड़ा लाभ भी पहुँचाया है।

सम्पादक

अगर वे यह काम न करें तो भी लोग खुद कलके कपडेको काममें लाना बन्द कर सकते हैं।

पाठक—खैर, यह तो कपडेकी बात हुई। पर कलकी तो अनगिनत चीजें हैं। वे या तो परदेशसे ली जायँ या अपने यहा कलें रोपी जायँ।

सम्पादक—यह बिलकुल सच है कि अपने देवतातक जर्मनीकी कलमेंसे गढकर आते हैं। फिर सुई दियासलाई और झाड फानूसकी तो कथा ही क्या रही? मेरा तो एक ही जवाब है। जब कलकी चीजें नहीं बनी थी तब हिन्दुस्तान क्या करता था? वही आज भी करेगा। जबतक हाथसे आलपीनें न बना लें तबतक बिना आलपीनकेही काम चलावेंगे। झाड फानूसोंको किनारे कर देंगे। दीयेमें तेल डालकर अपने खेतकी उपजो बत्ती बनाकर काम चलावेंगे। उनसे आखें बचेंगी, पैसे बचेंगे, स्वदेशो रहेंगे, स्वराज्यको धूनी जगावेंगे।

ये सभी बातें सभो मनुष्य एक ही बार करने लगेंगे या एकही वक्त कितने मनुष्य कलकी बनी वस्तुओंका त्याग कर देंगे यह नहीं होगा। अगर यह विचार ठोक है तो ऐसी चीजें मिलती जायँगी जिन्हें हम छोड सकते हैं और धीरे धीरे सभी कलकी चीज छोड देंगे। हमेशा थोडी थोडी चीजें छोडते जायँगे। दूसरे भी ऐसा ही करेंगे। पहले विचार बाधनेका इरादा पक्का करनेकी जरूरत है, फिर उसके अनुसार काम करनेकी। पहले एक ही आदमो करेगा। फिर दस, फिर सौ, जैसे खरबूजा रग पकडता है, सभो करने लगेंगे। समझ लीजिये, बात बहुत सहज है। हमें बैठे बैठे दूसरेकी राह देखनेकी जरूरत नहीं। हमें तो फौरन काम शुरू कर देना चाहिये। जो नहीं करेगा उसका मौका निकल जायगा। जो समझ बूझकर भी नहीं करेगा वह दभी समझा जायगा।

पाठक—ट्रामगाडी और बिजलीके लिये क्या कहते हैं?

सम्पादक—इस सवालमें अब कुछ जान नहीं रह गयी। जब हमने रेलोंका ही नाश कर डाला तब ट्रामोंकी तो हकीकत ही क्या ? कलें तो बाबीकी तरह हैं। उसमें एक नहीं हजारों साप हैं। एकके बाद एक लगे हुए हैं। जहा कलें हैं वहा बडा शहर है। जहां बडे शहर हैं वहा ट्रामगाडी और रेलगाडी भी हैं। वहा बिजली बत्तीकी भी जरूरत होगी। इगलैंडमें भी गावोंमें बिजलीकी बत्ती और ट्रामें नहीं हैं, आप यह जानते होंगे। सच्चे वैद्य और डाकृर आपसे कह देंगे कि जहा रेलगाडी ट्रामगाडी वगैरह साधन बढ़े हैं वहा लोगोंकी तन्दुरस्ती बिगडी हुई पायी गयी है। मुझे याद है कि एक शहरमें जब पैसेकी तगी आयी तो ट्राम, वकील तथा डाकृरोंकी आमदनी घटी और लोग तन्दुरुस्त हुए।

कलोंका मुझे गुण तो एक भी याद नहीं आता। ऐबोंका तो पोथा तैयार हो जायगा।

पाठक—यह कुल लिखी हुई बातें कलकी मददसे छपेंगी उसकी मददसे बेची जायँगी, यह कलोंका गुण है या अवगुण ?

सम्पादक—यह जहरसे जहर नाश करनेका उदाहरण है, यह कुछ कलोंका गुण नहीं है। कलें मरते मरते कह जाती हैं कि होशियार, खबरदार, मुझसे तुम कुछ लाभ नहीं उठा सकते। कल पुरजोंका पागलपन जिन्हें हुआ है उन्हें ही छापेका लाभ मिलेगा।

पर मूल बात न भूलियेगा। कलें खराब चीज हैं इसे मनमें खूब बैठाइये। फिर धीरे धीरे उसे काटिये। प्रकृतिने ऐसा सीधा रास्ता बनाया ही नहीं है कि कोई चीज इच्छामात्रसे तुरन्त मिल जाय। कलोंको जब हम बुरा समझने लगेंगे तब चलीही जायँगी।

—महात्मा गाधी

अगर वे यह काम न करें तो भी लोग खुद कलके कपडेको काममें लाना बन्द कर सकते हैं।

पाठक—खैर, यह तो कपडेकी बात हुई। पर कलकी तो अनगिनत चीजें हैं। वे या तो परदेशसे ली जायँ या अपने यहा कलें रोपी जायँ।

सम्पादक—यह बिलकुल सच है कि अपने देवतातक जर्मनीकी कलमेंसे गढकर आते हैं। फिर सुई दियासलाई और झाड फानूसकी तो कथा ही क्या रही? मेरा तो एक ही जवाब है। जब कलकी चीजें नही बनी थीं तब हिन्दुस्तान क्या करता था? वही आज भी करेगा। जबतक हाथसे आलपीनें न बना लें तबतक बिना आलपीनकेही काम चलावेंगे। झाड फानूसोंको किनारे कर देंगे। दीयेमें तेल डालकर अपने खेतकी उपजी बत्ती बनाकर काम चलावेंगे। उनसे आखें बचेंगी, पैसे बचेंगे, स्वदेशी रहेंगे, स्वराज्यकी धूनी जगावेंगे।

ये सभी बातें सभी मनुष्य एक ही बार करने लगेंगे या एकही वक्त कितने मनुष्य कलकी बनी वस्तुओंका त्याग कर देंगे यह नहीं होगा। अगर यह विचार ठीक है तो ऐसी चीजें मिलती जायँगी जिन्हें हम छोड सकते हैं और धीरे धीरे सभी कलकी चीज छोड देंगे। हमेशा थोडी थोडी चीजें छोडते जायँगे। दूसरे भी ऐसा ही करेंगे। पहले विचार बाधनेका इरादा पक्का करनेकी जरूरत है, फिर उसके अनुसार काम करनेकी। पहले एक ही आदमी करेगा। फिर दस, फिर सौ, जैसे खरबूजा रग पकडता है, सभी करने लगेंगे। समझ लीजिये, बात बहुत सहज है। हमें बैठे बैठे दूसरेकी राह देखनेकी जरूरत नहीं। हमें तो फौरन काम शुरू कर देना चाहिये। जो नही करेगा उसका मौका निकल जायगा। जो समझ बूझकर भी नहीं करेगा वह दमी समझा जायगा।

पाठक—ट्रामगाडी और बिजलीके लिये क्या कहते हैं?

सम्पादक—इस सवालमें अब कुछ जान नहीं रह गयी। जब हमने रेलोंका ही नाश कर डाला तब ट्रामोंकी तो हकीकत ही क्या ? कलें तो बावीकी तरह हैं। उसमें एक नहीं हजारों साप हैं। एकके बाद एक लगे हुए हैं। जहा कलें हैं वहा बडा शहर है। जहा बडे शहर हैं वहा ट्रामगाडी और रेलगाडी भी हैं। वहा बिजली बत्तीकी भी जरूरत होगी। इंगलैंडमें भी गावोंमें बिजलीकी बत्ती और ट्रामें नहीं हैं, आप यह जानते होंगे। सच्चे वैद्य और डाक्टर आपसे कह देंगे कि जहा रेलगाड़ी ट्रामगाडी वगैरह साधन बढ़े हैं वहा लोगोंकी तन्दुरुस्ती बिगडी हुई पायी गयी है। मुझे याद है कि एक शहरमें जब पैसेकी तंगी आयी तो ट्राम, वकील तथा डाक्टरोंकी आमदनी घटी और लोग तन्दुरुस्त हुए।

कलोंका मुझे गुण तो एक भी याद नहीं आता। ऐबोंका तो पोथा तैयार हो जायगा।

पाठक—यह कुल लिखी हुई बातें कलकी मददसे छपेंगी उसकी मददसे बेची जायँगी, यह कलोंका गुण है या अवगुण ?

सम्पादक—यह जहरसे जहर नाश करनेका उदाहरण है, यह कुछ कलोंका गुण नहीं है। कलें मरते मरते कह जाती हैं कि होशियार, खबरदार, मुझसे तुम कुछ लाभ नहीं उठा सकते। कल पुरजोंका पागलपन जिन्हें हुआ है उन्हें ही छापेका लाभ मिलेगा।

पर मूल बात न भूलियेगा। कलें खराब चीज हैं इसे मनमें खूब बैठाइये। फिर धीरे धीरे उसे काटिये। प्रकृतिने ऐसा सीधा रास्ता बनाया ही नहीं है कि कोई चीज इच्छामात्रसे तुरन्त मिल जाय। कलोंको जब हम बुरा समझने लगेंगे तब चलीही जायँगी।

गाधी

३१ मनुष्यके अधिकार

मनुष्य-समाज और शासन इनका आपसमें जो सम्बन्ध है उसके विषयमें हम लिख चुके हैं। शासनकी दो तीन प्रचलित प्रणालियोंका भी हाल थोडेमें दे चुके हैं। परन्तु शासनप्रणाली-का सबसे अच्छा ढग कौनसा है, इसपर हमने अभीतक कुछ नहीं कहा, और न युरोप और अमरीकाकी प्रजातन्त्र राज्यप्रणाली-हीका कुछ वर्णन किया है। इसके पहले कि हम उन विषयोंको छेडें, हम यह निहायत जरूरी समझते हैं कि मनुष्यके अधिकारों-का थोडासा वर्णन कर दें। क्योंकि राजनीति-विज्ञानकी सारी इमारत इन्हीं अधिकारोंकी नींवपर खडी है। इसलिये सबसे पहले हम उन्हींके विषयमें कुछ निवेदन करते हैं।

जिस भूमिपर हम रहते हैं, वह किसी खास आदमीकी जाय-दाद नहीं है। ईश्वरने किसीके नाम पट्टा नहीं लिख दिया है कि इतने बीघा भूमि मैं तुमको देता हूं। यह सबके भोगके लिये है। प्रत्येक मनुष्य इस संसारमें किसी खास उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये उत्पन्न हुआ है और अपनी शारीरिक अथवा मानसिक शक्तियोंके अनुसार उसकी पूर्त्ति उसपर लाजिम है। मनुष्यको अपनी उन्नतिके लिये दो साधनोंकी सबसे अधिक जरूरत है—प्रथम काम करनेकी स्वतन्त्रता, दूसरे शरीररक्षाके लिये अन्न। इसलिये न्याय यह है कि कोई मनुष्य इनसे वंचित न हो, सबको बराबर मौका इनके ग्रहण और उपयोगका मिले। अब यदि ध्यानपूर्वक विचारें तो मालूम होगा कि सबसे बडा साधन और जरूरी वस्तु मनुष्यके लिये अन्न है। यदि अन्न न मिले तो उसकी सभी आशा-ओंपर ओले पड जायँ।

ईश्वरकी कृपासे भूमिकी पैदावार मनुष्यकी जरूरतोंसे अधिक है। और यदि मनुष्य प्रकृतिके नियमोंको जानता हो तो वह और भी उपजाऊ हो सकती है। अब प्रश्न यह है कि क्यों फिर लाखों

आदमी हर साल भूखों मरते हैं? इसका उत्तर स्पष्ट है। जिसके लिये दस बीघा भूमि काफी है, वह दस सौ या दस हजार बीघा भूमिका मालिक बना बैठा है और जो पैदावार उससे होती है उसको अपना समझे हुए है। उसे औरोंको वह तभी देगा यदि उसके बदले उसे रुपया मिलेगा। रुपये, पैसेसे वह अपने ऐश-आरामके सामान खरीदता है। जिन कृषकोंने ज्येष्ठ आषाढकी धूप सहकर अन्न पैदा किया था वे तो भूखों मरते हैं, हमारा बना बनाया जमींदार मजेमें सुखकी नींद सोता है। यही नहीं, एक और तमाशा देखिये। जिनके पास थोडी बहुत भूमि पेट पालनेके लिये है उनके पीछे एक और बला चिपटी हुई है। उन्हें लगान देना पडता है और न दे सकनेसे उनके घरद्वार बिक जाते हैं।

इस मनुष्य समाजका दूसरा परदा उठाकर देखिये। रेलवे कम्पनियोंको हर साल करोडों रुपयेका फायदा है। जानते हो यह रुपया कहा जाता है? थोडेसे मनुष्योंकी विषयवासना पूरी करनेके लिये। यह करोडों रुपयेका फायदा किनकी मेहनतका फल है? उन मजदूरों और कारीगरोंको, जो रेलके दफ्तरों और स्टेशनोंपर काम करते हैं। उन्हें सिर्फ उतना ही खानेको दिया जाता है जितनेसे उनकी शरीररूपी गाडी चल सके। अकालके कारण हजारोंको उतना भी नहीं मिलता। और इन लोगोंके पसीनेसे कमाया हुआ रुपया कहा जाता है? उनके पास जो एक रातके जलसेमें लाखों रुपये फूक देते हैं! ये कर्मचारी एक प्रकारके दास हैं। आप शायद कहेंगे कि दास कैसे? कोई इन्हें जबरदस्ती थोडे ही नौकर रखता है। अपनी मर्जीसे ये लोग नौकरी करते हैं। उत्तरमें हम कहेंगे कि आप भूल करते हैं। अपनी मर्जीसे लोग नौकरी नहीं करते, पेटके लिये मजबूर होकर इन्हें नौकरी करनी पडती है।

हम पहले ही कह चुके हैं कि मनुष्यजीवनमें अन्न सबसे प्रधान चीज है। अब हम एक दम आगे

हैं कि मनुष्यकी शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नतिका प्रश्न "अन्न" इस एक शब्दकी महिमा समझनेसे हल हो सकता है। फकीरसे लेकर बादशाहतक सभी इसके मोहताज हैं। और इस जादूकी छडी अन्नके प्रभावसे अन्त्यज ब्राह्मण हो सकता है और ब्राह्मण अन्त्यज। पक्षपातसे अन्धे होकर हम चाहे इस सत्यसिद्धान्तकी महिमा न समझें, पर नीतिकारके इस वाक्यके अन्दर दुनियाभरकी सचाई भरी हुई है —

"बुभुक्षित किं न करोति पापम् क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति"

अर्थात् पेटकी ज्वाला बुझानेके लिये मनुष्य कौन कौन पाप नहीं करता? भूखे मनुष्य दया माया और करुणा सभीसे हाथ धो बैठते हैं। लोग जानते हैं कि अमुक नौकरी करनेसे हम आत्माके अनुकूल काम न कर सकेंगे, पर जीवननिर्वाहका दूसरा उपाय न देखकर बेचारोंको लाचारीसे वही करना पडता है। अतएव आत्माकी उन्नति चाहनेवालोंके लिये सबसे पहले भोजनकी व्यवस्था करनी चाहिये।

मनुष्य-समाजके सभ्योंको मनमाना काम करनेकी स्वतन्त्रताका होना बहुत जरूरी है। प्रत्येक मनुष्य अपनी योग्यता या रुचिके अनुसार जिस कामको पसन्द करे उसीको करनेका उसे हक है। यह नहीं कि हमने नियम कर दिया कि अमुक अमुक लोग चमारका काम करें। बस हमारे कहनेसे वे उस पेशेको अख्तियार कर लें। यदि यह बात है तो उनको भी हमारे ऊपर नियम पास करनेका वैसा ही हक है जैसा कि हमें उनपर है। इससे समाजको एक सूत्रमें बद्ध करनेके लिये न्याय यह है कि सबको अपना अपना काम करनेके लिये समान स्वतन्त्रता मिले, ताकि किसीको शिकायतका मौका न रहे।

मनुष्यका दूसरा अधिकार अपने स्वत्वकी रक्षा करना है। यदि कोई किसीका स्वत्व हरण करने आवे तो उसे तत्काल ही अपनी रक्षा करनी चाहिये अतएव रक्षाके सब साधन उसे मिलने

उचित हैं। जो अपने स्वत्वकी रक्षा नहीं कर सकता उसे जीता ही मुर्दा समझना चाहिये।

तीसरा अधिकार अपने श्रमसे पूरा लाभ उठाना है। बेगार पकडकर कोई किसीसे काम नही ले सकता। जितनी मेहनत हमने किसी काममें की है उसीके अनुसार हम मजदूरीके मुस्तहक हैं। जिस खेतमें हमने महीनों मेहनत करके फसल तैयार की है वह फसल हमारी ही है, महाजन या जमीन्दारकी नहीं। हां, कुछ कर जरूर देंगे, परन्तु समाजको हमारी रक्षाका जिम्मा लेना होगा। यदि हम दस घंटे किसी कारखानेमें काम करते हैं तो कारखानेकी आमदनीके मुताबिक मजदूरीके हम हकदार हैं। यह नहीं कि हमें तो आठ आने रोज मिलें और कारखानेका मालिक हजार रुपये रोज ले। आप शायद कहेंगे कि कारखानेके मालिकको अधिक आमदनी हुई सो इसलिये कि कारखाना उसका है। हम कहेंगे आमदनीके दो उपाय हैं—श्रम और पूंजी। ये दोनों एक दूसरेपर निर्भर हैं। कारखानेका स्वामी विना मजदूरोंकी मेहनतके कारखाना चला ही नहीं सकता, और न मजदूर ही उसके विना अपना गुजारा कर सकते हैं। अतएव न्याय यह है कि जो आमदनी कारखानेसे हो वह मुनासिब तौरसे दोनोंमें बांट दी जाय।

चौथा अधिकार—विद्याप्रेमियोंसे पूरा लाभ उठाना है। किसी बालकको पाठशालासे इसलिये निकाल देना कि वह बढई या और कोई पेशा करनेवालेका लडका है, अन्याय है। सभी पेशे मनुष्य-समाजके लिये उपयोगी हैं। विद्या मनुष्यकी उन्नतिका एक साधन है। इसलिये समाजके प्रत्येक सभ्यको विद्योपार्जन करना चाहिये। अज्ञानी और मूर्ख सभ्योंसे समाजहीकी हानि है। शिक्षाप्रणालीका ढंग ऐसा होना चाहिये कि ५ विद्यासे वंचित न रहे।

पांचवा अधिकार धर्मकी आज़ादीका होना है

जैसे विचार रखे—ईश्वरको माने चाहे न माने, मूर्त्तिपूजा करे चाहे न करे, ईसाई हो या मुसलमान—सबको अपने सिद्धान्तोंकी स्वतन्त्रता देनी उचित है। इसके बिना सत्यासत्यका निर्णय नहीं हो सकता, और मनुष्य क्षुद्राशय हो जाते हैं। युक्तिके बलसे हम दूसरोंको अपने विचारोंका बना सकते हैं, परन्तु जबरदस्ती करनेका हमें हक नहीं है।

यों तो मनुष्यके अधिकार बहुतसे हैं और उनकी लम्बी चौडी व्याख्या हो सकती है, परन्तु हमने मोटी मोटी बातोंको सक्षेपमें लिख दिया है।

—स्वामी सत्यदेव

३२ महात्मा टालस्टाय

टालस्टाय रूस देशके निवासी थे। पर वे सारे संसारके लिये उत्पन्न हुए थे। अत्यन्त देशभक्त होनेपर भी उनका प्रेम विश्वजनीन था। पृथ्वीपर जितने देश हैं और जहा पद-दलित जन समूह दासत्वसे छुटकारा पाकर स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी चेष्टा कर रहा है उन सबसे टालस्टायकी सहानुभूति रहती थी। उनका ध्यान मनुष्यकी उन्नतिके केवल एकही पगपर नहीं रहता था। वे धर्मनिरीक्षक, समाजसंशोधक, राजनीतिज्ञ, योद्धा और तत्ववेत्ता थे। अपने विचारोंको उपन्यास, और अन्य प्रकारके निबन्धोंद्वारा प्रकाशित करते थे और उन विचारोंपर स्वयं भी चलते थे। ऐसा करनेमें उनको अनेक कष्ट हुए। उनके कुटुम्बी उनसे अप्रसन्न रहते थे। राजाका क्रोध कभी कभी उचित सीमाका उलघन कर जाता था, पर दृढप्रतिज्ञ टालस्टाय अपने सिद्धान्तोंसे विचलित न हुए। ऐसे महानुभावका जीवनवृत्तान्त मनुष्यमात्रके लिये शिक्षाप्रद है, विशेषकर हमारे देशके लिये कि



जो प्राय उन्हीं दु खोंसे पीडित है कि जिनके दूर करनेके लिये यह महात्मा अपना तन मन धन लगाते थे ।

टालस्टायका जन्म सम्वत् १८८५ विक्रमीमें जो रूसकी प्राचीन राजधानी मास्कोसे प्राय साठ कोसपर यास्नया पोल्याना नामक स्थानमें हुआ था । जब इनकी अवस्था तीन वर्षकी थी तबही

इनकी माताका, और नव वर्षकी अवस्थामे इनके पिताका, देहान्त हो गया। इनके कुटुम्बके मई सेनाविभागमें सरकारी नौकरी करते थे और उनमेंसे अनेक विख्यात योद्धा भी थे। पिताके मरनेपर इनकी चाचीने इनको पाला। यह स्त्री रातदिन ससारके सुखभोगमे लीन रहती थी। प्रतिदिन उसके घर दावतें हुआ करती थीं, खेलतमाशे होते थे। काजान नगरमें जहा वह रहती थी, प्रतिदिन भोज हुआ करते थे। टालस्टाय भी बाल्यावस्थामें इनमें शरीक होते थे। हँसी दिल्लगी देखते थे। पद्रह वर्षकी अवस्थामे इनका नाम उस नगरके विश्वविद्यालयमें लिखाया गया। पढनेमें इनका मन नही लगता था। इन्होंने विश्वविद्यालयमे भी जाकर आमोदप्रमोदके उपाय सोचे और अनेक विद्यार्थियोंको अपना साथी बनाया। अब इनका स्वास्थ्य बिगडने लगा बापदादेकी जायदाद काफी थी। जमींदार थे। समझते थे कि चिन्ता काहेकी है, पढना लिखना रुपया कमानेके लिये है, रुपयोंका अभाव तो है ही नहीं। प्रतिष्ठा धनसे होती है, सोचा कि चलकर अपनी जमींदारीमें रहें। पढना-लिखना छोड जमींदार हुए। कभी कभी काश्तकारोंकी अवस्था देख दया आती, परन्तु खेलकूदसे फुरसत कहा? कभी शिकारको निकल गये, कभी महीनों जुआ ही हो रहा है। नाच देखना विशेष प्रिय था। फल यह हुआ कि आमदनीसे ज्यादा खर्च होने लगा। ऋण बढ गया। घर रहना कठिन हो गया। काफ पर्वतपर भागे और वहा एकान्तमें एक कुटी बनाकर रहने लगे। तेईस वर्षकी अवस्थामें सेनाविभागमें नौकरी कर ली। कुछ लिखना-पढ़ना भी आरम्भ किया। इसी समय क्रिमियाका महायुद्ध आरम्भ हुआ। उन्होंने अपने देशकी ओरसे बिना वेतन स्वेच्छासैनिक होकर लडना आरम्भ किया। लडनेमें इतनी दक्षता दिखलायी कि सेवैस्टोपोलके पहाडी गढकी सेनाके सेनापति हो गये। इसी स्थानपर इन्होंने सेवैस्टोपोलकी लडाईकी

कहानिया लिखीं। इस पुस्तकका विलक्षण प्रभाव पड़ा। राजा की आज्ञा हुई कि इनका लड़ाईसे छुटकारा करके इनसे प्रार्थना की जाय कि युद्धका एक वृहत् वृत्तान्त लिखें। इस बीचमें ये रूसकी राजधानी पेट्रोग्राड पहुँचे, जहा इनका अत्यन्त मनोहर स्वागत हुआ। सब प्रकारके स्त्रीपुरुष इनके दर्शनोंको आये। नगरमें बड़ा जोश था। जिधर देखिये, इन्हींकी चर्चा थी। कहा तो एकान्तवास करनेकी इच्छा थी और कहा देशके नेता हो गये। थोड़े दिनोंसे टालस्टायने फ्रान्स देशके विख्यात लेखक, सुधारक और तत्त्ववेत्ता रूसोके ग्रन्थोंका अवलोकन आरम्भ किया था। रूसोके ग्रन्थ विलक्षण हैं। इनमें स्वतन्त्रता और उन्नतिके मूलमन्त्र लिखे हैं। इनमें शिक्षाके प्रचारका उपदेश है। टालस्टायके जीवनके आदर्शको इन ग्रन्थोंने बदल दिया। टालस्टायने जो पुस्तकें लिखी हैं उनपर रूसोके उपदेशोंका स्पष्ट प्रभाव मालूम होता है। इन दिनों रूस देशमें गुलामीकी प्रथा थी। जमींदार काश्तकारोंसे बेगारीका काम लेते थे। कामके बदलेमें कुछ वेतन नही देते थे। इस दुर्दशाको टालस्टायने देशके लिये श्रेयस्कर नही समझा। उन्होंने इसी विषयपर उपन्यास लिखने आरम्भ किये। स्वय अपनी जमींदारीमें कृषिकारोंसे सुन्दर व्यवहार आरम्भ किया। उनके लिये पाठशालाएं खोलीं। स्वय उनमें इंजीलका गाना, इतिहास इत्यादि पढ़ाना आरम्भ किया। एक पाठशालामें सफलता होनेपर कई और पाठशालाएं खोलीं। चारों तरफसे लोगोंने विरोध करना आरम्भ किया। लोग कहने लगे, सब लोग पढ़ जायँगे तो खेती कौन करेगा, मजदूर कहासे मिलेंगे। टालस्टायका मत था कि प्रत्येक बालक, चाहे वह किसी अवस्थामें उत्पन्न हुआ हो, शिक्षा प्राप्त करनेका अधिकारी है। राजा और धनाढ्य लोगोंका कर्त्तव्य है कि वे जातिके बालकोंकी शिक्षाका प्रबन्ध करें। मनुष्यमात्रके लिये जैसे नग्न अवस्थाको ढकनेके लिये वस्त्रकी आवश्यकता है उसी प्रकार

अपनी अज्ञताको दूर करनेके लिये विद्या प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। परन्तु अपने मतके प्रचारमें वे अकेले ही थे। लाचार होकर उनको अपने खोले हुए स्कूल बन्द करने पड़े। परन्तु उनका यह मत दृढ होता गया कि उच्च श्रेणीके धनाढ्य पुरुष उन लोगोंकी ओर अपना कोई कर्तव्य नहीं समझते जो निर्धन होनेके कारण उनके अधीन हैं। इस समय उन्होंने जो उपन्यास लिखे वे इसी मतका प्रतिपादन करते हैं। इन ग्रन्थोंका बडा आदर हुआ। युरोपकी अनेक भाषाओंमें उनके अनुवाद हुए। परन्तु इन ग्रन्थोंके कारण उनको राजा और जमींदारोंकी तरफसे बहुत कष्ट पहुँचाये गये। उनकी पुस्तकोंका छापना बन्द किया गया। उनके मित्रोंको दड दिया गया जिसमें उनके साथ देनेवाले कम हो जायँ। उनकी चिट्ठिया चोरीसे पढी जाने लगी। उनके पीछे डिटेक्टिव छोडे जाने लगे। इसके पूर्व उनका विवाह हो चुका था। अब उनके मनमें समायी कि धन और जायदाद एक व्याधि है। चारों तरफ लाग दुखी हैं। सैकडों स्त्रीपुरुष बच्चे भूखों मरते हैं। हमका यह अधिकार नहीं कि हम तो धनवान हों और ऐसा भोजन करें और ऐसे वस्त्र पहनें कि जो मनुष्य-जीवनके निर्वाहके लिये अत्यावश्यक नहीं और हमारे चारों ओर ऐसे लोग हों कि जिनको शरीर-रक्षाके निमित्त आवश्यक अन्नवस्त्र भी न मिले। इसी विचारसे उन्होंने यह ठानी कि अपनी सब सम्पत्ति सर्वसाधारणको बाँट दें। यह सुन कर उनकी स्त्री और बच्चे बडे घबराये और उन्होंने न्यायालयकी शरण लेनेका विचार किया। इससे टालस्टाय दब गये और जो कुछ था अपने कुटुम्बको दे आप निर्धनकी नाईं रहने लगे। एक कुटी बना ली। स्वय खेती करने लगे। मास-भोजन परित्याग किया। जो मिल जाता खा लेते और पहन लेते। किसी प्रकारका व्यसन नहीं रखा। खेती करना और पुस्तकें लिखना। सवत् १८३७में रूस देशकी मनुष्यगणना हुई। उसमें इनको भी

कुछ काम मिला । इस कामके करनेमें इन्होंने सर्वसाधारणकी सामाजिक और आर्थिक अवस्थाकी खूब जाचपडताल की । इस समयकी उनकी जो पुस्तकें हैं उनमें सर्वसाधारणकी अवस्थाका बहुत अच्छा वर्णन है । उनकी पुस्तकें प्राय कहानियोंके रूपमें होती थीं । बहुतसी कहानिया उन्होंने शराबकी बुराइयोंके वर्णन में लिखीं । इसके कुछ वर्षो के अनन्तर रूस देशमें बडा अकाल पडा । उस समय टालस्टायकी दीनवत्सलताको जिन लोगोंने अपनी आखोंसे देखा था उनका लिखा हुआ वर्णन पढकर महान पुरुषोंके उच्च लक्षणोंका अनुभव होता है । टालस्टाय और उनके कुटुम्बी मिलकर दीनोंको अपने हाथसे खिलाते थे और वस्त्र पहनाते थे । अपनी जमींदारीकी सारी आय उन्होंने गरीबोंको अपण करनी आरम्भ की । स्वय भी वही भोजन करते कि जो कगालोंको खिलाते । टालस्टायके धार्मिक भावका उज्ज्वल रूपसे प्रादुर्भाव तब होता था जब वे दु खित पीडित पद-दलित लोगोंको देखते थे । उस समय उनके चित्तमें ऐसे लोगोंके लिये दया, और जिनके कारण ससारमें दु ख पीडा और अन्याय फैलता है उनके लिये अत्यन्त क्रोध उत्पन्न होता था । ऐसे धार्मिक भावोंका वणन करनेमें टालस्टायकी लेखनी बडी प्रभाव-शाली हो जाती थी । उनके वाक्य अद्भुत आदर्शों का परिचय देते थे । अब टालस्टायके चित्तमे वानप्रस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी इच्छा हुइ । परन्तु इसमें कइ कठिनाइया प्रतीत हुईं । घरवालोंका झगडा,लोगोंका मिन्नत करना और समझाना कि घर बैठे ही ससार त्यागा जा सकता है, जल्दी क्या है, आवश्यकता क्या है, इत्यादि । इस समयका लिखा हुआ एक पत्र जो इन्होंने अपनी स्त्रीके नाम लिखा था अब प्रकाशित किया गया है । उसमें उन्होंने, अन्य बातोंके अतिरिक्त यह वाक्य लिखा है, "मुख्य बात यह है कि प्राचीन आर्यो की नाई जो साठ वर्षकी अवस्थाके निकट जगलमें चले जाते थे और सच्चे धार्मिक पुरुषोंके समान अपना

अन्तिम समय ईश्वरकी आराधनामें बिताते थे न कि खेल और गप्पोंमे, मेरी भी अपने अस्सी वर्षमें यह प्रबल इच्छा है कि मुझे शान्ति प्राप्त हो, एकान्त मिले और मेरे जीवनके कार्य और मेरे विश्वासमें एकता हो।"

कई वर्षों के कोलाहलके पीछे अन्तमें उन्होंने घर छोड ही दिया। बयासी वर्षकी अवस्थामें पीठपर एक गठडी डाली और जगलकी राह ली। गठडीमें दो तीन आवश्यक चीजें थी। परन्तु घर छोडे थोडे ही दिन हुए थे कि एक सरायमें उनको ज्वर आया। यह समाचार पाते ही उनके घरके लोग उनके पास पहुँचे। घरवालोंकी ओर देखकर उन्होंने कहा कि, "ससारमें अनेक दु.खी पडे हैं, उनके पास क्यों नहीं जाते और उनसे सहानुभूति क्यों नही प्रगट करते ?" ये ही उनके अन्तिम वाक्य थे। ससार भरमें मृत्युके समाचार पहुँचे। जिस स्थानका नाम भी लोग नहीं जानते थे, वहा सहस्रों आदमियोंकी भीड इनके दर्शनोंको पहुँचने लगी। तारपर तार आने जाने लगे। इस प्रकार सवत १९६७ की शरद् ऋतुके अन्तमें संसारका एक विलक्षण पुरुष मनुष्यशरीरके कर्तव्योंका अद्भुत उदाहरण हम लोगोंको देकर चल बसा। इनका जीवनचरित्र सिद्ध करता है कि प्राचीन आर्यों के सिद्धान्त इस समयमें भी कार्य्यमें परिणत हो सकते हैं। टालस्टायको आर्यसिद्धान्तोंसे प्रेम था। वे गीता और उपनिषदोंका पाठ किया करते थे। आर्यग्रन्थोंके पढनेका उपदेश ससारीमात्रको दिया करते थे। उन्हें भारतवासियोंसे प्रेम था। उनके दु खसे दु खी और उनके सुखसे सुखी होते थे। उन्हें ईसाई धर्ममें विश्वास नही था। ईसाको वे एक महापुरुष मानते थे, परन्तु ईश्वरका लडका नहीं। उनका सिद्धान्त था कि हमारा दैनिक जीवन ऐसा होना चाहिये कि हमलोग सर्वदा ईश्वरकी इच्छाके अनुसार चलें। मन्दिरों और गिरजाघरोंमें ईश्वर नहीं मिलता। यह कहा करते थे कि जब कभी अच्छे

काम करते हुए कोई सताया जाय तो उसको बरदाश्त करना चाहिये। बुरे आदमियोंका सामना नहीं करना चाहिये परन्तु अपने सिद्धान्तोंपर दृढ रहना चाहिये।

—रामनारायण मिश्र

३३ स्वार्थ और राजनीति

न्याय और अन्यायके बीचमें बहुत ही सूक्ष्म भेद है। यदि किसी कामको एक व्यक्ति करे तो वह अन्याय कहाता है और वही काम समस्त राष्ट्र करे तो वह न्याय हो जाता है। यदि एक पुरुष अपने पडोसीके घरको लूट ले, या अन्य उपायोंसे उसकी सम्पत्तिका हरण कर ले तो मनुष्यसमाज उसके साथ कोई सामाजिक व्यवहार नहीं करती। वह मनुष्य इतनी घृणाकी दृष्टिसे देखा जाता है कि मानों उसके साथ रहना नीच वृत्तिवाले मनुष्यके साथसे भी बुरा हो। इससे विपरीत जब एक देशके कुछ लोग अन्य देशके भोले भोले लोगोंपर आक्रमण करते हैं तब उस देशके लोग विजयी बहादुर पराक्रमी तथा अन्य सुन्दर सुन्दर विशेषणोंसे विभूषित किये जाते हैं। अपने पडोसीका घर लूटनेवालेको समाज कायर नीच तथा मनुष्यजातिका शत्रु समझेगी परन्तु विजयिनी जातिकी तलवारकी चमकसे अन्यायका न्याय बन जाता है तथा कायरता वीरतामें, नीचता सज्जनतामें और मनुष्यजातिकी शत्रुता संसारसुधारके महान् उद्देशमें परिणत हो जाती है। अतएव मनमें यह विचार आ सकता है कि संसारमें ऐसी विशृङ्खलता क्यों है।

कोई कुछ भी कहे, हमारा यह दृढ विश्वास है कि संसार स्वार्थके सूत्रमें बँधा हुआ है। कहा जाता है कि अमुक जातिके निकट-सान्निध्यसे अमुक जातिका उत्थान हुआ। परमेश्वरने अमुक जातिको केवल रक्तपात और अन्याय रोकनेको भेजा। मृदंगके मुँहपर आटा लगानेसे जिस प्रकार उसकी आवाज बद

जाती है उसी प्रकार जिन लोगोंके मुँहमें विजयिनी ज्ञानिने स्वार्थका आटा लगा दिया है वे लोग ऊपर कहे अनुसार दुरंगी रागिनी अलापने लगते हैं। यदि स्वतन्त्रतापूर्वक विचार किया जाय—अपने लाभालाभकी परवा न की जाय—तो प्रत्येक विचारशील हृदयसे यह एक ही आवाज निकलेगी कि संसार स्वार्थसूत्रसे बँधा हुआ है और जिसमें मनुष्यका स्वार्थ होता है उसी विचारको वह सर्वोपरि समझने लगता है।

इतिहासभक्तोंका कथन है कि प्रजाके सुभीतेके लिये राजाकी सृष्टि हुई। जब दस पांच लोग एक जगह रहने लगे तब कार्यकी सुव्यवस्थाके लिये उनको किसी मुखिया या राजाकी आवश्यकता हुई। जो व्यक्ति बलवान् होता था वही मुखिया बन सकता था। धीरे धीरे यही मुखिया किसी और बड़े बलवानके अधीन हुए, तथा समयानुसार राजवंशकी परम्परा स्थापित हो गयी। राजाका अर्थ महाकवि कालिदासने रघुवंशमें इस तरह बतलाया है— "प्रकृतिरंजनात् राजा" (४ श्लो० । १२) अर्थात् जो प्रजाको आनन्दमें रखे वही राजा है। अन्य देशोंके नैतिक ग्रन्थोंमें भी राजाका यही कर्त्तव्य बतलाया गया है। ऐसा होनेपर भी राजा-कर्त्तव्योंके साथ देश जीतनेकी लालसा भी संसारके आरम्भसे चली आ रही है, यहांतक कि हमारे भारतवर्षके कुछ राजनीतिज्ञ तो "संतुष्टाश्च महीभुजः" अर्थात् संतुष्ट राजा नष्ट हो जाते हैं — इस मन्त्रसे यह कहते हैं कि राजा हमेशा अपना राज्य बढ़ाता रहे। संसारके सारे संसारी लोग यही करते आये हैं। यह स्वार्थ नहीं तो और क्या है? मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि देशोंके आक्रमणों और अन्य देशोंके धनजन लूटनेपर ही संतुष्ट नहीं होती परन्तु, वह अपनेसे कम बलवाले प्राणीपर, चाहे वह मनुष्य भले न हो, सदासे अत्याचार करती आयी है। शहदके लिये मधुमक्खियोंको मारना तथा रेशमी वस्त्रोंके लिये रेशमके कीड़ेको उबालना दो साधारण उदाहरण हैं। क्या आवश्यकता थी कि मनुष्य बेचारी

परिश्रमी मधुमक्षिकाओं तथा रेशमके कीडोंका अन्न और वस्त्र छीन ले ? इसका उत्तर एक यही हो सकता है कि "मनुष्यकी स्वार्थबुद्धि बडी प्रबल है।" ससारके सब जीवोंमें अपनेको श्रेष्ठ समझनेवाले मनुष्यको इस बातपर लज्जित होना चाहिये।

राज बढाना राजाका एक कर्त्तव्य बतलाया गया है यह माना, तथापि श्रेष्ठ राजा लोग राज्यवर्द्धनके स्थानमें कीर्त्तिवर्द्धन ही किया करते थे। भारतके सूर्यवशके राजा प्रजापालन तथा कीर्त्तिवर्द्धनके तत्त्वको प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्रमें लानेवाले ज्वलत उदाहरण हैं। रघुवशके चतुर्थ सर्गमे रघुराजाओंके राज्यविस्तारका वर्णन है। जब रघु अपने राज्यपर अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया तब वह पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर चारों दिशाओंमें देश जीतनेके लिये गया। यहा यह भी कह देना अयुक्त न होगा कि रघु केवल भारतवर्षीय नृपतिसमूहोंको ही जीतनेके लिये नहीं निकला था, किन्तु वह पारसीक (ईरान) काम्बोज इत्यादि देशोंको जो आज भारतीय सामान्तर्गत नहीं हैं जीतनेके लिये निकला था। सब देशोंको जीतनेके पश्चात् वह सम्राट् माना गया और अन्य पराजित नृपति सामन्त कहलाये। सम्राट्का कर्त्तव्य होता था कि वह विश्वजित नामक यज्ञ करे। इस यज्ञमें सब सामन्त बुलाये जाते थे तथा विजयी सम्राट्का सर्वधनकोष इस यज्ञमें दान कर दिया जाता था, अर्थात् सम्राट्की शक्तिकी भयङ्करता इस प्रकार कम कर दी जाती थी। जो सामन्त लोग जाते थे उनके राज्य लौटा दिये जाते थे। शर्त केवल यह थी कि वे सम्राट्की अधीनता स्वीकार करें। कालिदासने एक जगह कहा है—

"आदानं हि विसर्गाय सता वारिमुचामिव"

(रघु० ४।८६)

अर्थात् "बादलोंकी तरह सत्पुरुषोंका सग्रह दानके लिये ही होता है।" देश जीतनेकी लालसासे नहीं, धन बढानेकी इच्छासे

नहीं, बस एक कीर्त्तिवर्द्धनकी अभिलाषासे ही आर्यनृपतिगण अन्य देशोंपर आक्रमण करते थे। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि जब धन या देशकी सीमा बढानेकी इच्छा नहीं थी तो ये नृपतिगण वृथा जीवहत्या कर अपनी कीर्त्तिध्वजाको नररक्तके धब्बोंसे क्यों अपवित्र करते थे? इसका उत्तर सरल है। मनुष्य-स्वभावमें स्वार्थबुद्धिकी मात्रा अधिक है। यदि किसी व्यक्तिके स्वार्थको सीमाबद्ध करनेवाली कोई अन्य शक्ति न हो तो वह (सिकन्दर) अलक्षेन्द्रके समान संसार विजयकी अभिलाषा करेगा तथा अपनी जाति मनुष्यजातिको संकटके अथाह समुद्रमें डुबा देगा। ऐसे पुरुषोंकी शक्तिका दमन करनेके लिये किसी अधिक शक्तिशाली व्यक्तिकी आवश्यकता रहती है। यह व्यक्ति राजा-पदको शोभित करता है तथा अपनी शक्तिको लोकहितके कार्यमें खर्च कर देता है। ऐसे राजाओंका कर्त्तव्य होता है कि संसार-कार्यकी सरलताके लिये वे अत्याचार करनेकी शक्ति भी न रखें।

भारतवर्षीय राजाओंके लिये आर्यो का यही आदर्श रहा है। भारतवर्षके राजनैतिक अखाडोंमें कई वीरोंने मल्लयुद्ध किया, किन्तु आक्रमणकारियोंमेंसे एक भी विजेता जातिने भारतीय आदर्शको पूरा नहीं किया। पुराने आक्रमणकारी तो जनहिंसा स्त्री छल पशुता इत्यादिका ठेका लेकर ही भारतवर्षमें आये थे। उनके पश्चात् जिनके चरण भारतभूमिपर टिके हैं उन्होंने भी अपने स्वार्थके सामने "राजशक्तिके आदर्श"का कुछ भी विचार नहीं किया। इसलिये किसीको दोष देनेकी आवश्यकता नहीं। यह मनुष्यस्वभाव है। मुँहसे चाहे उपकारकी लम्बी गप्पें निकाली जावें, किन्तु हृदयका तार सदैव स्वार्थकी ही मधुर-ध्वनि निकालता है। आश्चर्य और खेद उन दुम हिलानेवालोंपर है जो इन बातोंको नहीं समझते और समझें भी कैसे? वे भी तो मनुष्यस्वभावके अनुसार स्वार्थमें लिप्त हैं।

—इन्द्र

३४ कार्क नगरके मुखिया महात्मा मेक्स्विनी

सवत् १६७७ सौर कार्त्तिकके प्रात काल ५ बजकर २० मिनटपर जिस देवपूज्य आत्माने स्वर्गलोकको प्रयाण किया वह ससारके इतिहासमें एक ऐसा आदर्श उपस्थित कर गयी जिसने कवियोंकी त्यागसम्बन्धी चरम कल्पनाओंको भी प्रत्यक्ष कर दिखाया है। जिस युगमें छत्तीस वर्षका एक नवयुवक स्वदेशके लिये हँसते हँसते इस प्रकार बलि हुआ उस युगपर सत-युग सौ बार निछावर। सकल्पकी दृढता और सुनिश्चित त्याग-का जैसा उदाहरण महात्मा मेक्स्विनीने उपस्थित किया है वैसा उदाहरण और कहा मिलेगा? धन्य आयर्लैंड! धन्य बीसवीं शताब्दिका यह वर्ष! मेक्स्विनीकी देशभक्ति और उनकी त्यागेच्छा क्षणिक आवेश-प्रेरित न थी बल्कि वह उनके जीवनकी सहचरी थी। मेक्स्विनी ग्रेजुएट थे। उनमें कवित्वकी झलक थी। और वे एक सिद्धान्तवादी दार्शनिक थे। वे कवि और सुलेखक थे। उन्होंने कुछ राष्ट्रीय कविताएं तथा गीत भी लिखे थे। परन्तु उनका समस्त जीवन स्वदेश-सेवाके महापापके कारण धर पकडमें ही बीता। अत उनकी काव्य और लेखनसम्बन्धिनी प्रतिभाका पूर्ण विकास न हो पाया। पहली बार वे सवत् १६७३ के आरंभमें पकडे जाकर वेकफील्ड भेज दिये गये। परन्तु कुछ दिन पीछे छोड दिये गये। सवत् १६७३ के माघमें वे फिर पकडे गये और इगलैंड भेज दिये गये। कुछ दिनों पीछे वे वहासे भी मुक्त कर दिये गये। दोनों बार न तो उनपर किसी प्रकारका अभियोग ही लगाया गया और न उन्होंने अपने छुटकारेके लिये किसी प्रकारकी क्षमा-प्रार्थना या शर्त्त ही की। कार्त्तिक सवत् १६७४ में वे फिर पकडे गये और इस बार भडकानेवाली वक्तृता देनेके अपराधमें उन्हें नौ मासकी कैदकी सजा मिली। परन्तु अस्वस्थ होनेके कारण वे उसी वर्ष माघमें छोड दिये गये।

एक ही महीना पीछे वे फिर पकड लिये गये और बेलफास्ट जेलमें अपना दडकाल पूरा करनेके लिये भेज दिये गये। वहासे वे सवत् १६७५ के २१ सौर भाद्रपदको अस्वस्थताके कारण छोड दिये गये, परन्तु जेलके फाटकसे निकलते ही फिर गिरफ्तार कर लिये गये और विना किसी प्रकारके अभियोग चलाये इग्लैंड भेज दिये गये। वहासे उसी वर्षके अन्तमें बिना किसी प्रकारकी क्षमा-प्रार्थना किये छोड दिये गये। इसके बाद उनको पकडनेके लिये सवत् १८७५ में ही कुआरमें, कार्त्तिकमें, माघमें और फाल्गुनमें वारट निकले। अन्तमें वे २७ श्रावण सवत् १६७७ को पकडे गये और इग्लैंड भेज दिये गये। इस समयतक कार्कके लार्ड मेयर मेक्कर्टनकी पुलिसद्वारा हत्या हो चुकी थी और उनके स्थानपर मेक्स्विनीकी नियुक्ति भी हो चुकी थी। जिस समय मेक्स्विनी लार्ड मेयरकी उपाधिसे विभूषित किये गये उस समय उन्होंने यह भविष्यद्वाणी की थी कि मेरी मृत्यु समीप है, फिर चाहे वह क्रान्तिके कारण हो या उस उपवासके कारण, जो मैं ब्रिटिश सरकारद्वारा पकडे जानेपर करूगा। उनकी यह भविष्यद्वाणी सच निकली और उनकी मृत्युका श्रेय ब्रिटिश सरकारने अपने ऊपर लिया।

२७ श्रावणकी शामको कार्क नगरके सिटी हालको खाली करनेके लिये सैनिकोंकी एक बडी सख्या दो गाडियोंमें बैठकर क्रुएटार्क पुलसे होती हुई वहापर आयी। सैनिकोंने आतेही हालको घेर लिया और जो मनुष्य उधर होकर जा रहे थे उनको गिरफ्तार कर लिया। सिटी हालको घेरकर सैनिकोंने उसमें प्रवेश किया। उनके पास सगीनें चढी हुई बन्दूकें थीं। भवनपर अधिकार करके उन्होंने उसकी तलाशी लेनी शुरू कर दी। जब लार्ड मेयर मेक्स्विनीको भवनके घिर जानेकी खबर मिली वे अपने सच्चे अनुयायियोंकी सहायतासे भवनसे निकलकर नाजकी मडीमें पहुँच गये, परन्तु सैनिकोंने वहा उन्हें घेर लिया और गिरफ्तार

कर ले गये। भवनके नौकर तथा अन्य कर्मचारी इस धोखेमें रहे कि लार्ड मेयर भवनसे निकलकर सुरक्षित हो गये हैं। नौ बजेतक यह पता न लगा कि लार्ड मेयर पकड लिये गये हैं। पकडे जानेपर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है मिस्टर मेक्स्विनी इग्लैंडके ब्रिस्टन-जेलमें लाये गये। लार्ड मेयर मेक्स्विनी अपने विचारोंके कितने सच्चे, अपनी बातके कितने पक्के और अपने सकल्पके कितने दृढ थे! अदालतके अध्यक्षसे आपने कहा था कि "तुम्हारी न्याय-पद्धति अन्याययुक्त है। मैं कार्कका लार्ड मेयर, नगरका प्रधान हू। मैं इस अदालतको गैरकानूनी घोषित करता हू। अत जो लोग इसमें भाग ले रहे हैं वे आयरिश प्रजातन्त्रीय सरकारद्वारा दडके भागी हैं।" जब उनसे सफाई देनेके लिये कहा गया तब आप अपनी कुर्सीसे उठकर खडे हो गये। अदालतके अध्यक्षने उनसे कहा "मि० मेक्स्विनी आप बैठे रह सकते हैं।" इसपर आपने जो वीरता-पूर्ण उत्तर दिया वह यह है—

"जबतक अदालत बैठी रहेगी तबतक मैं खडा रह सकता हू। आपको जान लेना चाहिये, आपको जानना पडेगा, कि आयरिश प्रजातन्त्रीय सरकार विद्यमान है। मैं आपको यह बता देना चाहता हू कि सबसे भारी अपराध जो एक मनुष्य कर सकता है वह किसी देशके प्रधानकी मानहानि करना है। एक प्रधान नगरके प्रधानको पकडने, उसके घरपर छापा मारने और उसके कागजात छीननेका अपराध प्रधानकी मानहानि करनेके अपराधसे भी गुरुतर अपराध है और आपलोग इस अपराधके अपराधी हैं।"

अदालतकी दूसरी बैठकमें आपने कहा कि इसके अतिरिक्त मैं यह भी बतला देना चाहता हूँ कि "मैं जो करनेवाला हू उसके कारण मैं कुछ नियत दिनोंसे अधिक कैदमें नहीं रह सकता। मैंने गुरुवारसे भोजन नहीं किया है, इसलिये मैं एक मासमें

स्वतन्त्र हो जाऊगा।" इसपर अध्यक्षने पूछा कि "क्या कारावास-की सजा देनेपर आप भोजन नहीं करेंगे?" लार्ड मेयर मेक्स्वि नीने उत्तर दिया "मैं केवल इतना ही कहता हू कि मैंने केदमें रहनेका समय नियत कर लिया है। आपकी सरकार जो चाहे करे परन्तु मैं एक मासके अन्दर जीवितावस्थामें या मरकर स्वतन्त्र हो जाऊ गा।"

लार्ड मेयरने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। कारावासमें आपने अन्नजल छोड दिया। लाख प्रयत्न किये गये, समझाया बुझाया गया, बलप्रयोग किया गया, परन्तु उन्होंने किसीको एक न मानी और अपने संकल्पपर अटल रहे। जबतक वे जीवित रहे तबतक उन्होंने अन्नका एक कण भी अपने मुहमें न जाने दिया और लगातार तिहत्तर दिनतक निराहार रहकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और पूर्णतया स्वतन्त्र हो गये। ब्रिटिश साम्राज्यकी प्रबल शक्ति भी सिर पटक पटककर मर गयी परन्तु उन्हें स्वतन्त्र होनेसे न रोक सकी। जिन्हें स्वतत्रतासे इतना प्रेम है, जो ऐसे भीष्मप्रतिज्ञ हैं, उन्हें कौन परतत्र रख सकता है? ब्रिटिश साम्राज्य तो क्या समस्त ससारकी शक्ति भी उन्हें स्वतत्र होनेसे नहीं रोक सकती। ऐसी आत्माए न तो पराधीन रह सकती हैं और न मरी ही हैं, क्योंकि यदि मेक्स्विनीकी मुक्तिको मृत्यु कहें तो फिर जीवित कौन है?

—प्रभासे

३५ कनफ्यूशियस

प्रत्येक मनुष्यको सदा यही इच्छा रहती है कि मैं उत्तरोत्तर आगे ही बढता जाऊ। कोई भी मनुष्य न तो अपनी वर्तमान स्थितिसे नीचे जाना चाहता है और न उसीपर स्थित ही रहना चाहता है। जिस मनुष्यको यह इच्छा नहीं रहती, समय

उसका साथ नहीं देता, इसलिये मनुष्योंमें स्वभावहीसे बढने-की इच्छा होती है।

जो लक्ष्य व्यक्तिगत जीवनका है वही जातीय जीवनका भी है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति अपने भूत और वर्त्तमान कालके जीवनसे भविष्य जीवनको अतिशायी बनाना चाहता है वैसे ही प्रत्येक जाति भी सदैव आगे बढनेकी धुनमें लगी रहती है। इस धुनको फलवती करनेके लिये अर्थात् किसी जातिको ऊपर उठानेके लिये सगठनकी आवश्यकता होती है। इस जातीय सगठनके लिये ऐसे महात्माओंकी आवश्यकता होती है जो नेता बनकर अपने सिद्धान्तों और व्यावहारिक कार्यों द्वारा जातिकी तितर-बितर शक्तिको सगठित कर सकें। ससारकी प्रत्येक सभ्य जातिने कमसे कम एक ऐसे महापुरुषको अवश्य जन्म दिया है। प्रसिद्ध चीनी विद्वान् कनफ्यूशियस इन्हीं महात्माओं-मेंसे एक हैं।

चीना सम्राज्य दो सहस्र वर्षो से कनफ्यूशियसके सिद्धान्तों-के बल खडा है। इसी महात्माने चीनी जातिका सगठन किया था। चीन देशवासी अपनी वर्त्तमान शक्ति तथा राजनैतिक और सामाजिक एकताका एक मात्र कारण इसी पूज्य पुरुषको मानते हैं। वे इसका इतना आभार मानते हैं और आदर करते हैं कि इसकी समानताके योग्य वे किसीको समझते ही नहीं, और न इसके नामकी बराबरीमें किसी दूसरेका नाम ही रखने देते। सचमुच कनफ्यूशियसकी अनुपम नैतिक महत्तामें शका करना वृथा है। उसके पक्षमें यही एक बडा सबल प्रमाण है कि लगभग साठ पीढियोंसे उसके देशवासी उसे पूज्य मानते आये हैं और अब भी चालीस करोड मानव स्वच्छ हृदयसे उसकी पूजा करते हैं।

ढाई सहस्र वर्ष पूर्व चीन साम्राज्य बहुतसे छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त था। वहा दलबन्दीका राज्य था। सामाजिकता तथा

राजनैतिकता अरक्षित थी। ऐसे समयमें एक ऐसी आत्माकी आवश्यकता थी जो इन तितर-वितर राज्यों और दलोंको एकत्र कर उनका शान्तियुक्त समरूप सगठन करतो। यह आत्मा कनफ्यूशियसके रूपमें विक्रमसे ४६४ वर्ष पहले प्रकट हुई।

यह आत्मा किसी सेनापति नृपाल अथवा ससार विजेताके रूपमें नहीं आयी और न उसने उत्पात तथा रक्तपातद्वारा साम्राज्यमें एकता लानेका प्रयत्न किया। वह आत्मसयम, न्याय और शान्तिके शिक्षकके रूपमें ठोक उसी समय प्रकट हुई जिस समय भारतमें महात्मा बुद्धने अवतार लिया था। इस आत्माने साधारण जनों तथा भिन्न भिन्न प्रान्तों या रियासतोंके राजाओंको आत्मशासन, सदाचार और शुद्ध जीवनके मूल सिद्धान्त समझाकर एकत्रित करनेका प्रयत्न किया। उसका यह कहना था कि आत्मशासन सच्चे शासनका आधार होना चाहिये। वह इसी सिद्धान्तका अनुयायी था। दूसरोंको शिक्षित तथा दक्ष बनानेके पूर्व कनफ्यूशियस अपने आपको दक्ष बना लेता था, अर्थात् सदाचार और धार्मिकताद्वारा पहले अपना शासन कर लेता था। इसी सिद्धान्तमें उसकी अनन्त शिक्षा और उसका आदर्श अन्तर्हित है। एक बार लडकपनहीमें उसने इस आदेशके शब्द कहे थे कि—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे
जे आचरहिं ते नर न घनेरे

'घनेरे' क्या, एक भी मनुष्य उसे ऐसा नहीं दिखायी दिया, इसीलिये उसने प्रतिज्ञा की कि "मैं ऐसा ही करूंगा।" अनन्तर उसने अपने शिष्योंको भी यही सिखाया कि "दूसरोंको ऐसी कोई भी बात मत सिखाओ जिसका तुमने स्वय पूर्ण रीतिसे अभ्यास न कर लिया हो।" कनफ्यूशियसकी शिक्षणपद्धतिका विशेष लक्षण यही है कि उपदेश देनेके पूर्व उसका अभ्यास कर

लो और यही उसकी शिक्षाकी कुंजी है। न तो उसने आत्मविद्या या मानसशास्त्र सिखाया और न तत्त्वज्ञान अथवा दर्शनके गूढ और काल्पनिक तत्त्व ही बताये। उसने कार्यसंचालनके कुछ नियम बना दिये जिनके द्वारा मनुष्य पुरुषत्व और बुद्धिमें दक्षता प्राप्त कर सकें और राज्यबलके स्तंभ हो जायँ। उसकी शिक्षाकी नितान्त सरलताहीने उसपर एकदम महर्षिकी छाप लगा दी।

उसका यह कथन था कि सब दुर्गुणोंको त्यागकर कुछ थोड़ेसे सद्‌गुणोंका अभ्यास किया जाय, छोटे छोटे पदाधिकारी अपने मालिकोंकी आज्ञाओंका पालन करें और कोई भी व्यक्ति पूर्ण सदाचारी बननेके पूर्व किसी अधिकारपूर्ण उच्च पदकी प्राप्तिका न तो प्रयत्न ही करे और न प्राप्त होनेपर उसे स्वीकार ही करे। प्रजा अपने शासकों और राजाओंके प्रति भक्ति और आज्ञापालन आदि गुणोंका ध्यान रखे, पर शासक और राजा भी नम्र, शान्त, निष्पक्ष और न्यायी हों। कनफ्यूशियसके मतानुसार जो व्यक्ति सद्‌गुणोंका राजा नहीं है वह राजा बनने योग्य नहीं है, उसे राजा पद ग्रहण न करना चाहिये। राजाको प्रजाके लिये ऐसा आदर्श होना चाहिये कि लोग उसे पूजनीय और विश्वसनीय समझें। उसका यह भी कर्त्तव्य है कि अपने सद्‌गुणोंद्वारा वह प्रजाकी सहायता करे।

उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि चीनमें एक ऐसा राजा हो जो न्यायपूर्वक राज्य करे और ऐसी प्रजा हो जो धार्मिक जीवन व्यतीत करते हुए अपने देशकी व्यवस्थाओंका पालन करे। इसी इच्छाकी पूर्तिके उद्देश्यसे उसने बहुतसी पुस्तकें लिखीं जो चीनके धर्म ग्रन्थ और वहांके विद्यार्थियोंकी पाठ्य पुस्तकें अभीतक बनी हैं। इन पाठ्य पुस्तकोंको विद्यार्थी ऐसा रट लेते हैं कि संकेत पाते ही श्लोकोंके समान उगलने लगते हैं। तब उन्हें उनका अर्थ समझाया जाता है। इस स्थितिमें नवीन सुधारक 'कुआगसी'के मतने हालहीमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया है।

जीवनके साधारण कार्यों के शीघ्र और नि.स्वार्थ सञ्चालन-र कनफ्यूशियस बडा जोर देता था। उसके कथनानुसार ही क्रिया बुद्धिकी पहली सीढी है। वह कहता था कि जो मनुष्य ऋषि होना चाहता है उसे नम्र होना चाहिये और साव-धानतापूर्वक उन कर्त्तव्यों और आचारोंसे अपना कार्य प्रारंभ करना चाहिये जो साधारण मर्त्यके लिये भी नितान्त आव श्यक हैं।

कनफ्यूशियस स्वभावसे ही शिक्षक था। उसकी शिक्षामें कोई भी बात अटपट या गूढ नहीं थी। अपने समकालीन महात्मा बुद्धके समान वह भी आत्मा, परमात्मा, भूतप्रेत, अलौकिक जीवों अथवा भविष्यके विषयकी चर्चा भी न करता था। उसके कार्यक्षेत्रकी सीमा व्यावहारिक ज्ञान ही था जिसके भीतर कल्पनाओं और सिद्धान्तोंके लिये स्थान नहीं था। यही उसकी महत्ताका स्पष्ट लक्षण है। वह स्वय कहता था कि मेरे सिद्धान्त बिलकुल सरल हैं और मेरी शिक्षापद्धति और भी सरल है। जो कोई मेरे शब्दोंको तौल लेता है उसे उनका अर्थ समझने और उन्हें व्यावहारिक रूप देनेमें कठिनाई नहीं होती। एक बार उसके एक शिष्यने उससे पूछा कि क्या ऐसा कोई शब्द है जिससे मनुष्यका पूर्ण कर्त्तव्य व्यक्त हो सके। उसने कहा कि हाँ, ऐसा शब्द 'परस्परता' है जिसका अर्थ है—

जो चाहो सद्प्रत्युपकार
करो अन्यसे सद् व्यवहार

कनफ्यूशियसका गार्हस्थ्यजीवन विशेष सुखमय नहीं था। उसका विवाह उन्नीस वर्षकी अवस्थामें हुआ और एक पुत्र उत्पन्न होनेके पश्चात् उसने अपनी स्त्रीको त्याग दिया। वह अनाजके मालगोदाम और भूमिका सरक्षक नियुक्त किया गया था, पर बाईस वर्षकी अवस्थामें उस कार्यको छोडकर वह शिक्षणकार्य

करने लगा। अट्ठाईस वर्षकी अवस्थामें उसने धनुर्विद्या और गायन-कलाका अभ्यास किया। तीसवें वर्षमें उसके हजारों शिष्य हो गये जो उसके प्रति प्राय असीम प्रेम रखते थे। उसके आचरण और दैनिक जीवनसे जितने अधिक वे परिचित होते गये उतना ही अधिक उनका प्रेम उसके प्रति उत्तरोत्तर बढता गया।

जब कनफ्यूशियसकी अवस्था सत्तर वर्षकी हुई तब एक दिन सवेरे उसके शिष्योंने देखा कि वह अपने बगीचेमें घूमता हुआ इन पक्तियोंको गुनगुना रहा है—

प र्वत होंगे चूर चूर, ग्रहमडल टकरा जावेंगे।

धीमानोंके जीवन-पौधे, निश्चय मुरझा जावेंगे॥

इस घटनाके एक सप्ताह पश्चात् वह पञ्चत्वको प्राप्त हो गया उसके कुटुम्बी अब भी चीनमें हैं और उनकी वहा अच्छी ख्याति है। कनफ्यूशियसके जीवनकालमें शासकों और राजाओंने उसकी बातोंको ध्यानपूर्वक नही' सुना और न उसके नैतिक सिद्धान्तोंका उपयोग राजनैतिक समस्याओंमें करनेका उद्योग ही किया, परन्तु उसकी मृत्युके उपरान्त भीतरी फूटसे उत्पन्न अनन्त दु खोंसे थककर उन्होंने उस मृत ऋषिके वचनोंपर ध्यान दिया तब कुछ शासक उन्हें व्यवहारमें लाने लगे जिसमें उनको सफलता मिली, इसलिये दूसरोंने भी उनका अनुकरण किया जिसका फल यह हुआ कि सब झगडे उपद्रव शान्त हुए और वर्त्तमान वृहद् चीन साम्राज्यकी सृष्टि हुई। चीनी लोग अपनी उन्नति, शान्ति, ऐक्य आदिके लिये इसी महर्षिके ऋणी हैं और जहा कहीं उन्होंने उसकी शिक्षाका उपयोग नहीं किया, वहीं उन्हें असफलता हुई है और वहीं उनकी न्यूनता प्रकट हुई है।

—सुखदेवप्रसाद चौबे

३६ सत्याग्रह आश्रम

मैंने कितने ही विद्यार्थियोंसे, जो पिछले साल मुझसे मिलने आये थे, कहा था कि मैं हिन्दुस्तानमें कहीं एक आश्रम खोलनेवाला हू। आज मैं उसी आश्रमके सम्बन्धमे आपसे कुछ कहना चाहता हू। अपने जीवनका जितना समय मैंने जनसेवामें व्यतीत किया है उसमें मुझे यह अनुभव हुआ है कि जिस चीज-की हमको सबसे अधिक आवश्यकता है वह चरित्रगठन है। सभी जातियोंको इसकी आवश्यकता है पर भारतवासियोंको सबकी अपेक्षा अधिक है। महान् देशभक्त मिस्टर गोखलेकी भी यह सम्मति थी। आप जानते हैं कि वह अपने अनेक व्याख्यानों-में कहा करते थे कि जबतक हमारा चरित्र हमारी इच्छाओंका सहायक न होगा तबतक हम कुछ पानेके योग्य न होंगे। इसी लिये उन्होंने भारत सेवा-समिति स्थापित की थी। आपको यह भी मालूम है कि समितिके सम्बन्धमें जो नियमावली प्रका-शित हुई है उसमें मिस्टर गोखलेने स्पष्ट कहा है कि इस देशके राष्ट्रीय जीवनमें धर्मका सचार करना परमावश्यक है। वह प्राय कहा करते थे कि हमारा चरित्र युरोपीय जातियोंकी अपेक्षा हीन-तर है। मैं नहीं कह सकता कि उस महान पुरुषका जिसे मैं अभिमानके साथ अपना राजनैतिक गुरु समझता हू, यह विचार कहातक सत्य है। किन्तु मुझे निश्चय है कि शिक्षित समुदायको देखते हुए उस कथनके पक्षमें बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसका यह कारण नहीं है कि शिक्षित लोग भटक गये हैं, पर बात यह है कि अवस्थाओंने उन्हें ऐसा ही बना दिया है। चाहे जो कुछ हो यह 'जीवनका मुख्य' नियम है, जिसपर मेरा अटल विश्वास है, कि चाहे हम कितने ही बडे हों हमारा कोई काम सफल नहीं हो सकता जबतक उसका आधार धर्मपर न हो। प्रश्न यह होगा कि धर्म क्या है? मेरा यह उत्तर है कि वह धर्म

नहीं है जो संसारके धर्मग्रन्थोंके अवलोकनसे प्राप्त होता है। इसका सम्बन्ध मस्तिष्कसे नहीं वरन् हृदयसे है। यह ऐसी चीज नहीं है जो हममें न हो, किन्तु हममें उसका विकास होना आवश्यक है। यह सदैव हमारे साथ रहता है, किसीमें ज्ञात रूपसे और किसीमें अज्ञात रूपसे। चाहे हम इस धार्मिक भावको कर्मद्वारा जागृत करें वा ज्ञानद्वारा, यह हमारा एक परमावश्यक कर्तव्य है। यदि हम किसी कामको उत्तम रीतिसे करना वा उसे स्थायी बनाना चाहते हैं तो हमें धर्मका आश्रय लेना चाहिये। हमारे धर्मग्रन्थोंने जीवनके कुछ सिद्धान्त निश्चित कर दिये हैं, हमें उन सिद्धान्तोंको निर्भ्रान्त समझना चाहिये। शास्त्रानुसार इन सिद्धान्तोंका पालन किये बिना हमें धर्मका यथोचित ज्ञान नहीं हो सकता। इन सिद्धान्तोंपर अटल विश्वास रखते हुए और इन शास्त्रीय आदेशोंका पालन करते हुए मैं यह आवश्यक समझता हू कि इस आश्रमके खोलनेमें उन लोगोंकी सहायता लू जो मेरे ही विचारके हैं। आज मैं आपके सामने उन नियमोंको उपस्थित करता हू जो इस आश्रमके निवासियोंको पालन करने होंगे।

इनमेंसे पाच यह हैं और सबमें पहला है

सत्यव्रत

सत्यव्रतसे हमारा केवल यही अभिप्राय नहीं है कि यथासम्भव झूठ न बोलें, अर्थात् वह सत्य नहीं जिसका भाव इस लोकोक्तिमें दर्शाया गया है 'सचाई सर्वोत्तम नीति है", जिसके भीतर यह अर्थ छिपा हुआ है कि यदि वह सर्वोत्तम नीति न हो तो हम उसे त्याग सकते हैं, लेकिन यहा सत्यका यह अर्थ है कि हम सदैव सब प्रकारसे अपने जीवनको इसी नियमके अधीन रखें। इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिये मैंने प्रह्लादके जीवनका उदाहरण दिया है। सत्यका पालन करनेके लिये बालकने अपने

ही पितासे विरोध किया। और उनसे बदला लेकर अपनी रक्षा नहीं की वरन् सत्यकी रक्षाके लिये वह अपने प्राण देनेको प्रस्तुत था। उसने अपने पितापर अथवा उन लोगोंपर जो उसके पिताकी आज्ञासे उसे कष्ट दे रहे थे, हाथ नहीं उठाया। इतनाही नही, वह इन आघातोंको रोकना भी नहीं चाहता था। उसने प्रसन्न चित्तसे कष्टोंको सहन किया। अन्तमें सत्यकी विजय हुई। यह बात नहीं है कि प्रह्लादने इन यन्त्रणाओंको इसलिये सहन किया कि वह जानता था कि उसके जीवनकालमें ही किसी न किसी दिन सत्यकी जय होगी। यदि उन कठोर आघातोंसे उसकी मृत्यु भी हो जाती तो भी वह अपने व्रतपर दृढ़ रहता। सत्यका यह आदर्श है, जिसका मैं पालन करना चाहता हूँ। अभी कलकी बात है, बात तुच्छ है, लेकिन वह उस घासके तिनकेकी भांति है जो बतलाता है कि हवाका रुख किधर है। घटना यह थी—मैं अपने एक मित्रसे, जो मुझसे, एकान्तमें बातें करना चाहते थे, कुछ निजकी बातें कर रहा था। इतनेमें एक तीसरे मित्र आ गये और उन्होंने नम्रतासे पूछा कि मेरे आनेमें कोई बाधा तो नहीं है? वह मित्र जिनसे मैं बातें कर रहा था, बोले, नहीं नहीं, कोई ऐसी गुप्त बात नहीं है। मैं यह सुनकर चौंक पडा। क्योंकि वह मुझे एकान्तमें ले जाकर बातें कर रहे थे। लेकिन उन्होंने नम्रतावश कह दिया कि कोई गुप्त बात नहीं है। यह बात मेरे सत्यकी परिभाषासे बाहर है। मेरे विचारमें मेरे मित्रको विनयभावसे किन्तु साफ साफ कह देना चाहिये था कि हां, आप इस समय क्षमा कीजिये। ऐसा करनेसे हमारे नये मित्र जरा भी—यदि सज्जन होते तो—बुरा न मानते। हमें हर मनुष्यको तबतक सज्जन ही समझना चाहिये जबतक हम उसमें कोई बुराई न देखें। सम्भव है, कुछ लोग कहें कि इस घटनासे हमारी जातीय नम्रता प्रकट होती है। मेरे विचारमें यह बनावटीपन है। यदि हम शिष्टाचारके वश! ऐसी बातें करते

रहेंगे तो वास्तवमें हम कपट-धर्मियोंकी जाति बन जायँगे। मुझे अपने एक अँगरेज मित्रकी याद आती है। वह एक कालेज-के प्रिन्सिपल हैं और इस देशमें कई सालसे रहते हैं। वह मेरे विचारोंसे अपने विचारोंकी तुलना कर रहे थे। उनहोंने मुझसे पूछा, क्या आप यह मानते हैं कि आपलोग साधारण अँगरेजोंके प्रतिकूल जहा "नहीं" कहना चाहिये वहा "हा" कह दिया करते हैं? मैंने कहा, हा हम वास्तवमें नहीं करते हुए सकुचाते हैं, हम किसी मनुष्यको दु खी नहीं करना चाहते। हमारे आश्रममें यह नियम है कि जब मनमें नहीं हो तो साफ साफ नहीं कह दिया जाय। यह हमारा पहला नियम है। दूसरा नियम

अहिसाव्रत

है। अहिसाका आशय है जीवोंकी रक्षा करना, लेकिन मुझे इसमें अत्यन्त उच्च और पवित्र भाव भरे हुए मालूम होते हैं। अहिसाका अभिप्राय यह है कि हमसे किसीको दु ख न पहुँचे, हम अपने हृदयमें उस मनुष्यके प्रति भी अनुदार विचार न आने दें जो हमें अपना शत्रु समझता हो। देखिये, यह विचार कितने तुले हुए शब्दोंमें रखा गया है। मैं यह नही कहता "जिसे तुम अपना शत्रु समझते हो" बल्कि "जो तुम्हें अपना शत्रु समझता हो।" क्योंकि अहिसाके व्रतधारीके लिये शत्रुका अस्तित्वही नहीं है। किन्तु उनलोगोंपर उसका कोई वश नहीं होता जो अपनेको उसका शत्रु समझते हैं। इसीलिये यह कहा गया है कि हम ऐसे आदमियोंसे भी बुरा न मानें। यदि हम घूसेके बदले घूसा मारें तो हम अहिसाव्रतको भग करते हैं। लेकिन मैं इससे भी आगे जाता हू। यदि हम अपने किसी मित्र या शत्रुके किसी कामसे रुष्ट हों तो भी हम इस व्रतको भग कर देते हैं। रुष्ट होनेसे मेरा अभिप्राय यह है कि हम शत्रुका बुरा मनाने लगें अथवा उसे स्वय या किसी अन्य पुरुषके द्वारा अपने मार्गसे हटानेका यत्न करें। यदि हम इस विचारको मनमें आने

तो हम अहिंसा सिद्धान्तसे दूर हो जाते हैं। जो लोग इस आश्रममें प्रवेश करेंगे उन्हें अहिंसाका यही आशय मानना पडेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम इस सिद्धान्तका पूर्णरूपसे पालन करेंगे, नहीं, यह एक आदर्श है, जिसे हमें सदैव अपने सामने रखना चाहिये। लेकिन यह रेखागणितकी कोई परीक्षा नहीं है जो कठ की जाय, और न यह उच्च गणितका कोई प्रश्न हल करनेके समान है। यह इससे कहीं कठिन है। तुम उन प्रश्नोंके हल करनेमें आधी आधी राततक जागे हो, पर यदि तुम इस सिद्धान्तपर चलना चाहो तो, तुमको इससे कहीं अधिक परिश्रम करना पडेगा। तुम्हें कितनीही रातें जागते हुए बितानी पड़ेंगी। कितने ही मानसिक कष्ट भोगने पड़ेंगे तब जाकर कहीं तुम उस लक्ष्यके निकट पहुँचोगे, यदि हम और आप धार्मिक जीवनका तत्त्व समझना चाहते हैं तो हमें उस लक्ष्यतक पहुँचना पडेगा। मैं इस विषयमें इसके सिवा और कुछ न कहूगा कि वह मनुष्य जो इस सिद्धान्तके सामर्थ्यपर विश्वास रखता है, अन्तमें जब वह लक्ष्यके निकट पहुँच जाता है सारे ससारको अपने पैरोंपर गिरा हुआ पाता है। उसे इसकी इच्छा नहीं होती। लेकिन इसे वह रोक नहीं सकता। यदि तुम अपना प्रेम अपने शत्रुपर दृढ़ताके साथ प्रगट करो तो वह इस प्रेमका बदला अवश्य देगा। दूसरा विचार जो अहिंसाव्रतसे उत्पन्न होता है यह है कि यहा हत्याकारियोंके लिये कोई स्थान नहीं है। यहा तक कि तुम अपने देशके उपकारके लिये भी, अपने भाई बधुओंके लिये भी किसीपर आघात नहीं कर सकते। अहिंसाव्रत हमको सिखलाता है कि हम अपने शरणागतोंकी मानरक्षा करनेके लिये अपनेको अत्याचारीके सुपुर्द कर दें। इसके लिये शस्त्रप्रहारसे अधिक शारीरिक और मानसिक यत्नकी आवश्यकता है। इस सिद्धान्तके अनुसार वह स्वदेशप्रेम भी अक्षम्य है जो परस्पर युद्धको नीतिसंगत सिद्ध करता है। तीसरा व्रत

ब्रह्मचर्य्य

है। जो लोग जातीय सेवा करना चाहते हैं अथवा सच्चे धार्मिक जीवनका आनन्द उठाना चाहते हैं उन्हें ब्रह्मचर्य्यका पालन करना चाहिये, चाहे वह ब्याहे हों या कुवारे। विवाह स्त्री और पुरुषको विशेष रूपसे मित्रताके वधनमें बाध देता है। इससे वे इस जन्ममें वा दूसरे जन्ममें भी पृथक् नहीं हो सकते। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस मित्रतामें कुवासनाए सम्मिलित हों, चाहे जो कुछ हो, हम आश्रम-निवासियोंके लिये यही नियम रखना चाहते हैं। चौथा व्रत

इंद्रियोंका दमन

करना है। जो मनुष्य अपनी पाशविक वासनाओंको सहजमें रोकना चाहता है उसे इन्द्रियोंका दमन करना आवश्यक है। यह बहुत कठिन व्रत है। मैं विक्टोरिया होस्टल देखकर अभी चला आ रहा हूं। ये पाकशालाए जातिभेदके कारण नहीं बनी हैं, बल्कि भिन्न भिन्न प्रान्तोंके आदमियोंके लिये भिन्न भिन्न पदार्थ बनानेके लिये बनी हैं। केवल ब्राह्मणोंके लिये अलग अलग कमरे हैं, उनकी पाकशालायें भी अलग अलग हैं, जहा उनकी रुचिके अनुसार भोजन मिलता है। आप समझ सकते हैं कि यह केवल इन्द्रियोंके वशमें हो जाना है, जब कि हमें उनको अपने वशमें करना चाहिये था। मेरा यह कहना है कि जबतक हम इन आदतोंको छोड न देंगे, जबतक हम चाय और कहवेकी दूकानों और इन पाकशालाओंको त्याग न देंगे, जबतक हम उस सादे भोजनसे तृप्त न होंगे जो हमारे स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है, और जबतक हम उन उत्तेजक पदार्थों को छोड न देंगे जिन्हें हम अपने भोजनके साथ मिला लेते हैं, तबतक हम कभी अपनी कुवासनाओंको वशमें न कर सकेंगे। यदि हम ऐसा न करेंगे तो उसका परिणाम यह होगा कि हम भ्रष्ट हो जायेंगे

और पशुओंसे भी गये बीते हो जायँगे। खानेपीने और विषय-भोग करनेमें हम पशुओंहीके समान हैं। लेकिन क्या कभी आपने किसी घोडे बैलको वासनाओंमें इतना आसक्त देखा है? क्या आप समझते हैं कि यह भी सभ्यताका कोई लक्षण है कि हम अपने खानेयोग्य पदार्थों की सख्या यहातक बढ़ाते चले जायँ, कि हमें उनके नाम भी याद न रहें, सदा नये नये पदार्थों की खोज करते रहें, और नये भोजनोंके विज्ञापन देखते रहें? पांचवा व्रत

अस्तेय व्रत

है। मेरा कहना है कि हम सभी एक प्रकारसे चोर हैं। यदि मैं कोई ऐसी चीज ले लू जिसकी मुझे तत्काल ही आवश्यकता नहीं है और उसका सचय करू तो मैं उसे किसी दूसरे मनुष्यसे चुरा रहा हू। प्रकृतिका यह नियम है कि वह प्रतिदिन हमारी आवश्यकताओंके लिये काफी सामग्री पैदा करती है। यदि प्रत्येक मनुष्य उसमेंसे उतनाही ले जितना कि उसके लिये आवश्यक है अपनी आवश्यकतासे जरा भी अधिक न ले तो ससारमें दरिद्रताका नाम भी न रहे, और कोई भूखों न मरे। मैं सोशलिस्ट नहीं हू। धनवानोंसे उनका धन छीनना नही चाहता। लेकिन मेरा अपना विश्वास है कि जो लोग अन्धकारमें प्रकाश फैलाना चाहते हैं उनके लिये इस नियमका पालन करना आवश्यक है। मैं किसीको उसके अधिकारोंसे वचित नही करना चाहता। ऐसा करना अहिसाव्रतका भग करना है। यदि किसीके पास मुझसे अधिक विभव है, तो हो, मुझे इसकी चिन्ता नहीं। किन्तु अपने जीवनको सात्विक बनानेके लिये यह आवश्यक है कि मैं आडम्बरोंसे मुक्त रहू। हिन्दुस्तानमें तीन करोड मनुष्य ऐसे हैं जिनको दिनमें केवल एक बार खाना मिलता है, वह भी सूखी रोटी और नमक। हमको और आपको अपना सम्पत्तिपर तबतक कोई अधिकार न होना चाहिये जबतक इन

मनुष्योंको काफी अन्न और वस्त्र न मिले। हमें और आपको ज्ञान रखनेके कारण अपनी आवश्यकताओंको घटाना और सहर्ष भूखका कष्ट सहना चाहिये। इसलिये कि उन दरिद्रोंका भली भांति पालनपोषण हो सके। इसके बाद छठा व्रत

स्वदेशीका व्रत

है। यह एक परमावश्यक व्रत है कि हम स्वदेशी जीवन और स्वदेशी भावसे परिचित हों। मेरा आपसे कहना है कि यदि हम अपने पडोसीको छोडकर अपनी आवश्यकताए कहीं औरसे पूरी करें तो हम जीवनके एक पवित्र नियमको भग कर रहे हैं। यदि कोई मनुष्य 'बम्बईसे आव और आपको अपनी चीजें दे तो आपको उन चीजोंके मोल लेनेका तबतक अधिकार नही है जबतक कि आपके ही नगरका कोई व्यापारी वही चीजें दे सकता है। आपके गावमें यदि कोई नाई है तो आपको मद्रासके कुशल नाईसे बाल बनवानेका कोइ अधिकार नहीं है। अगर आप चाहते हैं, कि आपका नाई भी ऐसा ही होशयार हो तो उसको मद्रास भेजकर अपने व्यवसायमें निपुण बना दीजिये। जबतक आप ऐसा न कर लें आपको दूसरे नाईसे बाल न बनवाने चाहिये। इसको स्वदेशी कहते हैं। इसलिये यदि हिन्दुस्तानकी बनी हुई चीजें न मिलें तो हमें उन्हें त्याग देना चाहिये। सम्भव है हमें बहुत सी ऐसी चीजें न मिल सकें जिन्हें हम आवश्यक समझते हैं। किन्तु जब एक बार यह भाव आपके मनमें आ जायगा तो आपके सिरसे एक बड़ा बोझ उतर जायगा। इसके बाद सातवा व्रत

निर्भय व्रत

है। हिन्दुस्तानमें भ्रमण करते हुए मैंने देखा है कि शिक्षित 'समुदाय एक बडे भयसे दबा हुआ है, हम किसीके सामने मुँह नहीं खोल सकते, हम 'अपने माने हुए सिद्धान्तोंको सर्वसाधारणके सम्मुख 'प्रगट नही कर सकते। यदि हमारी इच्छा हो —

उनके विषयमें गुप्त रीतिसे बातें करें। अपने घरमें बैठे हुए जो चाहें सो करे, समाजके सामने कहनेका साहस नहीं रखते। यदि हमने मौनव्रत धारण किया होता तो कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं थी, जब हम जनताके सामने कुछ कहते हैं तो वही बातें कहते हैं कि जिनपर हमारा विश्वास नहीं है। यह हाल उन सब मनुष्योंका है जो हिन्दुस्तानमें व्याख्यान दिया करते हैं। इसलिये मैं आपसे कहता हू कि ईश्वरके सिवा किसीसे नहीं डरना चाहिये। जब ईश्वरसे डरने लगेंगे तो हमें किसी मनुष्यका भय नहीं रहेगा चाहे वह कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। निर्भयताके बिना सत्यका पालन करना असम्भव है। इसीलिये भगवद्गीतामें कहा गया है कि निर्भयता ब्राह्मणका परम धर्म है। हम सत्यसे इसलिये मुह मोडते हैं कि हम उसके फलसे डरते हैं। धर्मका तत्व समझनेसे पहले और भारतका नेता बननेका विचार करनेसे पहले हमें निर्भयताका यह व्रत पालन करना चाहिये। इसके बाद आठवा व्रत

अछूत जातियोंका व्रत

है। हिन्दू जातिपर यह बडा भारी कलक है। मैं यह नहीं मानता कि यह प्रथा सनातनसे चली आती है। मेरा विचार है कि अछूत जातियोंसे घृणा करनेकी प्रथा उस समय हममें आयी होगी जब हमारा जीवन बहुत ही अवनत दशामें रहा होगा और वही कुसस्कार अब तक हमारे सिरपर सवार है। मैं समझता हू कि यह प्रथा हमारे लिये और आपके लिये समान है। जबतक यह पाप हमसे दूर न होगा तबतक हमारी दशाका सुधार होना असम्भव है। यह वह दण्ड है जो हमारे दुष्कर्मोंके बदले हमें मिल रहा है। किसी पुरुषको केवल उसके उद्यमके कारण अछूत समझ लेना मेरी समझसे बाहर है। यदि आप भी जो आधुनिक शिक्षा प्राप्त कर चुके हैं इस पापमें भाग लेते हैं तो

इससे तो आपका मूर्ख रह जाना ही अच्छा था। वास्तवमें यह हमारे मार्गमें बडी कठिन बाधा है। यद्यपि हम समझते हैं कि समस्त संसारमें एक मनुष्य भी ऐसा नहीं जिसे हम अछूत समझ सकें लेकिन आपके विचारोंका असर न तो अपने परिवारपर होता है, न पडोसियोंपर क्योंकि आपके विचार अगरेजी भाषामें होते हैं, इसलिये हमने आश्रममें यह नियम रखा है कि

शिक्षा देशी भाषाओंद्वारा दी जाय

युरोपमें प्रत्येक शिक्षित मनुष्य केवल अपनी ही भाषा नहीं, बल्कि और दो तीन भाषाएं सीखता है। हमने यह नियम रखा है कि हम जितनी देशी भाषाएं पढना चाहें पढें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इन भाषाओंके सीखनेमें उतनी कठिनाई नहीं होती जितनी अगरेजी भाषाके। हम अगरेजी भाषाके अधिकारी नहीं हो सकते हम इस भाषामें अपने विचारोंको उतनी स्पष्टतासे वर्णन नही कर सकते जितनी अपनी मातृभाषामें। आप अपनी स्मृतिसे बाल्यावस्थाको कैसे निकाल देंगे? लेकिन हम जिस दिन अगरेजी आरम्भ करते हैं उसी दिनसे अपने पूर्वकालको भूलने लगते हैं। यही कारण है कि हमारा जीवन इतना बनावटी हो गया है। शिक्षाका इतना प्रचार होनेपर भी हम अभीतक दूसरेको अछूत समझते आते हैं। शिक्षासे हमें इस दुरवस्थाका ज्ञान तो हो गया है किन्तु हम भीरुतावश इस ज्ञानको व्यवहारमें नहीं ला सकते, हममें अपनी कुलप्रथा और वस्तुओंके आज्ञापालनका मिथ्या विचार घुसा हुआ है। हम कहते हैं यदि हम ऐसा करें तो हमारे मातापिता शोकसे मर जायँगे। लेकिन प्रह्लादने यह कभी न सोचा कि विष्णुका पवित्र नाम लेनेसे उसके पिताका प्राणान्त हो जायगा। उसने रामनामकी ध्वनिसे सारा घर गुँजा दिया। यहांतक कि अपने पिताके सामने भी उसकी जिह्वापर यही नाम था। इसलिये यदि हम इस विषयमें अपने मातापिताकी आज्ञाको

न माने ता भी कोई हानि नहीं है। यदि वह इस आघातसे मर जाय तो इससे कोई अपकार नहीं होगा। कभी कभी इस प्रकारके दुस्साहसकी आवश्यकता होती है। क्योंकि ईश्वरीय नियम सर्वोपरि है और उसके सामने हमको और हमारे माता पिताको यह बलिदान करना पड़ेगा।

इस आश्रममें, हम अपने हाथसे कपड़े बुनते हैं। आप कहेंगे हम अपने हाथसे काम क्यों करें। यह मोटे काम अपढ़ लोगोंके हैं हमें तो केवल साहित्य और राजनैतिक प्रबन्धोंसे प्रेम है। हमें परिश्रमका महत्व जानना चाहिये। यदि कोई नाई या मोची कालेजमें पढ़ने लगे तो उसे अपना उद्यम नहीं छोड़ना चाहिये। मेरी समझमें नाईका पेशा उतना ही अच्छा है जितना वैद्यका। अन्तमें जब हम इन नियमोंका साधन कर चुकें तब हमें

राजनीति

में प्रवेश करना चाहिये। उस समय हमारे भटकनेकी जरा भी शंका न रहेगी। धर्महीन राजनीति एक निरर्थक वस्तु है। यदि इस देशके विद्यार्थी राष्ट्रीय सम्मेलनोंमें उत्साह दिखाने लगे तो यह हमारी जातीय उन्नतिका कोई लक्षण नहीं है। किन्तु इससे मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि आपको अपने शिक्षाकालमें राजनीतिका अध्ययन ही न करना चाहिये। राजनीति हमारे जीवनका एक अङ्ग है। हमें अपनी राष्ट्रीय संस्थाओंका अपने राष्ट्रीय उत्थानका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हम यह बाल्यकालहीसे कर सकते हैं। इसलिये हमारे आश्रममें हरएक बच्चेको इस देशकी राजनैतिक प्रथा समझायी जायगी, उसे बतलाया जायगा कि देशमें कैसे कैसे नये भाव, नयी आशायें और नये जीवनका उद्भव हो रहा है। लेकिन हमको धर्मके स्थिर और उज्ज्वल प्रकाशकी आवश्यकता है। इस धर्मकी नहीं जिसका हमारे मस्तिष्कसे सम्बन्ध है, बल्कि उस धर्मकी जो अमिट रूपसे

हमारे हृदयपर अंकित हो गया हो। सबसे पहले हम उ
धार्मिक भावका अनुभव आवश्यक समझते हैं, और जब
वह प्राप्त हो गया तो हमें जीवनके सभी विभागोंमें प्रवेश क
का अधिकार है। उस समय विद्यार्थियोंको सम्पूर्ण विभाग
सम्मिलित होना चाहिये। इसलिये कि वह जीवन संग्राम
पुरुषोंके समान अपना कर्त्तव्य कर सके। आज हम क्या देख
हैं? राजनैतिक जीवन विशेषकर विद्यार्थियोंही तक आबद्ध है
ये लोग जैसे ही कालेज छोडते हैं नौकरियोंके पीछे दौडने ल
हैं। उनकी सदिच्छाये दब जाती हैं, न वह ईश्वरको जानते
न शुद्ध वायु और प्रकाशका सेवन कर सकते हैं। उन्हें उ
शक्तिपूर्ण स्वाधीनताका कुछ भी ज्ञान नही होता जो इन निय
के पालन करनेसे प्राप्त होती है। —म० गाधी

३७ पद्यभाग

(१) कृष्णावतार

१ सुतने निज हित बाप न समझा बन्द कराया
पति यमद्वार उतार जार कर बैठी जाया
कंचन कामिनि हेत बन्धु हो गया कसाई
पाप छिपा, सन्तान मार, हिय दया न आई

२ डाकू चोर जुआर हुए मंत्री, पद पाये
सारे कोष लबार छलीके हाथों आये
डूब गये व्यवहार घूसने दृष्टि घुमाई
न्यायमूर्त्ति जल्लाद हुए कलि-नीति निभाई

३ फैल गये भर देश लफंगे और लुटेरे
चलने लगे कुचक्र कलहमय कुटिल घनेरे

महा भीम दुर्भिक्ष लगा चुन चुन कर खाने
जग दुर्दैव दरिद्र बिराजा खुले खजाने

४ खेत गये सब सूख सूमके हिय सी धरती
यद्यपि डाले गोड़ न छोड़े ऊसर परती
कहीं न बरसा मेह खेह भागोंने खायी
कहीं हुई अतिवृष्टि सृष्टि सब खोद बहायी

५ कुछ भी कहीं कुधान्य कभी भूलोंसे होते
खाते उल्लू मूस घूस टिड्डीदल तोते
फैले कितने रोग, महामारीने लूटे
मरे असखों लोग, भाग भारतके फूटे

६ जितनी पैदावार भूमिकर उससे भारी
खेतीकी कुछ हौस बची थी, इसने मारी
खिंचता था धन रत्न प्रजा होती थी रीती
सुख था मरना, कौन सुनै था उनकी बीती

७ अस्त्र शस्त्र सब छीन दीनजन शान्त कराया
हुआ शत्रु बलहीन देख जीमें जी आया
बैठाया आतक निहत्थ प्रजाको भूना
लाग्र बसाये दस्यु, देख गावोंको सूना

८ फैला अत्याचार प्रजा अधमरी बनायी
नारि जाति अपमान किया, दुर्नीति चलायी
पर नरपति दे। घूस धूर्तको धन बँटवाये
सेनाके बल "धाक।"बढ़ायी यश फैलाये

९ राजा कंस नृशंस लगा करने यों शासन
करके बन्दी बाप, आप बैठा सिंहासन
कर स्वतन्त्र अधिकार सभी पिटवायी डौंडी
धूर्त्त चला जो जाल पड़ी वह कभी न औंडी

१० हुआ सत्यका लोप, अस्त मित ज्ञान दिवाकर
गया मोह तम फैल, हुए स्वारथरत सब नर
धर्माधर्म-विवेक भगा विश्वास निलाना
श्रद्धा हियसे ओट हुई यश दूर पराना

११ साहस हुआ सभीत वीरता कुत्सित कायर
आर्त्त हुआ परमार्थ, हुआ औदार्य दीनतर
फैला तर्क कुतर्क, हुए नृप स्वेच्छाचारी
वादि-विपयरत पाप-परायण सब नरनारी

१२ छिपे सुजन नर साधु पड़े प्राणोंके लाले
दुष्ट हुए बलवान सभी अरमान निकाले
ऐसा देख अनर्थ प्रकृति थिरता थहरायी
विकृत व्यवस्था निरख हुआ धरती घबरायी

१३ हुआ निकट संघर्ष उभय बलने बल खाया
घोर शक्ति उत्कर्ष हुआ पलटी जग काया
क्या हो रहा युगान्त ? क्रान्तिसे भ्रान्त हुए सब
लख उत्कट दुर्दान्त दुकाल अशान्त हुए सब

१४ जितने बलके देव,- विश्वके धारण हारे
विकल हुए, सब लौटे केन्द्रकी ओर निहारे

विद्युल्लता समान शक्ति सहसा-सचालन
हुआ उसीका पूर्ण विश्व करता जो पालन
१५ हुई गिरा गम्भीर मेटनेको सब बाधा
कि नैराश्य-घनश्याम १ अकमें प्रकटी राधा २
सुनते थे सब देव ब्रह्मने अर्थ बखाना
हुई आस दुर्ख दूर हुए यह निश्चय माना

* * * * * * *

१६ यह वन्दीगृह धन्य, पुण्यका मन्दिर पावन
सज्जनको विश्राम, सत्यव्रतको मनभावन
देख भयानक भीत, भीत होते हैं पापी
कठिन कराल कपाट देख कॉपै परितापी
१७ अन्धकार अति घोर, निशीथ घटामय काली
पहरा चारों ओर चौकसी कडी निराली
लोहेकी जंजीर द्वारमें पैरोंमे थी
अपनोंमें था बन्ध, मुक्ति कुछ गैरोंमें थी
१८ यत्रित चारों ओर न ऐसा मौन कहीं था
हिये ज्ञानकी जोत पानका गौन नहीं था
बुद्धि जीवकी भात, अविद्याकी वन्दीमें
बेडी दोनो पाव कोसते दम्पति जीमें
१९ वे हीं ये वसुदेव देवकी धर्मपरायन
करके जिनका ब्याह दिये सब भात रतन धन

१ घनश्याम=कृष्ण तथा बादल। २ राधा=गोपी तथा बिजली।

भगिनी छोटी जान, हजारों रथ कसवाये
बड़ी धूमसे साज, अनूप जलूस बनाये

२० बना सारथी आप, चला पहुँचाने घरतक
राजा कंस नृशंस सुनी इक गिरा भयानक
भावीसे भयभीत हाथमें खड्ग उठाया
बीच पड़े वसुदेव, बचाय उसे समझाया

२१ "यदपि आठईं बार जन्म लेगा तव पालक
तब भी मैं प्रतिगर्भ तुम्हें दूगा निज बालक
वैरीको पहचान खड्गकी धार पिलाना
नारीपर वीरत्व नहीं तलवार चलाना"

२२ था भावी बलवान मीच सिर आय विराजी
हुआ एकको छोड़ आठपर मूरख राजी
अगला लाभ निहार मूलको यथा लगाया
हत्याकी सम्पत्ति कालका ब्याज बढ़ाया

२३ पर न हुआ विश्वास उन्हें बन्दीमें डाला
कड़ी बेड़ियाँ पाव, पड़ा तालोंपर ताला
एक एक कर सात हुए नवजात हवाले
राक्षसनें बध बाल लाल दामन कर डाले

२४ उधर आठवा शत्रु खास है आनेवाला
कड़ी चौकसी रात हुई चिन्ता दोबाला
इधर आठवा पुत्र वही आँखोंका तारा
आते ही वह नूर गोदसे होगा न्यारा

२५ यह चिन्ता, यह शोक, आज जी को खाता है
हाय, आज यह जन्म अमगल दरसाता है
उठता हियमें शूल कठिन पन किया पिताने
हुई भयानक भूल, लगा प्रारब्ध सताने

२६ ऐसी दुर्मति, हाय ! हुई किस अवके फलसे ?
या प्राणोंका मोह, अज्ञताके या बलसे
यह समझे ये ठग कोई तबतक निकलेगा
रोकेगा मनुजत्व न भाजा जान बधेगा

२७ पर निकला अतिक्रूर, निहत्थ हमें कर बन्दी
पनपर कर मजबूर पूत मारे छल छन्दी
दे दें यदि हम प्राण न तौ भी ब्राल बचेगा
हते जायेंगे लाल, किंतु यह काल बचेगा

२८ जगमे हैं क्या तात मात ऐसे भी पापी
प्राण बचा सन्तान बधावें जो परितापी ?
हाय ! राक्षसी वृत्ति अवम है हुई हमारी
जिसपर हमने रीझ पियारी सन्तति वारी

२९ रहे इसी विधि सोच उभय बन्दी शोकाकुल
सहसा दमकी ज्योति तुरत सब तिमिर गया धुल
लहरा उठा प्रकाश, मूल पावक पूषणका
देख पड़ा मुख पद्म खिला यदुकुल-भूषणका

३० चकाचौंध जब दूर हुई छवि मञ्जु विलोकी
मात पिता तत्काल हुए निश्चिन्त निशोकी

उमड़े ब्रह्मानन्द सिन्धुमें गोते खाये
रहे एकटक देख उभय सुधबुध बिसराये

३१ "ले हमको झट नन्दगावकी यात्रा कीजे
धर जसुमतिके पास हमें, कन्या ले लीजे
मार असुर कुछ काल बिता, मथुरा आऊँगा
कंस-बंस-विध्वंस तुम्हें फिर छुड़वाऊँगा"

३२ शिशुके हिले न ओठ, शब्द यद्यपि ये आये
हुए चकित वसुदेव, किन्तु झट गोद उठाये
अहो महो आश्चर्य ! पांवमें बेड़ी सरकी
खुले यन्त्र, जंजीर गिरी उस कारावरकी

३३ खुले पलकसे द्वार पाहरू सोते पाये
दृष्टि-वेग वसुदेव चले सुत सूप छिपाये
बैरी आसु तार सरिस बरसै था पानी
पड़ा मूसलाधार बढ़ा कितनी हैरानी

३४ जमुना हुई अथाह, सिन्धु सी लहरें आयीं
दायें सिंह दहाड़ रहा, वासुकि दिशि बायीं
जो भवसागर पार करे सबको बिन खेवा
ले उसको सरि पार चले करने वसुदेवा

३५ ठोकर रखते पाव, नहीं टिकता न सम्हलता
ठोकर खाकर दूर कहीं हट रहा फिसलता
धारा धक्के मार बहा कुछ ले जाती है
हिम्मत करके जोर राहपर फिर लाती है

३६ क्या अद्भुत व्यापार ! लिये सागर गागरमें
उसको नदी अथाह लगे डूबे सरि सरमें
सिरपर लिये स्वराज विपदकी नदी थहाता
जैसे भारत आज सुदिन तटकी दिशि जाता

३७ सिरपर उनकी छाह सृष्टि लय जिसकी माया
कर हिय दृढ विश्वास, बढे भय धोय बहाया
जमुनाजीने गोद लिया दममें पहुंचाया
झटपट तटपर आय गावको पाव बढ़ाया

३८ सोते जसुदा नन्द, सभी गोकुल सोता था
जो जागे था आज, रत्न अपना खोता था
मणि ले ली, धर लाल, चोर सच्चा झट सरका
वही सूप सह बाल, वही मग काराघरका

३९ सुता देवकी गोद गयी पग बेडी डाली
लगे किवाड़े आप, रही फिर भी निशि काली
गये सन्तरी जाग नींदसे डर पछताये
रोना सुन भय भाग गया, सवाद सुनाये

४० आगेका कुछ हाल कहे क्या जो कि अधमने
मार बाल निर्दोष किया उस राक्षस यमने
गोकुल भी जासूस भेदिये असुर पठाये
विषमें मिससे जोड़ तोड़ कितनेहि लगाये

४१ क्रमश बढ़े गुविन्द चन्दकी कला सरीखे
ग्वालबालके बीच पले पर थे अति तीखे

सुनकर इनकी वृद्धि तेज उसका घटता था
हुए सयाने जान नित्य राक्षस लटता था

४२ सामदाम भय भेद कोई छल छन्द न छूटे
शत्रु न पाया फाँस, कपटके फन्द न छूटे
मारे गये अनेक वीर रणधीर गुप्तचर
जिया आस बल आप बार बहु डरसे मर कर

४३ प्रतिभाशाली शत्रु, अनूपम भुजबलवाला
बडी बुद्धि लघु बैस, कि आफतका परकाला
देख मिले कुछ कंस पक्षके, खलसे फूटे
हुआ पापका अन्त दुष्टके डैने टूटे

४४ प्रभुने उसको मार भूमिका भार उतारा
वन्दी गृहको खोल, किया सबका छुटकारा
उग्रसेनको फेर राज्य आसन बैठाला
राजपुरुप बन आप सुशासन काज सँभाला

४५ यादवकुलकी राजसभा सगठन करायी
न्याय नीति फैलाय युद्धकी रीति सिखायी
देख अखड सुराज लगे जलने परितापी
जरासन्ध बहु बार चढ़ा पर हारा पापी

४६ यादव-रक्षा हेत द्वारकापुरी बसायी
जरासन्ध बधवाय शांति डौंडी फिरवायी
कौरव पाण्डव बीच सन्धि-उद्योग रचाया
हुआ न राजा स्वार्थ, युद्धका चक्र चलाया

४७ समझ युद्धफल पार्थहृदय दुर्बलता आयी
सब सन्देह निवार राजविद्या सिखलायी
हुए स्वार्थके यज्ञ हवन नरपति बहुतेरे
सैनिक हुए समाप्त युद्धमें कहीं घनेरे

४८ पाय स्वार्थपर नाश किये यादवकुल सारे
पृथ्वी भार उतार आप निज लोक सिधारे
"जब जब होगा लोप धर्मका तब आऊगा"
आज्ञाकी पनरोप "दुष्टवध करवाऊँगा"

४९ वही दशा है आज, कष्टसे हम हैं आरत
व्यापा जगत अधर्म, पड़ा विपदामें भारत
फैला है अन्याय, रही पिस प्रजा दुखारी
ईति-अग्नि-भय-रोग-विवश छीजे नरनारी

५० कब प्रकटोगे श्याम! दीन-भारतहित-प्यारे!
जायेंगे अन्याय-स्वार्थ-दानव कब मारे!
हे बन्दी यह मातृभूमि कब मुक्त करोगे?
अपना प्यारा देश धर्मसे युक्त करोगे?

—रा० गौ०

२

१—काशीमें गंगाका दृश्य

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्ता मनि पोहति॥

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नर-गन मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिबिध भय दूर मिटावत ॥
श्रीहरि-पद-नख-चन्द्रकान्त मणि द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म-कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस ॥
शिव-सिर-मालति माल,भगीरथ नृपति पुण्य फल ।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर-सुवन सठि सहस परस जलमात्र उधारन ।
अगनित धारा रूप धारि सागर सचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भैंट्यो जग धाई ।
सपने हू नहिं तजी रही अकम लपटाई ॥
कहूँ बँधे नव-घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका ।
घहरत घटा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत ।
वेद पढत कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुँ सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत ।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अतिही छबि पावत ।
वारिधि नाते ससि-कलङ्क मनु कमल मिटावत ॥

सुन्दरि ससि मुख नीर-मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत॥
दीठि जहाँ जहँ जात रहत तितहीं ठहराई।
गङ्गा-छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई॥

२—प्रभाती

प्रगटहु रवि-कुल रवि निसि बीती प्रजा-कमलगन फूले।
मन्द परे रिपुगन तारा सम जन-भय-तम उनमूले॥
भगे चोर लम्पट खल लखि जग तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बन्दी सूत चिरैयन मिलि कल रोर मचायो॥

तुव जस सीतल पौन परसि चटकी गुलाबकी कलियाँ।
अति सुख पाइ असीस देत कोई करि अँगुरिन चट अलियाँ॥
भये धरममें थित सब द्विज जन प्रजा काज निज लागे।
रिपु-जुवती-मुख-कुमुद मन्द, जन चक्रवाक अनुरागे॥
अरघ सरिस उपहार लिये नृप ठाढे तिनकहँ तोखौ।
न्याय कृपा सों ऊँच नीच सम समुझि परसि कर पोखौ॥

—हरिश्चन्द्र।

३

३—भारत वन्दना

जय जय भारत भूमि भवानी।
जाकी सुयश-पताका जगमें दसहूँ दिसि फहरानी॥
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु सकल समान सोहानी।
जा श्री शोभा लखि अलका अरु अमरावती खिसानी॥

धर्म सूर जित उयो नीति जहँ गई प्रथम पहिचानी।
सकल कला गुन सहित सभ्यता जहँ सों सबहिं सुभानी॥
भये असंख्य जहां जोगी तापस ऋषिवर मुनि ज्ञानी।
बिबुध विप्र विज्ञान सकल विद्या जिनतें जग जानी॥
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ न्याय निरत गुन खानी।
जिन प्रताप सुर असुरनहूकी हिम्मत बिनासि बिलानी॥
कालहु सम अरि तृन सम्झत जहँके छत्री अभिमानी।
बीर बधू बुध जननि रहीं लाखन जित सती सयानी॥
कोटि कोटि जित कोटिपती रज बनिक बनिक धनदानी।
सेवत शिल्प यथोचित सेवा सूद समृद्धि बढानी॥
जाको अन्न खाय ऐंडति जग जाति अनेक अघानी।
जाकी सम्पति लुटत हजारन बरसनहूँ न खोटानी॥
सहस सहस बरिसन दुख नित नव जो न ग्लानि उर आनी।
धन्य धन्य पूरब सम जग-नृपगन-मन अजहु लोभानी॥
प्रनवत तीस कोटि जन अजहू जाहि जोरि जुग पानी।
जिनमें झलक एकताकी लखि जगमति सहमि सकानी॥
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेमघन बनहु सोइ छबि छानी।
सोइ प्रताप गुणजन गर्वित ह्वै भरी पुरी धन धानी॥

—बद्रीनारायण चौधरी

४

१—हिन्दीकी हिमायत

चहहु जु साँचो निज कल्यान। तो सब मिलि भारत सतान।
जपो निरतर एक जबान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।
तबहिं सुधरिहै जन्म निदान। तबहिं भला करिहैं भगवान।
जब रहिहै निसिदिन यह ध्यान। हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥१॥

२–तृप्यन्ताम्

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब कहा बखानत ऋक यजु साम।
हम सपनेहूमें नहिं जानै रहै पेटके बने गुलाम।
तुमहिं लजावत जगत जनम लै दुहू लोकमें निपट निकाम।
कहै कौन मुख लाइ हाइ फिर अहा बाबा तृप्यन्ताम्॥ १॥
देख तुम्हारे फरजन्दोंका तौरो तरीक तुआमो कलाम।
खिदमत कैसे करू तुम्हारी अकल नहीं कुछ करती काम।
आबे गग नजर गुजरानू या कि मये गुलगूका जाम।
मुशी चितर गुपत साहब तसलीम कहू या तिरापिंताम॥ २॥

३–बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा तोरे मारे, अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कुछ बनैत नाहीं, कहा जान औ कैस करन।
छिन भरि चटक छिनै मा मद्धिम, जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखरख देख परत है, हमरी अक्किलके लच्छन॥ १॥
अस कुछ उतरि जाति है जीते बाजी बेरिया बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवत, मूड़इ काहे न दै मारन।
कहा चहौं कुछ निकरत कुछु है, जीभ राड़का है यह हालु।
कोऊ इहिका बात न समझै चाहे बीसन दॉय कहन॥ २॥
दाढ़ी नाक याक मा मिलगै, बिन दातन मुहुँ अस पोपलान।
दढ़िही पर वहि बहि आवति है कबौं तमाखू जो फाकन।
बार पाकि गे रीरौ झुकि गै, मूँटौ सासुर हालन लाग।
हाथ पाव कछु रहे न आपन, केहिके आगे दुख रवावन॥ ३॥
यही लगुटियाके बूते अब जस तस डोलित डालित है।
जेहिका लैकै सब कामन मा, सदा खखारत फिरत रहन।
जियत रहैं महराज सदा जो हम ऐस्यन का पालति हैं।
नाहीं तो अब कोथौं पूछै, केहिके कौने कामके हन॥ ४॥

४–गैया माता

गैया माता तुमका सुमिरौं, कीरति सब तें बड़ी तुम्हारि।
करौ पालना तुम लरिकन कै, पुरिखन बैतरनी देउ तारि।
तुम्हरे दूध दहीकी महिमा, जानें देव पितर सब कोय।
को अस तुम बिन दूसर जिहिका, गोबर लगे पवित्तर होय ॥ १ ॥
जिनके लरिका खेती करिके, पालैं मनइनकै परिवार।
ऐसी गाइनकी रछ्या मा, जो कुछ जतन करौ सो थ्वार।
घासके बदले दूध पियावै, मरिकै देयँ हाड़ औ चाम।
धनि वह तन मन धन जो आवै, ऐसी जगदम्माके काम ॥ २ ॥
को अस हिन्दू ते पैदा है, जो तव हालु देखि एक साथ।
रकतके आसन रोय न उठिहै, माथे पटकि दुहत्था हाथ ॥ ३ ॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे, गाइनकी नहिं सुनै गुहार।
जब सुधि आवै मोहि गैयन की, नैनन बहै रकतकी धार।
हियाकी बातें तो हियने राहिं, अब कम्पूकै सुनो हवाल।
न्हाके हिन्दू तन मन धनसे, निस दिन करैं धरम प्रतिपाल ॥४॥

५—ईश्वर स्तुति

शरणागतपाल कृपाल प्रभो ! हम को इक आस तुम्हारी है।
तुम्हरे सम दूसर और कोऊ नहिं दीननको हितकारी है ॥
सुधि लेत सदा सब जीवन की अति ही करुना बिस्तारी है।
प्रतिपाल करैं बिन ही बदले अस कौन पिता महतारी है ॥
जब नाथ दया करि देखत हौ छुटि जाति बिथा संसारी है।
बिसराय तुम्हें सुख चाहत जो अस कौन निदान अनारी है ॥
परवाहि तिन्हें नहिं स्वर्गहु की जिनको तव कीरति प्यारी है।
धनि है धनि है सुखदायक जो तव प्रेम सुधा अधिकारी है ॥
सब भाँति समर्थ सहायक हौ तव आश्रित बुद्धि हमारी है।
परताप नारायण तौ तुम्हरे पद पंकज पै बलिहारी है ॥ १

पितु मातु सहायक स्वामि सखा तुमहीं इक नाथ हमारे हौ।
जिनके कछु और अधार नहीं तिनके तुमहीं रखवारे हौ॥
सब भाति सदा सुखदायक हौ दुख दुर्गुन नासनहारे हौ।
प्रतिपाल करौ सगरे जग को अतिसै करुना उर धारे हौ॥
भूलैं हमही तुमको तुमतौ हमरी सुधि नाहिं बिसारे हौ।
उपकारन को कछु अत नहीं छिन ही छिन जो विस्तारे हौ॥
महराज महा महिमा तुम्हरी समुझै बिरले बुधिवारे हौ।
शुभ शान्तिनिकेतन प्रेमनिधे ! मन मन्दिर के उजियारे हौ॥
यहि जीवन के तुम जीवन हौ इन प्रानन के तुम प्यारे हो।
तुम सो प्रभु पाय प्रताप हरी किहि के अब और सहारे हो॥२॥

—प्रतापनारायण मिश्र

५

१—रघुवंश

भये प्रभात धेनु ढिग जाई। पूजि रानि माला पहिराई॥
बच्छ पियाइ बाँधि तब राजा। खोल्यो ताहि चरावन काजा॥
परत धरनि गो चरन सुहावन। सो मग धूरि होत अति पावन॥
चली भूप तिय सोइ मग माहीं। स्मृति श्रुति अर्थ सग जिमि जाहीं
चौ सिन्धुन थन रुचिर बनाई। धरनिहिं मनहु बनी तहँ गाई॥
प्रिया फेरि अवधेश कृपाला। रच्छा कीन्ह तासु तेहि काला॥
व्रत महँ चले गाय करि आगे। सेवक शेष सकल नृप त्यागे॥
इक केवल निज वीर्य्य अपारा। मनु सन्तति तन रच्छनहारा॥
कबहुँक मृदु तृन नोचि खिलावत। हाकि माछि कहुँ तनहि खुजावत
जो दिसि चलत चलत सोइ राहा। यहि विधि तेहि सेवत नर नाहा॥
जहँ बैठी सोइ धेनु अनूपा। बैठे तहहिं अवधपुर भूपा॥
खड़े ताहि ठाढ़ी नृप जानी। चले चलत धेनुहि-अनुमानी॥

पियत नीर कीन्हों जल पाना । रहे तासु सँग छाँह समाना ॥
राज चिह्न यद्यपि सब त्यागे । तऊ तेज बस नृप सोइ लागे ॥
छिपे दान रेखा के संगा । हात मनहु मद मत्त मतंगा ॥
केश लता सन बाँधि बनाये । बन बिचरयो धनु बान चढ़ाए ॥
ऋषय धेनु रक्षक जनु होई । आयो पशुन सुधारन सोई ॥
वरुन सरिस धरि तेज प्रभाऊ । चले जदपि सेवक बिनु राऊ ॥
तरु पछिन करि शब्द सुहावा । जनु चहुँ दिसि जयघोष सुनावा ॥
जानि निकट कोशलपति आये । फूल वायु बस लता गिराये ॥
जिमि नरेश निज पुर जब आवहिं । धान नगर कन्या बरसावहिं ॥
चले जदपि नृप कर धनु धारी । तउ दयाल तेहि हरिनि निचारी ॥
निरखत तासु शरीर मनोहर । लोचन फल पायो तेहि अवसर ॥
भरि भरि पवन रन्ध्र युत बासा । वेणु शब्द तब करत प्रकासा ॥
बन देविन कुंजन महँ जाई । नृप कीरति तहँ गाइ सुनाई ॥
जानि घाम बस म्लान सरीरा । लै सुगन्ध सोइ मिलत समीरा ॥
बन रक्षक तेहि आवत जानी । बिना दृष्टि बन अग्नि बुझानी ॥
बाँधे सबल निबल पशु नाहीं । भे फल फूल अधिक बन माहीं ॥
करि पवित्र दिसि चहुँ दिसि जाई । धेनु साँझ आश्रम कहँ आई ॥
यज्ञ श्राद्ध साधन सोइ साथा । इमि सोहत तहँ कोशल नाथा ॥
श्रद्धा मनहुँ दृश्य तनु धारी । सोहत सन्त प्रयत्न मझारी ॥
जल सन उठत बराह समूहा । चलत रूख दिश नभचर जूहा ॥
हरी घाम जहँ बैठ कुरंगा । चल्यो लखन सोइ सौरभिमंगा ॥
एक भरे थन भार दुखारी । धरे शरीर एक अति भारी ॥
मन्द चाल सन दोउ तहँ आई । तपवन सोभा अधिक बढ़ाई ॥
चलत वशिष्ठ धेनु के पाछे । लौटत अवध भूप छवि आछे ॥
प्यासे दृगन विलास बिसारी । लख्यो ताहि मगधेस कुमारी ॥
आगे रही रानि मग माहीं । पीछे भूप मनहुँ परछाहीं ॥

सोहत बीच धेनु यहि भाती। सध्या सग मनहुँ दिन राती॥
अछत पात्र कर धरे सयानी। फिरि गाय चहुँ दिसि तब रानी॥
चरन वन्दि गो माथ विसाला। पूज्यो अवध रानि तेहि काला॥
मिलन हेत बच्छहिं अकुलानी। यद्यपि रही धेनु गुन खानी॥
पूजन काज रही सोइ ठाढ़ी। सो लखि प्रीति भूप मन वाढ़ी॥
समरथ चहत देन फल जेही। प्रथम प्रसाद जनावत तेही॥
पुनि सन्ध्या बिधि नृप निपटाई। सादर गुरु पद कमल दबाई॥
जिन नृप भुज वल शत्रु गिराये। दुहन अन्त गो सेवन आये॥
पुनि पत्नी सँग भूप दिलीपा। धारि धेनु आगे बलि दीपा॥
सोये तहँ तेहि सोवत जानी। जागे जगी धेनु अनुमानी॥
सन्तति हित सेवत यहि भाती। बीते त्रिगुण सप्त दिन राती॥

—सीताराम

६

१—आगामी अवतारका आवाहन

हे वैदिक दलके नर नामी, हिन्दू मण्डलके करतार।
स्वामि सनातन सत्य धर्मके, भक्ति भावनाके भरतार॥
सुत वसुदेव देवकीजीके, नन्द यशोदाके प्रिय लाल।
चाहक चतुर रुक्मिणीजीके, रसिक राधिकाके गोपाल॥
मुक्त अकाय बने तन धारी, श्रीपतिके पूरे अवतार।
सर्व सुधार किया भारतका, कर सब शूरों का सहार॥
ऊचे अगुआ यादवकुलके, बीर अहीरोंके सिरमौर।
दुविधा दूर करो द्वापरकी, डालो रङ्ग ढङ्ग अब और॥
भड़क भुला दो भूत कालकी, सजिये वर्तमानके साज।
फैसन फेर इण्डिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज॥

गौर वर्ण वृषभानु सुताका, काढ़ो काले तनपर तोप ।
नाथ उतारो मोर मुकुट को, सिरपै सजो साहिबी टोप ॥
पोंडर चन्दन पोंछ लपेटो, आननकी श्री ज्योति जगाय ।
अञ्जन अँखियेंमें मत आजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥
खञ्जर कानोंमें लटका लो, कुण्डल काढ़ मेकराफ़्रन ।
तज पीताम्बर कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून ॥
पटक पादुका पहिनो प्यारे, बूट इटालीका लुकदार ।
डालो डबल वाच पाकट में, चमके चेन कञ्चनी चार ॥
रख दो गाठ गठीली लकुटी, छाता बेंत बगल में मार ।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाजा बिगुल सुने संसार ॥
फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहिनालो पँचरङ्गी गौन ।
अबलक लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनैगी कौन ॥
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटलमें दिन रात ।
पर नजखोंआ ताड न जावैं, बढ़िया खानपानकी बात ॥
वैनतेय तज व्योमयान पै, करिये चारों ओर विहार ।
फक फक फू फू फूको चुरटें, उगलें गाल धुआंकी धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय ।
गाटो पदक नयी प्रभुताके, भारत जातिभक्त हो जाय ॥
कह दो सुबुध निश्वकर्मामें, रच दे ऐसा हाल विशाल ।
जिस पे गरमी नरमी वारे, कागरेस कुलकी पण्डाल ॥
सुर नर मुनि डेलीगेटोंको, देकर नोटिस टेलीग्राम ।
नाथ बुला लो उस मण्डपमें, बैठें जैंटिलमैन तमाम ॥
उमगें सभ्य सभासद सारे, सर्वोपरि यश पावें आप ॥
दर्शक रासिक तालिया पीटें, नाचें मगल मेल मिलाप ।
जो जन त्रिविध बोलिया बोलें, टर्रातां गिटपिट को छोड़ ।
रोको उस गोबर गणेश को, करे न सुरभाषा की होड़

वेद पुराणों पर करते है, आरज हिन्दू वादविवाद।
कान लगाकर सुनलो स्वामी, सबके कूट कटीले नाद॥
दोनोंके अभिलषित मतों पे, बीच सभामे करो विचार।
सत्य झूठ किसका कितना है, ठीक बता दो न्याय पसार॥
जगदीश्वरने वेद दिये हैं, यदि विद्या बलके भण्डार।
उनके ज्ञाता हाथ न करते, तो भी अभिनव आविष्कार॥
समझा दो वैदिक सुजनो को, उत्तम कर्म करें निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावे, जीवित रहै कल्प लों नाम॥
निपट पुराणोंके अनुगामी, ऊले निरखो इकानि ओर।
निडर आपको भी कहते है, नर्त्तक जार भगोडा चोर॥
प्रतिदिन पाठ करें गीताके, गिनते रहैं रावेरे नाम।
पर हो मनमौजी मतवाले, बनते नहीं वर्मके धाम॥
कलुष कलक कमाते है जो, उनको देते है फल चार।
कहिये इन तीरथ देवोके, क्यों न छीनते हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकेंगे, टाकू उदरासुरके दास।
अधम अनारी बीच करेंगे, मनमाने सानन्द विलास॥
वैदिक पौराणिक पुरुषोंमें, टिके टिकाऊ मेल मिलाप।
गेल गहै अगले अगुओंकी, इतनी कृपा कीजिये आप॥
जिस विधिसे उन्नत हो बैठे, यूरुप अमरीका जापान।
विद्या बल प्रभुता उनकी सी, दो भारतको भी भगवान॥
देव आदिके अधिवेशनमें, पूरे करना इतने काम।
हिप हिप हुर्रोके सुनते ही, खाना टिफन पाय आराम॥
झफट झगडे मतवालों के, जानो सबके खण्ड विभाग।
तीन चार दिनकी बैठक में, कर दो सशोधन बेलाग॥
बनिये गौर श्यामसुन्दरजी, ताक रहे हैं दर्शक दीन।
नहीं हँसाना बनके बाव वितुण्डी कछुआ मीन॥

वार सामयिक नेतापनको, दूर करो भूतलका भार।
निष्कलङ्क अवतार कहैंगे, शकर सेवक बारम्बार ॥ १८ ॥

—नाथूराम शकर शर्म्मा

७

१—वक्र-मयक

ए हो सुघर सुधाशु वकिमा सशोभित शशि।
तू मोहि करत सशक आजु अति रैनि-अक बसि ॥
होइ न निहचय मोहिं नील नभमें को है तू।
जोह्यौ जो शशि काल्हि आजुको नहिं सो है तू ॥
व्योम-पक-प्रस्फुटित सेत सरसिज दल है तू।
पारिजात सों पतित मुकुल कोइ कोमल है तू ॥
कै कोई आनन्द-कन्द नन्दन-फल है तू।
शची-कर्न-आभर्न-रत्न कोइ चचल है तू ॥
दिसि-भामिनि-भ्रूभग, काल-कामिनि-निहग असि।
कै जामिनि रही अधर बिम्ब सो मन्द हास हँसि ॥
सुर-सुन्दरि कल कठ-हँसुलि, निलुलित थल सों खसि।
कै अनग भख लसत चपल निसिके उछग बसि ॥
कुपित काम-नृप धनुप, बक्र परजन्य-शस्त्र कोइ।
किधौं भिन्न हरि चक्र, स्वर्गको अन्य अस्त्र कोइ ॥
मन्दाकिनि तट परयौ तृषित जल-हीन मीन कोइ ॥
तड़पि रह्यो तन छीन, व्योम-चर कै नवीन कोइ ॥
वृत्र निदारक इन्द्र-कुलिसकी कुटिल तू।
निसि विरहिनि तन लगी मदनकी ॥
प्रथम कालकौ बन्यौ प्रकृतिकौ
नजर बिडारन रच्यौ बजरबट्टू

दृष्टि तुला के पला किधौं स्रष्टा-बैठारौ ।
सृष्टि-गोद कौ लला मोद-प्रद मात-दुलारौ ।।
निशा-योगिनी-भाल-भस्म कौ बाकौ टीका ।
कै माया-महिषी-किरीट-छाया सु श्री का ।।
कै विरञ्चि-मस्तक-त्रिपुड-आभास मनोहर ।
कै भारत-तप-तेज पिंडकौ खड मजु तर ।।
कै अद्भुत ब्रह्माड-छोर कौ छिलुका छूटयौ ।
किधौं प्रेम-आनन्द-अमृतकौ मटुका टूटयौ ।।
किधौं नन्दिनी शृङ्ग व्यौम पटमें प्रतिबिम्बित ।
किधौं कुशक त्रिशकु अधरमें है अवलम्बित ।।
सप्त ऋषिन कौ व्यवहृत वक्रीकृत तर्पण-कुश ।
किधौं अभ्र पथ पतित शुभ्र मघवा-इभ-अकुश ।।
शिव गिरि सों नित शिला खड मुरि गयौ उछरि कोइ ।
गैल भूल निज सगिन सों सुर गयौ बिछुरि कोइ ।।
कै सुमेरु शुचि वर्न स्वर्न सागरकौ कौंड़ा ।
कै सुर-कानन-कदलि मूलकौ कोमल बौंड़ा ।।
किधौं स्वर्ग फुलवारीके माली कौ हसिया ।
कै अम्मृत एकत्र करनकी सेत अकुसिया ।।
रवि-हय खुरकी छाप किधौं कै नाल नुकीली ।
काल चक्रकी हाल परी खडित कै कीली ।।
नभ-आसन आसीन कोइ कै तपोलीन ऋषि ।
कै कछु जोति मलीन कृशित सोइ कला छीन शशि ।।

—श्रीधर पाठक



१–ग्रन्थकार-लक्षण

एक प्रवासी ज्ञान निधान
तीर्थराज–वासी गुणवान
बुद्धिराशि विद्याका वारिधि, पास हमारे आया है।
नाना कथा नवीन नवीन
कहनेमे वह महा प्रवीण
ग्रन्थकार माहात्म्य मनोहर उसने हमें सुनाया है॥
सुनकर वह माहात्म्य अपार
सोच समझकर भले प्रकार
परमानन्द रूप नदमे मन बहता है लहराता है।
उसका ही लेकर आधार
निज वचनोका कर विस्तार
लक्षण मात्र ग्रन्थकारोंका यहा सुनाया जाता है॥
शब्द शास्त्र है किसका नाम
इस झगड़ेसे जिन्हें न काम
नहीं विराम चिह्नतक रखना जिन लोगोंको आता है।
इधर उधरसे जोड बटोर
लिखते हैं जो तोड मरोड़
इस प्रदेशमें वे ही पूरे ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
भला बुरा छपनाये सिद्ध
धन न सही, नाम ही प्रसिद्ध
नाटक उपन्यास लिखनेमें जरा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूदका सार
बगला भाषाका भडार
ये ही महामहिम विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं॥

जिनके लोचन कोटर-लीन
कच कलापतक तैल-विहीन
जिनके जर्जर तनको मैले कपडे सदा छिपाते है।
कुटिल कटाक्ष किन्तु दुर्दान्त
मति भी गति भी कुटिल नितान्त
वेही भारतवर्ष देशमें ग्रन्थकार पद पाते है॥
अन्य देश भाषाका ज्ञान
कालकूटकी घूँट समान
स्वय मातृभाषा भी जिनको देख देख घबडाती है।
भाडेपर रख विज्ञ विशेष
लिखवाते है जो निज लेख
ग्रन्थकार पदवी उनको ही दौड दौड लिपटाती है॥
जिनकी जिह्वाकी खर धार
देख चमत्कृत छुरे हजार
किन्तु लेखनी जिनके करमे धारहीन हो जाती है।
लेखनकला कुशलता हीन
बातोमें जो बडे प्रवीण
ग्रन्थकार पदवी उनको ही विना मोल मिल जाती है॥
लक्ष्मी जिन लोगोंके द्वार
आती नहीं एक भी बार
सरस्वती जिनके प्रतापसे भूतलसे भग जाती है।
मानी मत्त गयन्द समान
अथवा मूर्त्तिमान अभिमान
उनको ही सद्ग्रन्थकारकी पदवी गले लगाती है॥
पाकालयका अन्तर्भाग
नहीं देखता जलती आग

किन्तु सदा ईर्षानलसे तन जिनका जलता रहता है।
निज गुरुको भी गाली दान
देनेमें जिनको लज्जा न
उनको ही ऊचे दरजेके ग्रन्थकार जग कहता है॥
ए बी सी डीका भी ज्ञान
जिनको अच्छी भाति हुआ न
अँगरेजी उद्धृत करनेमें किन्तु न जो शरमाते हैं।
ऐसे निया बुद्धि-निधान
जिनका बडा मान सम्मान
निश्चय वे ही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते है॥
सस्कृत भाषा कौन पदार्थ
जिन्हें न यह भी विदित यथार्थ
धर्मशास्त्रका मर्म किन्तु जो लिख लिखकर समझाते है
जन समाज—सशोधनकार
व्यर्थ वाद जिनका व्यापार
सत्य सत्य वे ही अति उत्तम ग्रन्थकार कहलाते हैं॥
अपने ग्रन्थोंका प्रतिवर्ष
विज्ञापन लिख स्वय सहर्ष
व्यास और वाल्मीकि तुल्य जो अपनेको बतलाते हैं।
अथवा पुत्र मित्रका नाम
देकर जो निकालते काम
अति गम्भीर ग्रन्थकारोंके गुरुवर वे कहलाते है॥
अपनी पुस्तककी सानन्द
स्वय समीक्षा लिख स्वच्छन्द
अन्य नामसे अखबारोंमें जो शतबार छपाते

निज मुखसे जो गुण विस्तार
करते सदा पुकार पुकार
ग्रन्थकार-पद योग्य सर्वथा वेही समझे जाते है ॥
गृहमें गृहिणी कोप-निधान
देती जिन्हें न आदर दान
बाहर जिन्हें न पाठकगण भी भक्ति भाव दिखलाते है।
जिनका कहीं नहीं सम्मान
तिसपर घोर घमण्ड घटा न
ग्रन्थकार सिंहासन ऊपर आसन वही लगाते है ॥
ग्रह ज्यों रविके चारों ओर
किया करै है दौरा दौर
त्यों पुस्तक विक्रेताकी जो बहु प्रदक्षिणा करते है।
दग्धोदर जो किसी प्रकार
भरते हैं सदैव झख मार
ग्रन्थकार गौरवकी झोली वेही यशसे भरते है ॥
किसी समालोचकके द्वार
सिर घिस घिस कर बारम्बार
निज पुस्तककी समालोचना जो सविनय लिखवाते है।
यदि आशय पाया प्रतिकूल
ढूंढा और कहीं अनुकूल
ग्रन्थकार कुल कुमुद चन्द्रमा वेही माने जाते है ॥
टेकस्ट बुक्सकी सभा प्रधान
उसके जितने सभ्य सुजान
उनके प्रिय पुत्रादिकको जो मोदक मञ्जु खिलाते है।
आते हैं जो प्रात काल
और झुकाते है निज भाल

ग्रन्थकार कनकासन ऊपर वेही मजे उडाते हैं ॥
नूतन चित्र चरित्र प्रचार
करके उनकी रुचि अनुसार
निज पुस्तकमें जो धनिकोंकी व्यर्थ बडाई गाते हैं ।
उनसे रख भिक्षाकी आस
करते है जो वचन-विलास
ग्रन्थकार गुरुवोंके भी वे कर्णधार कहलाते है ॥
ग्रन्थकार गुणगण निःशेष
गान नहीं कर सकता शेष
इसीलिये हम इस वर्णनको आगे नहीं बढ़ाते है ।
हे हे ग्रन्थकार गुणधाम
हे समर्थ ! हे पावन नाम
शत योजनसे हम यह अपना मस्तक तुम्है झुकाते है ॥

—महावीरप्रसाद द्विवेदी

९

प्रताप-विसर्जन

उन्नत सिर गिरिअवलि गगन सों उत बतरावत ।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ॥
मन्द पवन सीरी बहै होन लगे पतझार ।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानौ कोउ अवतार
हरन भुवभार को ॥
मुखमडल अति शान्त कान्तिमय चितवन सोहै ।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहु दिसि जोहै ॥

बीर मण्डली घेरिके प्रभुकी गति रहे जोहि।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पाण्डव रहे सोहि
हृदय उमङ्यो परे ॥

लखि निज प्रभुकी अंत समयकी वेदन भारी।
व्याकुल सब मुख तकैं सकै धीरज नहिं धारी ॥
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान।
हाथ जोरि विनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान
बैन आरत सने ॥

अहो नाथ अहो बीर-सिरोमनि भारत-स्वामी।
हिन्दू-कीरति थापनमे समर्थ सुभ नामी ॥
कहा वृत्ति है आपकी, कौन सोच, कहँ ध्यान ?
देखि कष्ट हिय फटत है, केहि सकटमें हैं प्रान
कृपा करिकै कहो ॥

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिशि फेरयो।
भरि कै दीरघ सास सबन तन व्याकुल हेरयो ॥
पुनि लखि सुत तन फेरि मुख अति सतप्त अधीर।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गभीर
परम आतङ्क सों ॥

हे हे बीर सिरोमनि सब सरदार हमारे।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे ॥
तुव भुज-बल लहि मैं भयो रच्छा करना समर्थ।
मातृभूमि-स्वाधीनताको प्रबल सत्रु करि व्यर्थ
अनेकन कष्ट सहि ॥

या प्रतापनै उचित कहौ कै अनुचित माखौ।
या स्वतन्त्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाखौ ॥

ढाइ महल खँडहर किये सुख सामान बिहाय ।
छाइ वननकी धूरिको गिरि गिरि मैं टकराय
क्लेश को लेश नहिं ॥
पै जब आनत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने ।
सो अमूल्य विधि मम पाछे रहिहै दिन कितने ॥
तुच्छ वासनामें पग्यो दुःख सहन असमर्थ ।
चञ्चल अमरहिं देखि कैं होत श्वास सब व्यर्थ
सोचि भावी दसा ॥

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सों देख्यो ।
मूँदि नैन जल भरे स्वास लै सब दिशि पेल्यो ॥
सन्नाटा चहुँ दिशि छयो सबके मुख गभीर ।
पृथ्वी दिशि हेरें सबै भरे महा हिय पीर
बैन नहिं कछु कहे ॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो ॥
पृथ्वीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज ।
कुँवर बहादुर तें परी कौन चूक केहि काज
निरासा जो भई ॥

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि ।
अति गभीर सतेज मनहुँ गुजत केहरि धुनि ॥
"सुनौ वीर मेवारके गौरव राखनहार ।
मेरे हियकी वेदना जो कियो श्वास सब छार
अमरके कर्मने ॥
एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो ।
इतनेहिमें मृग एक आनि कै यहां जु पैठ्यो ॥

हरवराइ सन्धानि सर अमर चल्यो ता ओर।
कुटियाके या बाँस मैं फँस्यो पागको छोर
अमर तौहुँ न रुक्यो ॥

बढन चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जियमें वीर छुडावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहू लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोपडिहिं अतिहिं क्रोधके साथ
बैन मुख ते कढे ॥

रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे साम विना तोहिं आज उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिह्न मिटाइ!
जो दुख पाये तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ
सुखद आवास रचि ॥

तवहीं ते ये बैन शूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय।
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषयके दाम।
बेचि सिसोदिय कीर्त्तिको यह करिहै अवसि निकाम
रुके हम सोचि एहि ॥"

हिन्दूपतिके बैन सुनत छत्री काँपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौरयो तब॥
लै लै असि दृढ पन कियो छ्वै छ्वै प्रभुके पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय
सङ्क करिय न कछु ॥"

दृढ प्रतिज्ञ छत्रिनपन सुनि राना मुख विकस्यो।
आश-लता लहलही भई मुखते यह निकस्यो॥

"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुमहिं सुहाइ।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय
यही आसीस मम ॥"
देखत देखत शान्ति-सदन परताप सिधाये।
पराधीनता सघ बहुरि भारत सिर छाये॥
सबही सुख परताप सँग कियो विसर्जन हाय।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गँवाय
याहि प्रभु रच्छिए॥
—राधाकृष्ण दास

१०

१—श्री रामस्तोत्र

अब आये तुम्हरी सरन "हारे के हरि नाम।"
सास्त्र सुनो रघुवंशमणि "निर्बलके बल राम॥"
जपबल तपबल बाहुबल, चौथो बल है दाम।
हमरे बल एको नहीं, पाहि पाहि श्रीराम॥
सेल गई बरछी गई, गये तीर तलवार।
बड़ी छुड़ी चसमा भये, छत्रिनके हथियार॥
जो लिखते अरि हाथ पै, सदा मलक अङ्क,
झपत नैन तिन सुतनके, कटत कलमको डङ्क॥
कहाँ राज कहँ पाट प्रभु, कहाँ मान सम्मान।
पेट हेत पायन परत, हरि तुम्हरी सन्तान॥
जिनके करमों मरन लौं, छुटयो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित, भये दास दर्बान॥
जहाँ सेर सुत बाप सँग, घोर भात मों भात।
तिनके मस्तक सों टूटे, कैसे पर की लात॥

वार वार मारी परत, बारहिं वार अकाल।
काल फिरत नित सीस पै, खोले गाल कराल॥
अब तुम सों बिनती यहै, राम गरीब नेवाज।
इन दुखियन अँखियान महँ, बसै आपको राज॥
जहँ मारीको डर नहीं, अरु अकालको त्रास।
जहाँ करै सुख सम्पदा, बारह मास निवास॥
जहाँ प्रबलको बल नहीं, अरु निवलनकी हाय।
एक बार सो दृश्य पुनि, अँखिन देहु दिखाय॥
अबलो हम जीवित रहे, लै लै तुम्हरो नाम।
सोहू अब भूलन लगे, अहो राम गुनधाम॥
कर्म्म धर्म्म सयम नियम, जप तप जोग विराग।
इन सबको बहु दिन भये, खेलि चुके हम फाग॥
धनबल, जनबल, बाहुबल, बुद्धि विवेक बिचार।
मान तान मरजादकों, बैठे जूओ हार॥
हमरे जाति न बर्न है, नहीं अर्थ नहिं काम।
कहा दुरावैं आपसे, हमरी जाति गुलाम॥
बहु दिन बीते राम प्रभु, खोये अपनो देस।
खोवत हैं अब बैठके, भाषा भोजन भेस॥
नहीं गाँवमें झूपड़ो, नहिं जङ्गलमें खेत।
घर ही बैठे हम कियो, अपनो कञ्चन रेत॥
दो दो मूठी अन्न हित, ताकत पर मुख ओर।
घर हीमें हम पारधी, घर ही में हम चोर॥
तौ हू आपसमे लड़ैं, निसदिन स्वान समान।
अहो! कौन गति होयगी, आगे राम सुजान?
घरमें कलह विरोधकी, बैठ आग लगाय।
निस दिन तामैं जरत हैं, जरतहि जीवन जाय॥

विप्रन छोड़यो होम तप, अरु छत्रिन तरवार।
बनिकनके पुत्रन तज्यौ, अपनो सद्व्यवहार॥
अपनो कछु उद्यम नहीं, तकत पराई आस।
अब या भारत भूमिमें, सबै बरन है दास॥
सबै कहैं तुम हीन हौ, हमहु कहै हम हीन।
धक्का देत दिनानको, मन मलीन तन छीन॥
कौन काज जन्मत मरत, पूछत जोरे हाथ?
कौन पाप यह गति भई, हमरी रघुकुलनाथ?

२—वसन्तोत्सव

आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमे प्यारी।
तेरा शुभागमन सुन फूली केसर क्यारी॥
सरसो तुझको देख रही है आँख उठाये।
गेंदे ले ले फूल खडे हैं सजे सजाये॥
आस कर रहे हैं टेसू तेरे दर्शनकी।
फूल फूल दिखलाते हैं गति अपने मनकी॥
बौराई सी ताक रही हैं आम की मौरी।
देख रही है तेरी बाट बहोरि बहोरी॥
पेड बुलाते हैं तुझको टहनियाँ हिलाके।
बडे प्रेमसे टेर रहे हैं हाथ उठाके॥
मारग तकते बेरीके हुए सब फल पीले।
सहते सहते शीत हुए सब पत्ते ढीले॥
नींबू नारङ्गी हैं अपनी महक उठाये।
सब अनार हैं कलियोंकी दुरबीन लगाये॥
पत्तोंने गिर गिर तेरा पावड़ा बिछाया।
झाड पोंछ वायूने उसको स्वच्छ बनाया॥

फुलसुँघनीकी टोली उड़ उड़ डाली डाली ।
झूम रही हैं मदमें तेरे हो मतवाली ॥
इस प्रकार है तेरे आनेकी तैयारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
एक समय वह भी था प्यारी जब तू आती ।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती ॥
होते घर घर बन बन मङ्गलचार बधाई ।
राव चावसे होती थी तेरी पहुनाई ।
ठौर ठौर पर गाये जाते गीत सुहाने ।
दूर दूर जाते तेरा तिहवार मनाने ॥
कुछ दिन पहिले सारे बन उद्यान सुधरते ।
सुन्दर सुन्दर कुञ्ज मनोहर ठाँव सँवरते ॥
लड़की लड़के दौड़ दौड़ उपवनमें जाते ।
अच्छे अच्छे फूल तोड़ते हार बनाते ॥
क्यारी क्यारीमें फिर जाते मालिन माली ।
चुग चुग सुन्दर फूल बनाते कितनी डाली ॥
ठाँव ठाँव पर बिछतीं सुन्दर फटिक शिलायें ।
आनेवाले बैठें छबि निरखें सुख पायें ॥
सखी देखने आतीं उनकी वह सुघराई ।
एक दूसरीको देतीं सानन्द बधाई ॥
सारी शोभा देख देखकर घरको फिरतीं ।
कहके अपनी बात मुदित सखियोंको करतीं ॥
कहती थीं प्रमुदित हो होके सब सुकुमारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
सब किसान मिलके अपने खेतोंमें जाकर ।
फूल तोड़ते सरसोंके आनन्द मनाकर ॥

बनमें होते लड़कोंके पाले औ दङ्गल ।
चढ़ते ढाकोंपर और फिरते जङ्गल जङ्गल ॥
कूद फादकर भांति भांतिकी लीला करते ।
महा मुदित हो जहां तहां स्वच्छन्द विचरते ॥
कोसोंतक पृथ्वीपर रहती सरसों छाई ।
देती दृगकी पहुच तलक पीतिमा दिखाई ॥
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्त लुभाने ।
बीच बीचमें खेत गेहूँ जौके मनमाने ॥
वह बबूलकी छाया चितको हरनेवाली ।
वह पीले पीले फूलोंकी छटा निराली ॥
आसपास पालोंके वटवृक्षोंका झूमर ।
जिसके नीचे वह गायों भैंसोंका पोखर ॥
ग्वालबाल सब जिनके नीचे खेल मचाते ।
बूट चनेके लाते होले करते खाते ॥
पशुगण जिनके तले बैठके आनँद करते ।
पानी पीते पगुराते स्वच्छन्द विचरते ॥
पास चनेके खेतोंमें बालक कुछ जाते ।
दौड़ दौड़के सुरुचि साग खाते घर लाते ॥
आपसमें सब करते जाते खिल्ली ठट्ठा ।
वहीं खोल कर खाते मक्खन रोटी मट्ठा ॥
बातें करते कभी बैठके बांधे पाली ।
साथ साथ खेतोंकी करते थे रखवाली ॥
कहते हर्षित सभी देख फूली-फुलवारी ।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी ॥
हाय समयने एक साथ-सब बात मिटाई ।
एक चिह्न भी [illegible] देता-दिखलाई ॥

कटे पिटे मिट गये वह सब ढाकोंके जङ्गल।
जिनमें करते थे पशुपच्छी नित प्रति मङ्गल॥
धरतीके जीमें छाई ऐसी निठुराई।
उपजीविका किसानोंकी सब भांति घटाई॥
रहा नहीं तृण न्यार कहीं कृषकोंके घरमें।
पड़े ढोर उनके गोभक्षक कुलके कर में॥
जिन सरसोंके पत्तोंको डङ्गर थे खाते।
उनसे वह अपना जीवन है आज बिताते॥
कहा गये वह गाँव मनोहर परम सुहाने।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने॥

कपट क्रूरता पाप और मदसे निर्म्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमे नहिं बल छल॥
एक साथ बालिका और बालक जहँ मिलकर।
खेला करते और घर जाते साँझ पड़े पर॥

पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई।
जिनके सपनेमें भी पास कभी नहिं आई॥
एक भावसे जाति छतीसो मिलकर रहती।
एक दूसरेका दुख सुख मिलजुल कर सहतीं॥
जहाँ न झूठा काम न झूठी मान बडाई।
रहती जिनके एक मात्र आधार सचाई॥

सदा बडोंकी दया जहाँ छोटोंके ऊपर।
औ छोटोंके काम भक्तिपर उनकी निरभर॥
मेल जहाँ सम्पत्ति प्रीति जिनका सचा धन।
एकहि कुलकी भाँति सदा बसते प्रसन्न मन॥
पड़ता उनमें जब कोई झगडा उलझेड़ा।
आपसमें अपना कर लेते सब निबटेड़ा॥

दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई।
एक चिह्न भी उसका नहीं देता दिखलाई॥
पतितपावनी पूजनीय यमुनाकी धारा।
सदा पापियोंका जो करती थी निस्तारा॥
अपनी ठौर आज तक वह बहती है निरमल।
बना हुआ है वैसा ही शीतल सुमिष्ट जल॥
विस्तृत रेती अबतक वैसी ही तटपर है।
आसपास वैसाही वृक्षोंका झूमर है॥
छिटकी हुई चादनी फैली है वृक्षोंपर।
चमर रहे हैं चारु रेणुकण दृष्टि दुखहर॥
वही शब्द है अबतक पानीकी हलचलका।
बना हुआ है स्वभाव ज्योंका त्यों जलथलका॥
वोही फागुन मास और ऋतुराज वही है।
होली है और उसका सारा साज वही है॥
अहह देखने वाले इस अनुपम शोभाके।
कहाँ गये चल दिये किधर मुँह छिपा छिपा के॥
प्रकृति देवि! हा! है यह कैसा दृश्य भयानक।
हृदय देखके रह जाता है जिसको भवचक॥
क्या पृथ्वीसे उठ गई सारी मानवजाती।
क्यो नहिं आकर इस शोभाको अधिक बढ़ाती॥
किसने वह सब अगली पिछली बात मिटाई।
एक चिह्न भी उसका नहिं देता दिखलाई॥
सुन पड़ती नहिं कहीं आज वह ध्वनि सुखकारी।
आ आ प्यारी बसन्त सब ऋतुओंमें प्यारी॥

३—पिता

एहो जगतपिताके प्रतिनिधि पिता पियारे।
मोहि जन्म दे जगत दृश्य दरसावनहारे॥
तव पदपंकजमें करौं हौं बारहिं बार प्रनाम।
निज पवित्र गुनगानकी मोहिं दीजै बुद्धि ललाम॥
यद्यपि यह सिर मेरो नहिं परसाद तिहारो।
प्रेमनेम तें तदपि चहौं तव चरननि धारो॥
गंगाजूको अर्घ सब, है गगहिं जलसों देत।
ऐसो बालचरित्र मम लखि रीझौ मया समेत॥
बन्दौं निहछल नेह रावरे उरपुर केरो।
लालन पालन भयो सबै बिधि जासों मेरो॥
उलटे पुलटे काम मम अरु टेढ़ी मेढ़ी चाल।
निपट अटपटे ढगहू नित लखि लखि रहे निहाल॥
कहौं कहा लग अहौ आपनी निपट ढिठाई।
तव पवित्र तन माहिं बार बहु लार बहाई॥
सुद्ध स्वच्छ कपडान पर बहु बार कियो मल मूत।
तबहु कबहु रिस नहिं करी मोहिं जानि पियारो पूत॥
लाखन अवगुन किये तदपि मन रोष न आन्यो।
हँसि हँसि दिये बिसारि अज्ञ बालक मोहिं जान्यो॥
कोटि कष्ट सुखसों सहे जिहि बस अनगिनतिन हानि
कस न करौं तिहि प्रेमको नित प्रनतजोरि जुग पानि
बन्दौं तव मुख कमल मोहिं लखि नित निकासित।
मो संग विद्या आछतहू तुतराई- भासित॥
लाल वत्स प्रिय पूत सुत नित्य लै लै मेरे नाम।
सुधा सरिस रस बैनसों जो पूरित आठो याम॥

खेलत खेलत कबहुँ धाय तव गरे लपटतो।
लरिकाई चञ्चलताई कै खरो चमटतो॥
लटकि लटकि कै आपही हौ सम्मुख जातो घूमि।
बन्दौं सो श्रीमुख कमल जो लेतो मो मुख चूमि॥
जब तब जो कछु बालबुद्धि मेरीमें आयो।
अनुचित उचित न जानि आयकै तुमहिं सुनायो॥
हँसि हँसि ताहू पै दिये उचित ज्वाब मोहि जान।
बन्दौ अति श्रद्धासहित सो मधुर मधुर मुसकान॥
बन्दौं तुम्हरे तरुन अरुन पंकजदल लोचन।
दया दृष्टि सों हेरि सहज सब सोच बिमोचन॥
मेरे औगुनपै कबहु जिन करी न तनिक निगाह।
सबहि दसा सब ठौरमें नित बकस्यो अमित उछाह॥
मोहिं मुरझान्यो देखि तुरत जलसौं भरि आये।
कहूँ रुष्टहु भये तहूँ ममता सों छाये॥
तरजन बरजन करतहूँ पूरित पावन प्रेम।
सब दिन जो तकते हुते बहु ममतासों मम छेम॥
खेलन हेत कबहुँ जब निज भीतन सग जातो।
जब फिर कै आतो मारग तकतेहीं पातो॥
आवत मोहिं निहारि कै हो हरे भरे है जात।
युगल नैन बन्दौं सोई मैं नित प्रति साझ प्रभात॥
जिन नैननके त्रास रह्यो मेरे मन खटको।
पै वह खटको रह्यो पन्थ सुखसागर तटको॥
अगनित दुरगुन दुखन ते निज राख्यो रक्षित मोहिं।
काहे न ये दृग कमल मम श्रद्धा सर सोभा होहिं॥
करौं बन्दना हाथ जोरि तव कर कमलनकी।
सब बिधि जिनसों पुष्टि तुष्टि भइ या तन मनकी

दूध भातकी कौरिया सुचि रुचिसे सदा खवाय ।
इतने तें इतनो कियो जिन मोहि मया सरसाय ॥
वडे चावसों केस सवारत पट पहिरावत ।
जूठे कर मुख धोवत नित निज सग अन्हवावत ॥
कहू सिसुता बस याहु मै जव रोय उठो अनखाय ।
तव रिझवत हसि गोद लेकै देत खिलौना लाय ॥

४—सभ्य बीबीकी चिट्ठी

पीतम सगी होनकी, तुम्हरे मन है चाह ।
हमरो तुम्हरो होय पै, कैसे मित्र ! निबाह ॥

हमरे अग लगी रहत, पेमेंटम परफ्यूम ।
सौरभ और सुगन्धकी, पडी चहूँ दिस धूम ॥
धूल अग तुम्हरे रहत, बायू ताहि उडात ।
हमरो अति दुर्गन्ध सो, माथा फाट्यो जात ॥
हमरे कोमल अग कहँ, ढाके राखत गौन ।
तुम्हरे अग धोती फटी, नाम मातकी तौन ॥
मेरे सिरपै कैप अरु, मोरपुच्छ लहरात ।
तेरे सिर लिपडी फटी, साफ मजूर दिखात ॥
हमरी कटि पेटी लसै, कटि कह राखत छीन ।
तुम तगडी लटकाय जिमि, अँतड़ी बाहिर कीन ॥
मम मुख "पौडर रोज" सो मानहु खिल्यो गुलाब ।
तुम खड़ि माटी पोत कै, माथो कियो खराब ॥
मेरे चरन विलायती, चिकनो सुन्दर बूट ।
नागौरा तव पायमैं, ठाव ठाव रहे टूट ॥
मम सुन्दर जघान मैं, सिल्क रहत नित छाय ।
सदा असभ्य शरीर तव, रहत उघारो प्राय ॥

मम मुख ढग निलायती, निकसत धीरे बात।
बबर तुम्हारी जिह्व है, गोरू सम डकरात ॥
बावरची के हाथ हम, खायँ सदा तर माल।
चूल्हा फूकत तुम सदा, खाओ रोटी दाल ॥
हमरी बोली 'गाड' है, तुम छोड़ो 'हरि बोल'।
यज्ञ याग जप होम अरु, मानो उत्सव दोल ॥
देखत ही तुमको सदा, होत अरुचि उत्पन्न।
छन छन आवत है बमी, हियो होत उत्सन्न ॥
भूमि अरु आकाशजिमि, हम तुम भेद अथाह।
हमरो तुम्हरो होयगो, कैसे मित्र निबाह ॥

—बालमुकुन्द गुप्त

११

कुडलियाँ

जिन तरु को परिमल परसि लियो सुजस सब ठाम।
तिन भजन करि आपनो कियो प्रभजन नाम ॥
कियो प्रभजन नाम बडो कृतघन बरजोरी।
जब जब लगी दवागि दियो तब झोंकि झकोरी ॥
बरनै दीनदयाल सेउ अब खल थल मरुको।
ले सुख सीतल छाँह तासु तोसो जिन तरुको ॥१॥
केतो सोम कला करो करो सुधा को दान।
नहीं चन्द्रमनि जो द्रवै यह तेलिया पखान ॥
यह तेलिया पखान बडी कठिनाई जाकी।
टूटी याके सीस बीस बहु बाँकी टाँकी ॥
बरनै दीनदयाल चद तुमही चित चेतो।
कूर न कोमल होहिं कला जो कीजे केतो ॥२॥
बरखे कहा पयोद इत मानि मोद मन माँहिं।
यह तो ऊसर भूमि है अंकुर जमिहै नाहिं

अंकुर जमिहैं नाहिं बरष शत जो जल दैहैं।
गरजै तरजै कहा वृथा तेरो श्रम जैहैं॥
बरनै दीनदयाल न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना बलाहक ह्याँ तू बरखै॥३॥
भौंरा अंत बसंत के है गुलाब इहि रागि।
फिरि मिलाप अति कठिन है या बन लगे दवागि॥
या बन लगे दवागि नहीं यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर भ्रमात बडो दुख तात सहैगो॥
बरनै दीनदयाल किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये गये ऋतु पीछे भौंरा॥४॥
रंभा भूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये अरु ह्वै हैं यहि खेत॥
अरु ह्वै हैं यहि खेत मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै दीठि तुम पै प्रति दीने॥
बरनै दीनदयाल हमैं लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रंभा॥५॥
नाहीं भूलि गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चारकी बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार होहिगी ग्रीषम आये।
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताये॥
बरनै दीनदयाल फूल जौलौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहु फेरि फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥६॥
टूटे नख रद केहरी वह बल गया थकाय।
हाय जरा अब आइ कै यह दुख दियो बढाय॥
यह दुख दियो बढाय चहू दिसि जंबुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि स्वतन्त्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीनदयाल हरिन विहरैं सुख लूटे।
पंगु भयो मृगराज आज नख रदके टूटे॥७॥

पैहो कीरति जगत में पीछे धरो न पाव।
छत्री कुल के तिलक हे महा समर या ठाँव॥
महा समर या ठाव चले सर कुन्त कृपानैं।
रहे बीर गण गाजि पीर उर में नहिँ आनैं॥
बरनै दीनदयाल हरखि जौ तेग चलैहो।
ह्वैहो जीते जसी मरे सुरलोकहि पैहो॥८॥
भारी भार भरयो वनिक तरियो सिन्धु अपार।
तरी जरजरी फँसि परी खेवनहार गँवार॥
खेवनहार गँवार ताहि पर पौन झकोरै।
रुकी भँवर में आय उपाय चलै न करोरै॥
बरनै दीनदयाल सुमिर अब तू गिरिधारी
आरत जन के काज कला जिन निज सभारी॥६॥
आछी भाति सुधारि कै खेत किसान बिजोय।
नत पीछे पछतायगो समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय नही फिरि खेती ह्वैहै।
लैहै हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सँमालि बिहगन ते बिधि आछी॥१०॥
सोई देस विचारि कै चलिये पथी सुचेत।
जाके जस आनन्दकी कविवर उपमा देत॥
कविवर उपमा देत रङ्क भूपति सम जामे।
आवा गवन न होय रहे मुद मङ्गल तामे॥
बरनै दीनदयाल जहाँ दुख सोक न होइ।
य हो - पथी प्रवीन देसको जैयो सोई॥११॥
कोई सगी नहि उतै है इतही को सग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते सब सों सहित उमग॥
सबसों सहित उमंग बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव संयोग फेरि यह मिलिहैं नाहीं

बरनै दीनदयाल पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई ॥१२॥
ग्राहैं प्रबल अगाध जल या में तीछन धार।
पथी पार जो तू चहै खेवनहार पुकार ॥
खेवनहार पुकार वार नहि कोऊ साथी।
और न चलै उपाव नाव बिन पहो पाथी ॥
बरनै दीनदयाल नहीं अब बूडै थाहैं।
रहे महासुख बाय ग्रसन को भारी ग्राहैं ॥१३॥
राही सोवत इत किते चोर लगैं चहु पास।
तो निज धनके लेन को गिनैं नींद की स्वास ॥
गिनैं नींद की स्वास बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत माल ये साँझ सबेरे ॥
बरनै दीनदयाल न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग इतै कित सोवत राही ॥१४॥
हारे भूलो गैल में गे अति पाय पिराय।
सुनो पथी अब तो रह्यो थोरो सो दिन आय ॥
थोरो सो दिन आय रहे हैं सग न साथी।
या बन हैं चहुँ ओर घोर मतवारे हाथी ॥
बरनै दीनदयाल ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु भूलि भरमो कित हारे ॥१५॥
चारो दिसि सूझै नहीं यह नद धार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु खेवनहार गँवार।
खेवनहार गँवार ताहि पर हैं मतवारो ॥
लिये भौंर में जाय जहाँ जलजन्तु अखारो।
बरनै दीनदयाल पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर नाम धरि धीर उचारो ॥१६॥
—दीनदयाल गिरि

* ॐ शान्ति शान्ति शान्ति. *

राष्ट्रीय शिक्षकोंसे निवेदन

"धर्म्मे वो धीयतां बुद्धिर्मनो वो महदस्तु च"

१ राष्ट्रीय शिक्षाप्रणालीकी पहली चार पोथियां साधारण बालकोंके लिये प्रायः आधे सत्र (सेशन) और तीव्रबुद्धि बालकोंके लिये चौथाई सत्रके लिये लिखी गयी हैं।

२ बालकोंकी शिक्षाके प्रधान प्रारम्भिक अंग दो ही हैं **आत्मा और अन्तःकरणके लिये धर्म्म और नीतिकी शिक्षा और शरीरके लिये स्वास्थ्यकी शिक्षा।** शेष विषय गौण है। लिखना पढ़ना सिखाना इसलिये ठीक है कि इन दोनों शिक्षाओंके लिये वर्त्तमानमें, और अन्य शिक्षाओंके लिये भविष्यमें, सुलभ साधन है। अन्यथा सभी आवश्यक शिक्षाएं विना अक्षरज्ञानके दी जा सकती हैं।

३ धर्म्म शब्दके अन्तर्गत साम्प्रदायिक धर्म्म भी है, परन्तु सम्प्रदायकी विशेषता और मतभेदके विषय अध्यापक अपनी शिक्षामें सम्मिलित न करें। केवल उदार रीतिसे जिन जिन बातोंमें समस्त समाजकी सम्मति है उन्हींकी चर्चा करें। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि "समाज" है। इनके भीतरी भेद "सम्प्रदाय" हैं।

४ नीतिकी शिक्षा सभी समाजोंके लिये एकसी होगी। नीतिका समझानामात्र शिक्षा नहीं है। प्रत्येक शिक्षकका धर्म्म है, पवित्र कर्त्तव्य है, जिम्मेदारी है कि **नीतिके अनुसार स्वयं आचरण करे और बालकोंसे भी आचरण करावे।** शिक्षककी एक नैतिक भूल समस्त बच्चोंके आत्मीय और मानसिक जीवनके लिये विषका काम करेगी। नीति पालन करानेके लिये क्रूर और हिंसक व्यवहार अनावश्यक है।

५ अपना तनमन देकर शिक्षक शिक्षाकी पद्धति ऐसी रोचक बना दे कि बालक उसे खेल समझे और स्वयं जी लगावें। बालकोंपर शिक्षाके लिये जबरदस्ती न होनी चाहिये।

६ अच्छे पद्योंको, गिनती, पहाड़े आदिकी भांति याद करा देना आवश्यक होगा। परन्तु शब्दार्थ वा पाठके विषयकी मुख्य बातें भी रटाना न चाहिये। समझा देना और लड़के समझ गये इस बातको प्रश्नोंसे जान लेना शिक्षकका कर्त्तव्य है। सुलेखन और अनुलेखनका अभ्यास आगेके विचारसे परमावश्यक है।

७ शिक्षकोंको उचित है कि पढानेवाले पाठोंको पहलेसे पढकर दरजेमें आवें और समझानेमें देश काल पात्रके अनुकूल पाठके विषयका विस्तार करें। पाठके अनुकूल और कहानियां आदि कहें, कविता सुना दें और बालक चाहें तो लिखा भी दें। इस सम्बन्धमें भारतीय साहित्यसे एवं "बुक आव् नालिज" आदि विदेशी साहित्यसे उन्हें सहायता मिल सकेगी।

८ चौथी पोथीतक पचास लड़कोंसे एक साथ कहलाकर याद करा दिये जायें। मतलब समझा दिया जाय, पर अर्थ रटाया न जाय। कुछ अधिक पढनेपर वह आप समझ लेंगे।

९ पढाईका सारा काम भरसक खुली जगहमें होना चाहिये। अनध्याय और छुट्टियां स्थानीय सुभीतेके अनुसार होना चाहिये।

१० बालकोंकी बुद्धि धर्म्ममें रहे और मन विशाल रहे, इस बातका शिक्षकको प्रतिक्षण खयाल रहे। "रहे बुद्धि तब धर्म्ममें, मन तब रहे विशाल।"

- रा० गौ०,